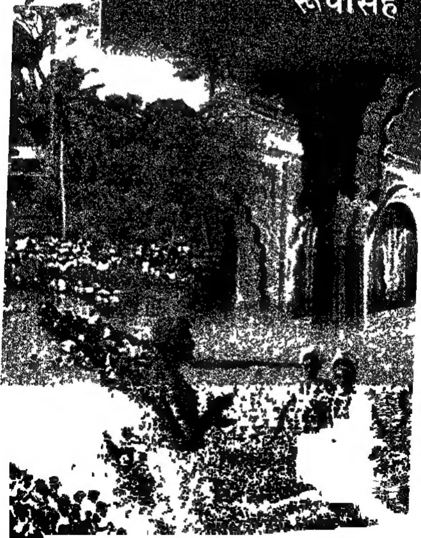
पर्यटन स्

रूपसिंह



दक्षिण भारत के पर्यटन स्थल

दक्षिण भारत के पर्यटन स्थल

रूपसिंह चंदेल

नीलकंठ प्रकाशन
महरौली नई दिल्ली

ISBN 81-87774-45-2

मूल्य · 200 00

प्रथम संस्करण 2004

प्रकाशक . **नीलकंठ प्रकाशन**
1/1079 ई, महरौली, नई दिल्ली-110030

शब्द-सयोजन : कम्प्यूटेक सिस्टम, दिल्ली-110093

मुद्रक · विशाल प्रिटर्स. नवीन शाहदरा दिल्ली-110032

वरिष्ठ बालसाहित्यकार
डॉ. राष्ट्रबंधु
के लिए

दो शब्द

भ्रमण मेरी कमजोरी है। जिन्दगी की व्यस्तता से जब भी कुछ क्षण चुराने का अवसर मिला यथा सुविधा सपरिवार कही न कहीं के लिए निकल गया। देश का जितना भाग अब तक मझा चुका हू उससे कई गुना अभी देखना शेष है। जब और जहां गया उस पर कुछ लिखने का प्रयत्न अवश्य किया। नोट्स लेता, आधारभूत सामग्री एकत्रित करता, लेकिन क्रमबद्ध और व्यवस्थित रूप से लिख नही सका, सिवाय 'बिठूर' पर लंबे यात्रा सस्मरण के जहां की मैंने तीन बार यात्रा की थी और जो लिखने के बहुत बाद 'पहल' पत्रिका मे प्रकाशित हुआ था।

लेकिन मार्च 1997 में जब दक्षिण भारत के प्रमुख पर्यटन केन्द्रों की यात्रा के लिए निकला तब इस तैयारी के साथ कि लौटकर उसे कलमबद्ध अवश्य करूगा। पर्यटन स्थलों को देखने-समझने का मेरा अलग ही दृष्टिकोण होता है। उन स्थलो की यात्रा मेरे लिए केवल उनके वर्तमान को देखने-जानने तक ही सीमित नही रहती। मै उनके ऐतिहासिक-पौराणिक कालखण्डो में भी सेंध लगाने का प्रयत्न करता हूं और जो कुछ भी महत्वपूर्ण हाथ लगता है उसे यथासंभव प्रमाणिकता के साथ प्रस्तुत करना चाहता हूं। तिरुअनंतपुरम से मामल्लपुरम (महाबलीपुरम) के अपने इस पर्यटन में मैने यही प्रयत्न किया है। पर्यटन स्थलों से संबंधित जो भी जानकारी मुझे उपलब्ध हुई वह तो सकलित की ही, लेकिन यात्रा के प्रारभ से अंत तक मिलने-घूमने वाले सहयात्रियों की भूमिका को भी नही नकार सका। वास्तव मे यात्रा की जीवन्तता भी उन्हीं से थी। अपने इस पर्यटन को भलीभाति में शायद ही कलमबद्ध कर पाता, यदि मुझे पंजाबी लेखक-कवि-पत्रकार मित्र बलबीर मधोपुरी ने कुछ महत्वपूर्ण आधारभूत सामग्री उपलब्ध न करवाई होती। मै काचीपुरम और महाबलीपुरम की टूरिस्ट बस के गाइड श्री वेणु गोपाल को भी नहीं भूल सकता जिन्होने मेरे एक पत्र के उत्तर में तुरत लौटती डाक से

मामल्लपुरम से सबंधित कुछ महत्वपूर्ण सूचना मुझे भेजी थी। दोनो के प्रति आभार व्यक्त करने के लिए मेरे पास शब्द नही है। प्रवीण प्रकाशन के मेरे अग्रज मित्र श्री श्रीकृष्ण जी ने इसे प्रकाशित करने में विशेष रुचि दिखाई, जिसके लिए मै हृदय से उनका आभारी हू और आशा करता हू कि भविष्य मे भी वे इस प्रकार की पुस्तको के प्रकाशन मे रुचि दिखाते रहेगे।

दिनाक—15-12-2003 **रूपसिंह चन्देल**

बी-230, गली न. 3
सादातपुर विस्तार
दिल्ली-110094

अनुक्रम

दक्षिण भारत की ओर

28 3 1997 (शुक्रवार-गुडफ्राइडे) की सुवह खूबसूरत थी। मन उत्फुल्ल, क्योंकि हम उस यात्रा मे निकल रहे थे, जिसकी योजना लम्बे समय से बन रही थी। नीद जल्दी ही खुली। चिन्ता थी, कुछ भी न छूटे घर से बाहर और उससे भी बडी चिन्ता थी अपने नब्बे गमलों में सजे पौधों की, जिन्हें वर्षो से बच्चों की भॉति पत्नी ने पाल-पोसकर बडा किया है। पन्द्रह दिनो के लिए जा रहे थे और आशानुरूप गर्मी को निरन्तर वढना था। यद्यपि इस तिथि तक तापमान अधिकतम 28 डिग्री सेल्सियस और न्यूनतम 20 था, किन्तु कब तक रहता।

सुबह आठ तक सभी तैयार हो गए थे। अखबार पढते, टी.वी. देखते समय काटने लगे हम लोग।

कठिनाई से, साढे नौ वजा। त्रिवेन्द्रम के लिए केरला एक्सप्रेस साढे ग्यारह वजे थी। साढे नौ पर टैक्सी स्टैण्ड फोन किया कि 9.50 पर टैक्सी भेज दें। टेक्सी 9.40 पर आ गई। 9 50 पर यात्रा प्रारम्भ हुई।

हम ठीक साढे दस स्टेशन पहुॅचे। पता चला केरला एक्सप्रेस (2626) प्लेटफार्म नम्बर 10 से जाएगी।

दोनो अटैचियॉं मैने सॅभाल रखी थीं। पिट्टू कनु ने, थैला और पानी की बोतल माशा ने और एक अन्य थैला और मयूर जग पत्नी ने। किसी प्रकार पुल की कठिन दूरी तय कर हम प्लेटफार्म नम्बर 10 की सीढियॉं उतरे इस आशा ओर उत्साह मे कि फर्स्टक्लास के अपने लिए आरक्षित कूपे में बैठते ही सामान ढोने की सब की थकान और शिकायत दूर हो जाएगी।

सीढियाँ उतरते ही सामान एक ओर फर्श पर रख सबको वही बैठा मैं आरक्षण चार्ट देखने के लिए लपका। प्रथम श्रेणी आरक्षण-चार्ट ढूॅढना शुरू किया। बोर्ड

में वह कही न था और न ही ए सी टू–टियर का चार्ट दिखा। मन मे आशंका उठी। कुछ गड़बढ़ है। रेलवे प्रायः यात्रियो के साथ क्रूर मजाक करता है। लगा 22 मार्च को बीती होली का प्रभाव रेलवे अधिकारियो-कर्मचारियो पर अभी तक हावी है। लेकिन यह तो दिल्ली है। कानपुर होता तो यह भी मान लेता, जहॉ होली के बाद भी, आठ दिन तक होली का रंग बना रहता है। आठवें दिन गगा मेला होने पर ही वह धुलता है। होली मे मजाक क्षम्य होता है। मुझे लगा किसी कानपुरिये ने जानबूझकर चार्ट नहीं लगाया। डिब्बा तो लगा ही होगा। भला संयुक्त मोर्चा की केन्द्र में सरकार हो और आम आदमी परेशान हो, यह तो उनके घोषणा-पत्र के विरुद्ध है। फिर रामविलास पासवान अगर रेल मत्री हैं तो रेलवे ऐसा अशिष्ट मजाक कभी नही करेगा अपने यात्रियो के साथ। उनके मत्रित्वकाल मे सुविधाओं का विशेष ध्यान उनकी प्रतिबद्धता है। उनके इस विशेष ध्यान के कारण ही फूलन देवी ने इटावा के पास गाडी रोकवा ली थी। यह तो संयोग था कि रेलवे लाइन उनके गन्तव्य तक नहीं जाती थी, वर्ना गाड़ी (शताब्दी) को वे वहाँ तक ले जातीं। तो मुझे अपनी भारतीय रेल पर अगाध विश्वास था कि डिब्बा कहीं-न-कही तो होगा ही। मै आगे से पीछे, पीछे से आगे दौड आया लेकिन डिब्बा कहीं न था।

'खतरा'.. मन ने कहा। 'धोखा', दिल ने कहा। 'छः हजार चार सौ चवालिस की टिकट', आत्मा कराही।

घड़ी देखी, ग्यारह बजे थे। ए.सी. के कण्डक्टर से गिडगिड़ाया "सर, कुछ कीजिए। मै कहाँ जाऊँ।"

"आपके सामने ही वायस–फर्स्ट क्लास अर्थात् फर्स्ट क्लास के स्थान पर द्वितीय श्रेणी शयनयान (थ्री टियर) लगा है। आप उसमे देखें।"

ए.सी. टू टियर के कडक्टर की सलाह मान साथ लगे डिब्बे के आरक्षण चार्ट पर दृष्टि गड़ायी। ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर, लेकिन दुर्भाग्य उसमे रूपसिंह चदेल और उनके परिवार के सदस्यों का नाम न था। दिल तड़प उठा। यह रेलवे का यात्रियों के साथ किया जाने वाला क्रूर मजाक है, जिसके लिए उन्हे कोई खेद नही।

मैं स्टेशन मास्टर से मिलने प्लेटफार्म नम्बर एक की ओर दौड़ा। घड़ी तेज गति से दौड़ रही थी। सहायक स्टेशन मास्टर का कोई सहायक मिला। दयार्द्र-सा हो बोला, "बाहर पुल के पास बने केबिन में बैठे सहायक से पता करें।" वहॉ एक देवी के दर्शन हुए। पूछा तो पेन से सामने इशारा करके बताया कि काले कोट-टाई मे सजे सज्जनों से पूछूँ।

वे तीन थे। बातों में मशगूल। पूछा, तो रूखा और उपेक्षापूर्ण उत्तर था, "ट्रेन में जाकर पता करूँ।"

'आफत'... भारतीय रेल को प्रणाम करने का मन हुआ। अगर वह किसी देवी के रूप में कही दिखती तो मै दण्डवत कर अपनी पीड़ा का बयान करता। वहाँ किसे दण्डवत करूँ...समझ नही आया। मैं कुछ और पूछता इससे पहले ही वे तीनो खिसक गए थे। मै हताश घड़ी देखने लगा। यह सब दस मिनट मे हो चुका था।

पुनः सहायक स्टेशन मास्टर के कमरे की ओर लपका। वहाँ वही सहायक मिला। उसने फिर सहृदयता-पूर्वक मुझे सुना। मैंने कुछ विद्रोही रुख अख्तियार कर रखा था। "मैंने जब प्रथम श्रेणी का आरक्षण करवाया है तो मुझे सेकेण्ड क्लास में क्यो ठूँसा जा रहा है। आप सोचें 54 घण्टे की लम्बी यात्रा...क्यों नही ए.सी.टू टियर में सुविधा दी गई।"

सहायक स्टेशन मास्टर के सहायक ने विनम्रता दिखाते हुए असमर्थता व्यक्त की कि अब कुछ नही हो सकता। आप यात्रा नहीं करना चाहते तो टिकट रद्द करवा दें। आपको पूरा पैसा मिल जाएगा।

"तो यही सही। नहीं जाऊँगा घूमने।" निर्णय कर सीढियाँ फलांगता, पुल नापता प्लेटफार्म नम्बर दस पर पहुँचा। पत्नी और बच्चे दूर से ही पूछने लगे, 'कुछ हुआ?'

"नहीं।"

"फिर।" सबके चेहरे लटक गए।

मै कण्डक्टरों की शरण मे गया। दस मिनट शेष थे गाडी छूटने में। सबने कहा ट्रेन इन्सपेक्टर से मिलूँ। एस-फाइव कोच मे होगे। वह मिले 'एस-9' कोच मे। मुझे देखते ही मलयालम मिश्रित हिन्दी मे बोले, "आपको ही खोज रहा था। एक घण्टे से एनाऊंस करवा रहा था। लाइये टिकट"... और लगभग झपटते हुए उसने टिकट ली और तेजी से उस पर 'एस-3' कोच की 11, 12, 13 और 14 बर्थ दे दी। बोला, "दौड जाइए . डिब्बा आगे है।" चलते-चलते बोला, "कण्डक्टर आएगा, उससे रिफण्ड आर्डर बनवा ले .त्रिवेन्द्रम मे डिफरेन्स मिल जाएगा।"

हम सामान की ओर लपके। पाँच मिनट शेष थे। सामान जीने के पास था और 'एस-3' कोच बिल्कुल आगे। सभी दौड़े.. बेतहाशा। किसी प्रकार डिब्बा मिल गया। चढकर उस क्षण को कोसा जब प्रथम श्रेणी का आरक्षण करवाया था। जबकि पहले ही ए.सी.-टू टियर की टिकट लेने का विचार था। पत्नी ने हौसला दिया 'चिन्ता न करे सफर कट जाएगा।"

"कट ही जाएगा" मैने निरीह से शब्दों मे कहा था, "अब विकल्प ही क्या है। या तो उतर कर रिफण्ड लूँ या इसी मे यात्रा करूँ और हर चार घण्टे बाद स्टेशनो मे उतरकर मयूर जग भरता रहूँ।"

"बच्चो तुम बोलो. चले या .." मैने दोनो बच्चो से पूछा।

"चलिए।" दोनों में बाहर जाने का उत्साह था।

"चलो।" कह तो दिया लेकिन मेरे मन का उत्साह अभी भी ठण्डा था।

गाडी ने सीटी दी।

11.35 बजे थे। गाडी प्लेटफार्म छोड़ रही थी।

मैं उलझन, द्विविधा और क्लान्त मन बाहर गुजर रहे मिण्टो ब्रिज, तिलक ब्रिज और प्रगति मैदान को सूनी ऑखों से निहार रहा था।

राहत की सांस

केरला एक्सप्रेस फरीदाबाद की सरहद पर थी जब ट्रेन इस्पेक्टर नमूदार हुआ। मुझे देख मुस्कराया। शायद मेरी मानसिक परेशानी वह अनुभव कर रहा था। उसकी मुस्कराहट मे एक प्रकार का आत्मीय भाव था और मैं महसूस कर रहा था कि रेलवे विभाग ने प्रथम श्रेणी यात्रियो के साथ जो अभद्र व्यवहार किया है, ट्रेन इंस्पेक्टर अपने शिष्ट व्यवहार से उसे धो-पोछने का कार्य कर रहा है। उसके मुस्कराने और राहत भरे शब्द बोलने के बावजूद मै अपने चेहरे से उदासीनता ओर खिन्नता के भावों को झिटक नही पा रहा था।

इस्पेक्टर मेरे निकट आया और मधुरतापूर्वक अग्रेजी मे बोला, "आप निश्चिन्त हो यात्रा करें सर। हॉ, रिफण्ड आर्डर अवश्य बनवा लेगे। मैंने कण्डक्डर को कह दिया है।"

मैंने उसे धन्यवाद दिया।

थोडी देर बाद कण्डक्टर आया। टिकट चेक किया और रिफण्ड आर्डर दे जाने के लिए कह, आगे चला गया। तब तक मैं साथ के केरलाइट यात्रियो से बाते करने लगा था। दोनों को त्रिचूर या उससे पूर्व कही उतरना था। एक सज्जन साउथ ब्लाक मे रक्षा मंत्रालय मे कार्य करते थे। थोड़ी देर बाद कण्डक्टर फिर आया और रिफण्ड आर्डर बनाकर दिया। मैं आश्वस्त हुआ कि त्रिवेन्द्रम पहुँचकर हमारे पास पॉच हजार रुपए अतिरिक्त हो जाएँगे खर्च करने के लिए। चौवन घण्टे की यात्रा का कष्ट तब भूल जाऊँगा। लेकिन .. तभी मन ने प्रश्न किया, आगे की गर्मी बच्चो को भी सामान्य रहने देगी? फिर?

"क्या मुझे ए.सी. में जगह मिल सकती है?" मैने कण्डक्टर से पूछा।

आप अभी ट्राई कर लें सम्भव है मिल जाए ट्रेन अन्दर ही अन्दर

'इण्टर-लिक्ड' है ..अभी चले जाएँ।"

मैंने पत्नी से पूछा। उसने भी सलाह दी। मै ए.सी.टू टियर कोच की ओर लपका। चलती ट्रेन...हिचकोले.. मन की खिन्नता, फिर भी मैं बढ़ता गया। पन्द्रह-सोलह डिब्बे फादता पहुँचा ए.सी.कोच के कंडक्टर के पास। भटनागर साहब थे। देखते ही मै पहचान गया और वह भी मुझे पहचान गया। यही वह व्यक्ति था, जिससे अनेक बार अपनी फर्स्ट-क्लास टिकट दिखाकर 'कुछ करिये सर' कहते मैं गिड़गिड़ाया था और उसने हर बार यही कहा था, 'ह्वॉट कैन आई डू?' आखिर अन्त मे उसने खीझकर सलाह दी थी, "आप ट्रेन इसपेक्टर से मिले, वही कुछ कर सकता है।"

और मै उसके कथन को टालू उत्तर मान दूसरे कण्डक्टरो की शरण मे गया था, जिन्होने भी मुझे वही सलाह दी थी।

मुझे देखते ही वह मुस्कराया।

"क्या आप मेरी मदद कर सकते हैं?"

"कहाँ है आप?"

"एस थ्री में।"

"जगह मिल गई?"

"हॉं" मेरे स्वर में निरीहता स्पष्ट थी। "वायस फर्स्ट-क्लास में न देकर पता नहीं क्यो इतना आगे फेंक दिया।" मैं कुछ देर उसके चेहरे पर नजरें गडाये रहा यह सोचता हुआ कि शायद वह कुछ बोले, लेकिन वह गम्भीर बना कुछ नोट करता रहा।

"क्या अब आप मेरे लिए कुछ कर सकते हैं?"

"क्या चाहते है आप?" पेन रोक उसने पूछा।

"ए.सी. में यदि दो बर्थ भी आप दे देंगे तो हम उतने में ही गुजर कर लेंगे...चौवन घण्टे की यात्रा...आप सोचे... ।" मेरे स्वर मे पुन. उदासी उभर आई थी।

"आप आगरा के बाद आकर मिलें।"

"कुछ उम्मीद है।"

"तभी कुछ बता सकूँगा।" उसने चेहरे को भावशून्य बना रहने दिया।

उसे धन्यवाद दे लौट आया।

पत्नी ने पूछा तो बता दिया। फिर हम चर्चा करने लगे कि यदि दो ही बर्थ मिली तो काम कैसे चलेगा। दो में चार...और इस कंडक्टर के झासी उतरने के बाद दूसरे दुखी करने लगें कहे कि दो से अधिक नही रह सकते तो? आधा

परिवार सेकेण्ड क्लास मे और आधा ए.सी. मे और दोनो के मध्य पन्द्रह-सोलह डिब्बो का अन्तराल। रात में दस बजे के बाद लिंक बन्द। किसी को कोई परेशानी हो तो? विचार मथन चल ही रहा था कि आगरा आ गया। सच यह है कि मथुरा कब आया—गया, मुझे पता नही चला। तनाव दिमाग मे बरकरार था। आगरा आते-आते हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सेकेण्ड क्लास में ही यात्रा कर लेते है। आधे-इधर-आधे उधर ठीक न होगा। लेकिन गाडी के आगरा छोडते ही मन ने पुन: करवट बदली। एक बार चलकर देख लेना चाहिए. हो सकता है तीन बर्थ मिल जाएँ। तब काम चल जाएगा।

और मै भटनागर से मिलने जाने के लिए उठ गया।

भटनागर मुझे देखते ही बोला, "अच्छा हुआ आप आ गए। मै तो आपको खबर भेजने वाला था।"

कण्डक्टर का यह कथन मुझे राहत दे गया।

"फिर कितनी बर्थ दे रहे है आप मुझे।"

"तीन तो दे ही दूँगा।"

"चौथी भी यदि दे सके ..।"

"आप सामान उठाकर आ जाएँ . ।"

"आ जाऊँ. ?"

"निश्चिन्त होकर आएँ...मैने कह तो दिया है।"

और मै उसे धन्यवाद दे एस.थ्री तक पहुँचने के लिए गाडी की घड़घड़ाहट और डिब्बो के हिचकोले झेलता-खाता तेजी से दौड रहा था। लग रहा था कि कोई बडी उपलब्धि हाथ लगी है। डिब्बो मे दोपहर का भोजन करते या आराम करते यात्री मुझे देख सोचते होगे कि आखिर इसे हुआ क्या है. .पागलों की भाँति आना-जाना।

जब एस.थ्री में पहुँचा हाँफ रहा था। लेकिन चेहरा खिला हुआ था मानो सारा कष्ट डिब्बों के बीच दौडते निचुड़कर बह गया था। पत्नी ने पहुँचते ही पूछा, "मिल गई?"

"हॉं, अभी तो तीन का वायदा किया है.. हो सकता है चौथी भी मिल जाए।"

और मैं सामान समेटने लगा।

बच्चे अपना-अपना सामान लादने लगे। अटैचियाँ मेरे हिस्से थीं। पत्नी के हिस्से पानी से भरा आठ लीटर का मयूर जग और कंधे पर एक बैग था। लेकिन जग उसकी परेशानी का कारण बन गया। एस.थ्री से एस-फोर मे संधि-स्थल को पार करना जग के साथ कठिन हो गया मुझे लगा यदि इसके साथ यह आगे

बढ़ी तो कहीं गिरकर ढेर हो जाएगी। शरीर से कमजोर न होते हुए भी बेडौल बोझ को लेकर चलना कठिन था उसका। मैंने जग को कुछ घण्टों के सहयात्री उन केरलाइट सज्जनों के पास एस-थ्री मे छोड़ा और अनुरोध किया कि वे उसे देख रखेंगे, कुछ देर बाद आकर ले जाऊँगा।

डिब्बे-दर-डिब्बे पार करते दो अटैचियों के साथ मेरी ताकत भी जवाब दे गई। फिर भी दूसरों की दृष्टि मे अपने को कमजोर कौन दिखाना चाहता है?

मंजिल पर पहुँचा तो कण्डक्टर महोदय नदारद थे। घबड़ाहट हुई। कही वापस लौटना पड़ा तो? फिर मन ने कहा सभी को ए-1 के पास छोड़ आगे देख आऊँ, शायद महोदय मिल जाएँ। और वही हुआ। ए सी टू- टियर के दो डिब्बे थे। ए-1 और ए-2। भटनागर जी बाकायदा ए-2 मे थे। देखते ही बोले, "ले आये सामान?"

"जी जनाब।"

"पाँच-छः और बारह-तेरह नंबर बर्थ आप सँभाले।"

"चारों बर्थ।" मन्द स्वर मे मुँह से निकला, जिसे उसने नही सुना।

तुरत-फुरत सामान पटक मै कोच से बाहर आ गया। भटनागर ए-1 मे मेरी प्रतीक्षा कर रहा था।

"आइए।" वह बोला और आगे बढ़ा। ए-1 के बाहर एक सीट पर बैठ गया।

मै उसे धन्यवाद देने लगा।

"टिकट आगरा से बना दूँ या नई दिल्ली से...।" उसने मेरे धन्यवाद पर ध्यान न दे पूछा।

"नई दिल्ली से।"

"पैसों का फर्क अधिक नही है, लेकिन...।"

"आप चिन्ता न करें...।"

टिकट बना कर पैसों का हिसाब देखा। पता चला 988/- अतिरिक्त भुगतान करना है।

पैसे निकालने लगा तो वह बोला, "मेरी क्या सेवा करेंगे।"

मै पहले से ही अपने को उपकृत मान रहा था। बोला, "आप कहे।"

"मै कुछ न कहूँगा। आप जो दे देगे, ले लूँगा।"

एक हजार रुपए दे चुका था। पचास रुपए का नोट उसकी ओर बढ़ाया, जिसे उसने बिना ना-नुकर के ले लिया।

"आप प्रसन्न तो है?" मैने पूछा।

1

"बिल्कुल।"

मुझे राहत मिली। रिश्वत देने का अपराध-बोध लिए 988/- की रसीद उससे ल मे ए-2 मे लौट आया। लगभग पाँच बजे झाँसी आया। लेकिन टिकट बनवाने के बाद भटनागर मुझे पुनः दिखाई नही पडा था। हॉ ट्रेन इन्सपेक्टर अवश्य गुजरा। प्रसन्नता व्यक्त करते मैंने उसे धन्यवाद दिया और बताया कि मुझे इस कोच मे जगह मिल गई है और कि मैंने डिफरेंस दे दिया है।" फिर मूर्खता प्रदर्शित करते पूछा, "अब तो कोई परेशानी नही होगी।"

"नही, कोई परेशानी न होगी...आप सुकून से यात्रा करें।" अंग्रेजी मे ही ट्रेन इन्सपेक्टर ने जवाब दिया। फिर चलते-चलते पूछा, 'आपको जाना कहाँ है?"

"त्रिवेन्द्रम।"

"ओ.के., आप आराम से जाएँ.. नो प्रॉब्लम।"

और मैंने उसे पुन धन्यवाद दिया। वह मुस्कराता हुआ आगे बढा तो मुझे एस-थ्री से मयूर जग लाने की याद आई। ए सी. में जगह मिल जाने की खुशी मे उसे भूल ही गया था। मैं जग लेने दौड गया।

गुजरते दृश्य

दौडते हुए थकान ने शरीर पर प्रभाव डाला। लगभग तीन बजे मैं सो गया। पाँच बजे जगा तो ज्ञात हुआ गाडी स्टेशन पर रुकी है। रंगीन शीशे के पार देखने का प्रयत्न करता रहा कि शायद कही स्टेशन के इर्द-गिर्द झासी का ऐतिहासिक प्रभाव दिखाई दे जाए। हमारा कोच स्टेशन से बहुत पीछे था। कुछ कर्मचारी ओर कण्डक्टर आते-जाते दिखे। कुछ दूरी पर एक इजन शटिंग कर रहा था। दूसरी ओर भी खिडकी के शीशे पर नजर डाली तो उधर भी कुछ न था। लगा जेसे स्टेशन शहर से कुछ दूर है। मै कभी झाँसी नही गया। अत. नही सोच सका कि 1857 की क्रान्ति की महानतम वीरागना लक्ष्मीबाई का किला किधर है ओर यह कि अंग्रेजो को आश्चर्यान्वित करती रानी किले से निकल किस रास्ते कालपी की ओर बढी थी। सोचता रहा, जहाँ ट्रेन खडी है, सम्भव है रानी उस मार्ग को पवित्र करती निकली हो। मन-ही-मन उस वीरागना को प्रणाम कर कभी झासी आकर चप्पे-चप्पे को देखने का निश्चय करता दूर शंटिग करते इंजन को देखता रहा।

ट्रेन चली तो सारा परिवार साइड की पाँच नम्बर बर्थ पर सिमट बाहर छूटते पेड़ों, गाँवो और खेतो को देखने लगा। यदा-कदा कोई पहाडी सर्र से गजर जाती मन में यह अहसास दिलाती कि उसने सल्तनतो को बनते-बिगडते देखा है. .कि उसने निर्भीक तात्यां टोपे की हुंकार सुनी है। कभी उसके निकट से होकर गुजरे होंगे तात्या ब्रितानी सरकार की क्रूर सत्ता को चुनौती देते। गुजरते दृश्य सुहावने थे और चाह हो रही थी खडे होकर निहारते रहने की।

हम मध्य प्रदेश की धरती से गुजर रहे थे।

रात दस बजे के लगभग भोपाल आ गया डिब्बा पीछे था इसलिए कुछ

खास दिखाई नहीं दिया।

सुवह (29 3.97) उठे तो पता चला हम महाराष्ट्र में प्रविष्ट हो चुके है। नागपुर मे सन्तरे खरीदने की इच्छा थी। मौसम भी था, किन्तु हम खरीद नही सके। लम्बी दूरी की यह गाड़ी आठ राज्यों को नापती है। अपराह्न हम आंध्र प्रदेश की शस्य-श्यामला धरती से गुजर रहे थे। शाम वारंगल आया। पानी लेने उतरा तो केला और सन्तरे लेने की इच्छा हुई। यहाँ महगे थे। एक वच्चे के हाथ मे वड़ा आम देख चौंका। एक आम उसने पकड रखा था और दूसरा चूस रहा था। याद आया इस प्रदेश मे आमो की फसल जल्दी आ जाती है। आंध्र के गाँवों मे हरियाली देख अच्छा लगा। दक्षिण भारत की इस विशेषता ने मुग्ध किया कि हर गृहस्थ अपने घर के आस-पास कटहल, आम, नीम या नारियल के पेड अवश्य उगाता है। यह स्वास्थ्य के लिए तो हितकर है ही, आर्थिक लाभ भी प्राप्त होता है। नीचे से फुनगी तक छोटे-वड़े फलो से लदे-फदे कटहल के पेड़ देख आश्चर्य हुआ। अपने ऊपर अतिरिक्त वोझ लादे विनयावनत भाव से वे वृक्ष ससार के लिए सर्वस्व त्याग करने वाले किसी तपस्वी की भाँति दिख रहे थे। वह ऐमा मोसम था जब कटहल के साथ आम और नारियल ने फलों से अपने को सजा रखा था। लग रहा था, जैसे वे इस अकिंचन साहित्यकार के स्वागत के लिए बाहे फैलाए खड़े थे, लेकिन यह साहित्यकार उड़नखटोले में वैठा तीव्रगति से उन्हे पीछे छोड़ता भाग रहा था। उन्हे इसका खेद न था। उनकी लम्बी शृखला थी ओर वे निरन्तर आकर्षित कर रहे थे।

30 3.97 को सुबह हम तमिलनाडु मे प्रविष्ट हो चुके थे। सहयात्रियो ने बताया कि गाड़ी लगभग एक घण्टा विलम्व से चल रही है और अभी केरल प्रारम्भ नही हुआ। लेकिन केरल का प्रभाव दौड़ते गाँवो, खेतों और वागो मे स्पष्ट परिलक्षित था।

मेरे सामने की एक नम्बर वर्थ मे लखनऊ के एक तिवारी जी थे जो रेलवे मे कार्य करते थे और किसी सरकारी कार्य से 'एर्नाकुलम' जा रहे थे। तीन ओर चार नम्बर बर्थ मे माँ-वेटे थे, जो दिल्ली के जगपुरा मे रहने थे और त्रिचूर जा रहे थे। त्रिचूर से लगभग डेढ घण्टे की यात्रा के वाद किसी कस्बे में उनका घर था और वह महिला डेढ वर्ष वाद अपनी सास और माँ से मिलने जा रही थी। उसका बेटा चार-पाँच वर्ष बाद। बेटे ने वारहवी की परीक्षा दी थी ओर कुछ माह क लिए पढ़ाई के वोझ से मुक्त हो गया था। यह उसके चेहरे और बातचीत से स्पष्ट था। हमारे देश में जहाँ अनेक विशेषताएँ है, अर्थात् आजादी के पश्चात् देश ने जहाँ कई क्षेत्रो में अप्रत्याशित प्रगति की है, वहीं शिक्षा के क्षेत्र मे भी

प्रगति हुई है। भ्रष्टाचार के क्षेत्र में हम दुनिया के उन महानतम देशो में शीष पर है, जहाँ यह विशेपता पाई जाती है, वही बच्चो पर शिक्षा का बोझ थोपने मे भी यह देश अग्रणी है। पॉच वर्ष के वच्चे के कधे पर दस किलो का थैला लटका दिया जाता है और वह कमर टेढी कर उसे ढोता किसी वृद्ध की भॉति दिखाई देता है। असमय ही हम उन्हे वृद्ध बना देते है। 'यशपाल कमीटी' की रपट को दरकिनार कर बच्चो पर पुस्तकों का वजन बढता जा रहा है वैसे ही जेसे देश मे घोटालो की सख्या बढ़ती जा रही है। शिक्षा मत्रालय, संसाधन विकास मत्रालय, शिक्षण पर गम्भीर चिन्तन करने वाली सस्थाएँ और शिक्षण के विशुद्ध अग्रेजी दा भारतीय केन्द्र शिक्षाविदों की सलाहों की उसी भॉति उपेक्षा करते जा रहे है, जैसे घाटालों में फसा कोई जिद्दी मत्री-मुख्यमंत्री (सभी) अपने को निर्दोष बताता सी.बी.आई. को राजनीति से प्रेरित कहता जनता की भावनाओ की उपेक्षा करता रहता है।

जंगपुरा निवासी उस महिला, उसके वेटे और तिवारी जी के मध्य प्रारम्भ से कुछ इस प्रकार के रिश्ते नजर आ रहे थे उनकी बातो से कि हमे यही लगता रहा कि वे या तो एक-दूसरे के निकट सम्बन्धी हैं या अड़ोसी-पडोसी। स्वभाववश हम भी अपने मे मस्त थे। और वे भी हमारी ओर ध्यान नही दे रहे थे। केरलाइट मॉ-बेटा या तो आपस मे बाते करते रहते या पत्रिकाएँ पढ़ते। महिला सावली, लम्बी और शरीर से भारी थी। सवाद करने में संकोच केवल मुझे ही नहीं बच्चो को भी हो रहा था। तिवारी जी को आगरा के बाद से ही मै मनोहर कहानियॉ पढते देखता आया था। समझ नही पा रहा था कि उनकी पढने की गति कछुआ थी या वह एकाधिक बार उन्हे पढ़ रहे थे। पत्रिका देखकर ही उनकी ओर मेरा मन आकर्पित नहीं हुआ था, लेकिन लग भी अजीब रहा था। आमने-सामने बैठे तीन यात्रियों के साथ चवालीस घण्टे की यात्रा हम कर चुके थे और एक शब्द बातचीत नही। मुझे अपने स्वभाव पर कोफ्त हो रही थी। अन्तत: मैंने सोचा कि आखिर मुझे यह तो जानना ही चाहिए कि वे लोग जा कहॉ रहे है।

लेकिन मुझे अधिक प्रयास नहीं करना पड़ा संवाद स्थापित करने के लिए। कनु अपनी सगीत की पुस्तक ले आया था। लौटते ही सितार की लिखित परीक्षा थी। वह अपनी ऊपर की बर्थ पर अमीर खुसरो की जीवनी याद कर रहा था, लेकिन उसका मन लग नहीं रहा था। हम लोग उसे डाट रहे थे। तभी उस महिला ने उत्सुकता जाहिर करते कहा, 'एक्जाम देना है?''

''जी हॉ, सितार का।'' मैं बोला। पत्नी मुझे उस महिला से वाते करते देख खीजी, ऐसा लगा, लेकिन बोली कुछ नहीं। पॉच नम्बर बर्थ मे पर्दा खिसका

उस महिला से ओट कर बैठे बाहर दौडते कटहल-नारियल के वृक्षो को देखने लगी। दूर-दूर तक व्यवस्थित बाग वहीं ठहर जाने का आमत्रण दे रहे थे। मन मुग्ध था; किन्तु गाडी दौड रही थी।

वह महिला सितार की उस परीक्षा के विषय मे और अधिक उत्सुकता से जानकारी पाना चाहती थी। मै उसे बताने लगा। कुछ देर बाद बाते सितार और कत्थक से हटकर दूसरे विषयो पर होने लगी। हम लोगो ने एक दूसरे से दिल्ली निवास के विषय मे जाना। उसने बताया कि साढे दस बजे वह त्रिचूर मे उतर जाएगी। रात में गाडी एक बडी नदी के ऊपर से गुजरी। उसने उसका नाम. .बताया। उसकी विशेषता बताई और अपने परिवार की जानकारी दी। बताया कि वह ऐसे उपयुक्त समय मे केरल जा रही है जब आमो का मौसम है। पके कटहल और नारियल पानी का आनन्द है। मैं उससे ईर्ष्या कर रहा था। उसी प्रक्रिया मे मै तिवारी जी से परिचित हुआ।

बाहर घने बाग निकट आ दूर भाग जाते। गाँवों-कस्बो का कभी न खत्म होने वाला सिलसिला.. दो गॉवों को जोडने वाले बाग.. बाग-ही-बाग। प्राकृतिक सौन्दर्य सदैव मेरी कमजोरी रहा है। उन दृश्यो को देख बचपन के गॉव की याद आती रही।

उस महिला से बाते करने के लिए मै तिवारी जी के पास जा बैठा था। बच्चे पत्नी पाँच नम्बर बर्थ पर सिमट बाहर के दृश्य को पी रहे थे।

तिवारी जी ने बताया कि वे 'लखनऊ मेल' से 28 मार्च को ही दिल्ली पहुँचे थे। साथ मे पत्नी बच्चो को भी जाना था, किन्तु उन लोगो के अकस्मात यात्रा रद्द कर देने के कारण अकेले जा रहे थे और उन्होने ही बताया कि जो बर्थ मुझे प्राप्त हुई, दरअसल वे उनके पत्नी-बच्चो के लिए आरक्षित थीं। मुझे लगा यह बता कर उन्होने मुझे एहसान से दबा दिया है।

तिवारी जी धीरे-धीरे खुलने लगे। मेरे मन में 'मनोहर कहानियाँ' ने उनके विषय मे जो धारणा पैदा की थी वह तिरोहित होने लगी। बातो का सिलसिला प्रारम्भ हो गया था।

पता चला वह बहराइच के एक दूर-दराज गॉव के रहने वाले थे, जो रुपइडिहा के पास है कही। रुपइडिहा की याद हो आई मुझे। छोटा भाई (राजकुमार) 1978-79) मे वहॉ के इण्टर कॉलेज से हाईस्कूल करने गया था। पढ़ने में सामान्य। बडे भाई ने वहॉ व्यवस्था कर दी थी, जिससे वह पास हो जाए। 1978 मे मै वहॉ गया था। सामान्य ही लगा था नेपालगंज। वहॉ दो जोड़ी कपडे खरीदे थे—पैण्ट-शर्ट। विदेशी माल था। आकर्षण था। सीमा पार करने की शर्त थी कि

नहीं सिलवाएँ। नाप दे दी। दो दिन बाद राजकुमार कपड़े ले आया था। बाद में पहनते हुए मन ने कितनी ही बार उन्हें अस्वीकार किया था।

"मेरा घर स्टेशन से आठ किलोमीटर दूर है शाहजहाँपुर लाइन पर। घर के पास का स्टेशन भी नजदीक है। कुछ वर्ष पहले तक साइकिल से चारबाग आता था, किन्तु जब से ट्रैफिक बढ़ा है, हिम्मत नहीं पड़ती। अब सुबह लखनऊ आने वाली किसी ट्रेन से आ जाता हूँ और ड्यूटी कर किसी गाड़ी से ही लौट लेता हूँ। इससे खतरा... ।"

तिवारी जी रेलवे में नौकरी करते हैं। वह बहुत कुछ अपने जीवन के विषय में बताने लगे थे। आदमी भले लगे। सामने वाले माँ-बेटा उतरने की तैयारी करने लगे थे। त्रिचूर आने वाला था। साढ़े ग्यारह का समय हो रहा था।

"पहली बार 'एर्नाकुलम' जा रहे हैं?" मैंने पूछा।

"नहीं, पहले भी कई बार आया हूँ। लेकिन दोपहर पहुँचा और काम कर रात की गाड़ी से मद्रास के लिए रवाना...।"

"तो इस बार रुकेंगे.. ।"

"हाँ। कल ही काम हो पाएगा। काम करके रात की गाड़ी से चेन्नै।"

त्रिचूर आ गया था। तिवारी जी उस महिला का सामान उतरवाने में सहायता करने लगे। मैंने भी एक सामान में हाथ बंटाया। उतरकर महिला लेने आने वाले अपने रिश्तेदार की प्रतीक्षा करने लगी। अच्छी हिन्दी बोल लेने के कारण हम लोगों में कुछ ही क्षण में दूरी कम हो गई थी। मैंने उसे सलाह दी कि बेटे को भेजकर स्टेशन के गेट पर देखवा ले। ए.सी टू-टियर कोच बिल्कुल पीछे होने के कारण स्टेशन से दूर था। वहाँ उतरने वाले यात्री अपने रिश्तेदारों से मिलकर किलक रहे थे। लेकिन उस महिला के माथे पर चिन्ता के बल स्पष्ट थे। सामान भी अधिक था। हालाँकि बातचीत से वह जीवटवाली दिखती थी और उसने कहा भी था कि कोई नहीं भी आएगा तो वह स्वयं टैक्सी ले कर चली जाएगी।

कुछ क्षण के लिए मैं अन्दर गया। लौटा तो देखा वह प्रसन्न थी। चेहरे पर मुस्कराहट खिली हुई थी। उसे लेने एक पुरुष और वृद्धा आए थे। स्पष्ट था कि उसका भाई और माँ होंगे। हमने नमस्ते की और अन्दर डिब्बे में आ गए। गाड़ी चली तो रंगीन शीशे से बच्चों को टाटा करता उसका हाथ हिला। हाथ मैंने और मेरे बच्चों ने भी हिलाया, वह देख नहीं पाई होगी। मैं सोचने लगा कि हम लोगों के मध्य कुछ घण्टे में ही कितनी आत्मीयता बढ़ गई थी। लेकिन दोनों परिवारों ने एक दूसरे के फोन नम्बर और पते नहीं लिए थे। हम जानते

थ कि यह आत्मीयता कुछ देर के लिए ही है। अपने आत्मीयो से मिलन के बाद वह यह भी भूल जाएगी कि उसके सहयात्री त्रिवेन्द्रम पहुँचे भी या नही, लेकिन जीवन मे आत्मीय क्षण महत्वपूर्ण तो होते ही है।

हम देश की उस खूबसूरत धरती पर दौड रहे थे, जिसका प्राकृतिक सौन्दर्य ही नही सभ्यता-सस्कृति भी अप्रातिम है। कश्मीर अपनी जिस अनूठी सुन्दरता के लिए जाना जाता है, केरल की अपने ढग की सुन्दरता कश्मीर से कम अनूठी नही है।

तिवारी जी पुन अतीत मे उतर चुके थे और नौकरी से जुडे सस्मरण सुनाने लगे थे। मैं उन्हे सुनता बाहर फैली सम्पदा का आनन्द भी लेता जा रहा था।

गाड़ी स्टेशन मे रुक गई। दस मिनट...बीस...एक घण्टा। यात्री परेशान। सूचना मिली कि कुछ तकनीकी खराबी है। घबडाहट हुई की त्रिचूर के बाद जो समय उसने कवर किया था, उससे अधिक लेट हो रही थी।

हम नीचे उतरे। खजाना ले जाने वाला लोहे का एक बॉक्स पडा था। तिवारी जी ने ही बताया कि छोटे स्टेशनो का खजाना उसमे जाता है। उसकी मजबूती बेमिसाल थी। उसमे डाला तो कुछ भी जा सकता था, लेकिन निकलना उसे सील तोडने के बाद ही था। एक युवक डालने की प्रक्रिया सीख कागज के टुकड़े उसमे डालने लगा था।

एक सरदार जी भी थे और उसके साथ एक मौना पंजाबी, जो पजाबी मे उस सरदार से बाते कर रहा था तो मलयालम मे बॉक्स मे कागज के टुकडे डालने वाले युवक से। दोनो ही मजाक करने मजा ले रहे थे। स्पष्ट था कि दोनो व्यापारी थे और मौना व्यापार के सिलसिले मे केरल मे ही कही रहता होगा। पहले मैंने उन्हे भी भ्रमणार्थी माना था और उनसे पूछने ही जा रहा था कि वे भी कन्याकुमारी तो नही जा रहे, लेकिन व्यावसायिक बाते करते और मजा लेते देख विचार बदलना पडा।

एक तीसरा व्यक्ति भी आकर उन दोनों के साथ शामिल हो गया। वह भी दिल्ली का पजाबी थी। दुबला, ठिगना, पतली कमर...ढीला-ढाला व्यक्तित्व। प्रारम्भ मे मैंने उन पर ध्यान नहीं दिया था। पॉच नम्बर बर्थ दरवाजे के पास होने के कारण वह जब भी बाथरूम जाता कुणाल से कहता, "हाँ पप्पू...कहाँ जा रहे हो। या "और पप्पू मजा आ रहा है?"

बाद मे तो बेटी उसे दूर से आता देख बेटे से कहने लगती, "होशियार पप्पू...तेरे चाहनेवाले आ रहे है।" और दोनो मुँह दबा हँसने लगते। वह पास

आता और फिर उसी स्वर मे—"ता पप्पू आइस क्रीम खाइ जा रही ह।"

उन्नीस, वीस और इक्कीस मे एक केरलाइट दम्पति और चार एक साल का वेटा था। वेटा चचल वाचाल। "मै आपसे नाराज हूँ पापा मै आपका वेटा नहीं हूँ।" वह पिता से नाराज होने का नाटक करता कहता। दो दिन हम उसके प्रति उदासीन रहे थे। मेरे वच्चो को वह आकर्षित कर रहा था, परन्तु दोनो को सकोच हो रहा था। लेकिन 29 मार्च की शाम से कुणाल ने उसके साथ दोस्ती गॉठ ली। उसे पटाने के लिए पहले उसकी मॉ के पास जा वैठा, फिर उसकी अनुमति ले वच्चे को अपनी वर्थ पर ले आया। माशा और कुणाल काफी देर उसके साथ खेलते रहे। प्यारा बच्चा था वह।

पप्पू वाले पजावी सज्जन को दो दिन से उस वच्चे को 'पप्पू' कहते हम सुन रहे थे। अव उसके साथ मेरा बेटा भी 'पप्पू' हो गया था "तो हॉ पप्पू ।"

वह भी नीचे उतर सरदार जी के साथ वातो में शामिल हो गया था। उसकी आवाज मिनमिनाती-सी थी, और लगता बोलते हुए उसे बहुत जोर लगाना पड रहा हो। लम्बी-कसे वदन की एक महिला थी क्रीमी-सलवार कुर्ते मे जो हर घण्टे मे बाथरूम जाती थी। जब भी वह वाथरूम जाती पर्स कधे पर लटकाए होती। मै सोचता अवश्य इसमे यात्रा मे खर्च करने के पैसे होंगे। आगे भी वह दम्पत्ति हम कई स्थानो मे मिला और उसका पर्स सदैव उसके कधे से लटकता ही मैने पाया।

ट्रेन मे कई ऐसे भी अवसर आए जब महिला आगे बिना पर्स वाथरूम जाने के लिए बीच का दरवाजा खोल रही होती और दबी दबी नाक बोलने वाला वह व्यक्ति पीछे होता और जो पर्स महिला के कधे पर लटकता होता, वह उस पुरुष के कंधे की शोभा बना होता। दो दिन तो मुझे समझ मे नहीं आया था, लेकिन तीसरे दिन समझा कि वह 'पप्पू' वाले अकल ही उस महिला के पति थे। महिला उससे कम-से-कम तीन इच लम्बी दिखती थी। बाद मे अन्य शहरो मे जब मैने उसे पत्नी के साथ देखा, लगा वह घर की मालकिन है और वह उसका नौकर।

गाडी हिलने का नाम नहीं ले रही थी। यात्री ऊबकर कभी डिब्बे मे धँसते तो फिर थोडी देर बाद नीचे यह जानने के लिए उतर आते कि अब क्या स्थिति है। लेकिन इस सबसे निरपेक्ष सरदार और उसके मौना साथी के मजाक जारी थे।

आखिर एक घण्टा बीस मिनट बाद गाडी खिसकी। तिवारी जी चिन्ता मे थे। वह सोच रहे थे कि गाडी सही समय 'एर्नाकुलम' पहुँच जाएगी। अब डेढ

से पहले पहुँचने की आशा न थी। वे मेरी यात्रा के विषय में जानने लगे थे। त्रिवेन्द्रम वे कभी नहीं गए थे। वे मन बनाने लगे कि त्रिवेन्द्रम जाएँगे। उन्होंने कंडक्टर को टिकट दिखा यह आश्वासन पा लिया कि वे 'एर्नाकुलम' के बजाय त्रिवेन्द्रम की यात्रा कर सकते हैं। रेलवे के आदमी ठहरे।

उन्होंने आकर घोषणा की कि अब वे त्रिवेन्द्रम ही जाएँगे। दूसरे दिन एर्नाकुलम आ जाएँगे। उन्होंने अटैची को पुन: जंजीर से बाँध दिया।

कुछ देर सोचते रहे। 'एर्नाकुलम' आने में दस मिनट रह गए थे। मैं उनकी मानसिक स्थिति भाप रहा था और उन्हें पढ़ी-सुनी सूचना के आधार पर त्रिवेन्द्रम के विषय में बता रहा था कि उन्हें वह शहर अवश्य देखना चाहिए कि वह केरल की राजधानी है, कि वहाँ 'पद्मनाभ मन्दिर' तथा दूसरी बहुत-सी चीजें देखने लायक है।

तिवारी जी उठकर पुन: कंडक्टर के पास गए, जो एर्नाकुलम मे उतरने वाला था। उससे उन्होंने दूसरे दिन त्रिवेन्द्रम से एर्नाकुलम लौटने के विषय मे पूछा और यह जानकर कि केरला एक्सप्रेस सुबह नौ बजे उन्हे मिलेगी जो पाँच घण्टे बाद वहाँ पहुँचेगी, वे पुन: सोच मे पड गए, क्योंकि उन्हे काम करके रात की गाडी पकड मद्रास जाना था।

एर्नाकुलम स्टेशन मे गाडी प्रविष्ट हुई। बच्चा अपने माँ-बाप के साथ सभी को नमस्ते कहता उतरने लगा। उसके पिता ने तिवारी जी को बताया कि त्रिवेन्द्रम तो कस्बा है, जबकि एर्नाकुलम शहर है। तिवारी जी ने विचार बदला और गाडी के स्टेशन पर रुकते-रुकते वे एक झटके में अटैची उठा बोले, "अब मैं यही उतरता हूँ। कौन जाए त्रिवेन्द्रम।" और वे उतर गए। वे इतनी जल्दी मे थे कि मेरे नमस्ते का जवाब देना ही भूल गए। मै मुँह ताकता रहा। वे जा चुके थे, लेकिन यह एहसास छोड गए कि मुसाफिर ऐसे ही होते है।

तिवारी जी के उतरते ही पत्नी और बेटी मुझ पर पिल पड़े, "आप जबर्दस्ती क्यों कह रहे थे उन्हें त्रिवेन्द्रम जाने के लिए..." और भी बहुत कुछ कहते रहे दोनो और मैं अपने को उस क्षण उस 'पप्पू' वाले सज्जन मे परिवर्तित होते देख रहा था और सोच रहा था कि उसकी पत्नी उसकी अपेक्षा जिस प्रकार के डील-डोल की है, उससे वह तो अक्सर उसके साथ ऐसे ही ढग से पिली रहती होगी।

मैंने दोनों से तौबा की कि अब भविष्य में किसी अपरिचित के साथ इतनी आत्मीयता नहीं दिखाऊँगा। लेकिन मुझ जैसे स्वभाव वाले व्यक्ति के लिए क्या यह सम्भव होगा .यह भी सोच रहा था।

गाडी एर्नाकुलम छोड रही थी।

मुझे अफसोस हो रहा था कि यात्रा की योजना बनाने मे कुछ गडबड रही वना एक दिन के लिए हम कोचीन जा सकते थे। कोचनी एर्नाकुलम से मात्र आठ किलोमीटर है।

एर्नाकुलम पीछे छूट गया था। हम त्रिवेन्द्रम की ओर बढ रहे थे।

"कोचीन के बहाने पुन यहाँ आऊँगा।" ... केरल ने मुझे अपने मे इस प्रकार बॉध लिया था जैसे किसी नायक को नायिका ने आलिगन मे ले रखा हो। मे केरल के सौन्दर्य में डूबता जा रहा था।

तीन बज चुके थे।

केरला एक्सप्रेस के त्रिवेन्द्रम पहुँचने का सही समय चार बजकर पचास मिनट है। लेकिन अभी हम एक के बाद एक लम्बी-लम्बी झीलो के ऊपर से गुजर रहे थे। एक बडी झील के ऊपर से ट्रेन गुजर रही थी। डिब्बे मे पिछले स्टेशन से नए यात्री चढ आए थे। खालिस केरलवासी। सम्भवत' टिकटें उनके पास दूसरे दर्जे की थी। क्योंकि सभी ने कडक्टर से कुछ बाते भी की मलियालम मे और मै यही समझा था कि सीधा-सा दिखने वाले कडक्टर ने सहज ही उन्हे दो-तीन घण्टे ए सी. मे बैठ लेने की अनुमति दे दी होगी।

झील को मैं नदी समझ बैठा। हमने आपस मे तो बात की और जब नही रहा गया तो कुछ दूरी पर बैठे व्यक्ति से अग्रेजी मे पूछ लिया, "सर, इस नदी का नाम क्या है?"

"ये नदी नहीं झील है।" उसने नाम भी बताया था और उसके साथ जुडी ऐतिहासिक दुर्घटना भी बताई थी कि इसी पर कुछ वर्ष पहले बैगलोर एक्सप्रेस पानी में डूब गई थी।

तीव्र गति से बहता झील का पानी ऑखों को शीतलता प्रदान कर रहा था। मै सोच रहा था कि ऐसी ही विशाल झीलो मे 'ओणम' के दिनो में नौका प्रतियोगिता होती होगी। काश! वह देख पाता।

झील खत्म हुई तो दोनो ओर बाग दौड़ने लगे थे।

पॉच बजने के लगभग एक छोटा स्टेशन आया। अमलताश के पेडो का आधिपत्य था। पीले फूलो से लदे पेड़ उतरने के लिए कह रहे थे। स्टेशन किञ्चित पहाडी स्टेशनो की याद दिला रहा था।

गाडी लेट तो अधिक थी किन्तु जब वह त्रिवेन्द्रम में प्रविष्ट हुई ठीक छ बज रहे थे। सामान्य-सा स्टेशन। दिल्ली जैसी न चहल-पहल, न भव्यता। लेकिन

था साफ-सुथरा। उतर कर हमने एक ओर सामान रखा और चारो ओर नजर दोड़ाने लगे कि शायद कोई लेने आया हो लेकिन कोई नही दिखा। सोचा, सहायक स्टेशन मास्टर से पूछना चाहिए। एक-दो कुलियो ने सामान ले जाने के लिए पूछा। लेकिन मना करने के बाद दोबारा नही कहा। मै मन-ही-मन सोच रहा था कि यदि दिल्ली होता तो . दस कुली घेर लेते और ऐसे चिपकते कि प्राण बचाना कठिन होता।

अटैचियाँ टाग जिधर दुनिया चल रही थी, चल पडे। पुल चढकर फिर नीचे उतर प्लेटफार्म नम्बर-1 था। मैं धीरे-धीरे सीढियाँ उतरने लगा। पत्नी-बच्चे अलग-बगल चल रहे थे।

दो हंसमुख चेहरे

अभी कुछ सीढियाँ ऊपर ही था कि एक युवक पर दृष्टि पडी। वह कभी हाथ मे पकडे कागज को तो कभी मुझे देख रहा था। साथ मे नाटे कद का सफेद, लुगी-कमीज में एक और व्यक्ति था। उम्र कोई पैंतीस। मुझे याद आया कि ''केरल हिन्दी प्रचार सभा'' के सचिव डॉक्टर एम.के वेलायुधन नायर ने फोन पर कहा था कि 30.3 97 को मेरे पहुँचने पर 'प्रचार सभा' का कोई-न-कोई व्यक्ति स्टेशन पर लेने आएगा।

''शायद वही हो।''

केरल हिन्दी प्रचार सभा के विषय मे बहुत पहले से मालूम था। वरिष्ठ साहित्यकार विष्णु प्रभाकरजी की जुबानी अनेकों बार उन सबकी प्रशसा सुन चुका था। दक्षिण भारत यात्रा का कार्यक्रम तय होने के पश्चात् मैंने अपने उन मित्रो को सम्पर्क किया जो वेलायुधन नायर से परिचित थे। उनसे अनुरोध किया कि वे 30 3 से 2.4 (पूर्वान्ह) तक के लिए नायर साहब को पत्र लिख कर मेरे ठहरने के लिए अतिथिगृह मे व्यवस्था करने के लिए कह दें। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से हताशा मिली थी। तब मैंने स्वयं दिल्ली 'केरल सूचना केन्द्र' से 'केरल हिन्दी प्रचार सभा' के सचिव का फोन नम्बर और पता माँगा था। और उन लोगो के व्यवहार ने यहाँ भी मुझे आश्चर्यचकित किया था। उनकी व्यावहारिकता अद्भुत थी। तत्काल वे सूचना न दे पाए थे। उन्होंने मेरे घर का फोन नम्बर और पता ले लिया था और उसी दिन शाम सात बजे घर पर फोन कर मुझे सूचना उपलब्ध करवाई थी। उनके व्यवहार ने मुझे बता दिया था कि कितने संस्कारित है केरलवासी

मैंने डॉक्टर नायर को अपने त्रिवेन्द्रम पहुँचने और ठहरने के विषय में पत्र लिखा था। पत्र के साथ अपना साहित्यिक परिचय भी नत्थी कर दिया था। दस दिन बाद फोन किया तो डॉक्टर वेलायुधान साहब से सीधे बात हुई थी। बातचीत मे सौम्यता टपक रही थी उनके। उन्होने आश्वस्त किया था कि मेरा पत्र उन्हे मिल चुका था और वे किसी को स्टेशन भेज देगे। दोनो ही सहायक स्टेशन मास्टर से सम्पर्क कर लेंगे। असुविधा होने पर बाहर देख लूँगा तो 'प्रचार सभा' की गाडी दिख जाएगी। मेरे पहुँचने वाले दिन उन्हें दिल्ली रहना था। उन्होंने यह भी बताया कि 'प्रचार सभा' का 'गेस्ट-हाऊस' अभी बन रहा है, लेकिन वे कहीं-न-कहीं ठहरने की व्यवस्था अवश्य कर देंगे।

चलने से दो दिन पूर्व स्मरण करवाने के लिए मैंने पुनः फोन किया तो वहाँ भी प्रशासनिक अधिकारी शान्ताकुमारी मिली थीं। उन्होने भी किसी के पहुँचने की बात कही थी। पूछा तो बोली, "उसका नाम गोपिन है।"

और मुझे समझते देर न लगी कि वह युवक गोपिन ही होगा। संयोगत दोनो ने ही एक-दूसरे को पहचान लिया था। मेरे मुँह से, 'यू आर मिस्टर गोपिन' तो उसके मुँह से 'मिस्टर चन्देल' एक साथ निकला था। मैंने देखा मेरा परिचय उसके हाथ मे था और वह मेरे चित्र से मुझे पहचानने का प्रयत्न कर रहा था।

गोपिन और उसके साथ वाले व्यक्ति ने मेरी अटैचियाँ थाम ली थी। अच्छा लगा, साहित्यकार होने का सम्मान था वह।

दोनो मे फुर्ती थी। मैं अग्रेजी में जो भी पूछ रहा था, गोपिन हूँ–हाँ मे जवाब दे रहा था। समझ गया कि उसे अंग्रेजी भली-भाँति नहीं आती। दूसरा व्यक्ति ड्राईवर था। और बाद मे पता चला कि उसे अच्छी हिन्दी आती थी।

कार चली तो मैने गोपिन से पूछा, "यहाँ कहीं 'होटल चैत्रम' है?"

"यस सर . पास मे ही है।" लड़खड़ाती अग्रेजी मे वह बोला।

"यहाँ से गैस्ट हाऊस कितने किलोमीटर है?"

गोपिन ने ड्राईवर से मलयालम मे बात की फिर बोला "फोर–फाइव किलोमीटर।"

दिल बैठ गया। साढ़े छः बज रहे थे। उतनी दूर जाकर सामान पटक पुन उसी कार मे लौटना ठीक रहेगा। अगले दिन यानि 1.4 97 के लिए त्रिवेन्द्रम घूमने के लिए "केरल टूरिज्म डेवलैप्मैन्ट कार्पोरेशन" से टिकट लेना था। उसी दिन लेना ठीक था। दूसरे दिन न मिली तो ।

"होटल चैत्रम होकर चल सकेंगे. कल त्रिवेन्द्रम घूमने के लिए टिकट बुक करवा लूँ।" गोपिन को समझाया।

"यस सर।" गोपिन बोला और ड्राईवर को समझाने लगा मलयालम में।

और दो मिनट में हम होटल चैत्रम मे के टी.डी सी (केरल टूरिज्म डेवलेपमेण्ट कार्पोरेशन) कार्यालय के सामने थे।

कावाडियार रोड

1 4 97 के लिए तिरुअनन्त पुरम के स्थानीय प्रमुख स्थानो, कोवलम वीच, सनमुघम बीच, नायर डैम और वैली लैगून देखने के टिकट लेकर हम गेस्ट हाउस के लिए चले। पॉच मिनट पश्चात् ही स्टेशन के सामने की चहल-पहल नदारत थी। चौडी सडकों पर दौड़ते वाहनो की संख्या कम थी। रिहाइशी इलाको से गाडी गुजर रही थी। लेकिन लोगो की सख्या कम थी। दुकानो और बस-स्टैण्डो पर ही लोग दिख रहे थे। चारों ओर शान्ति लेटी हुई थी। आश्चर्यजनक बात यह कि रास्ते मे कोई बडा बाजार नहीं दिखा। पुलिस कमिश्नर कार्यालय, महिला महाविद्यालय से होते हुए हम कावडियार मार्ग पर आ गए थे। अंधेरा घिरने लगा था और सडक पर सूनापन पसरा हुआ था। सडक के दोनो ओर वड़ी कोठियॉ मौन साधे खडी थी। दिल्ली की भाति कोठियो के स्वामी अपनी धनाड्यता का प्रदर्शन करते नही दिख रहे थे। यहॉ दुकानो का कही नामो निशान न था। बांयी ओर एक छोटी-सी दुकान अवश्य दिखी और उससे दो कदम पर एक को-ऑपरेटिव स्टोर। गाडी उससे दो कदम आगे जाकर दाहिनी ओर मुड गई। यह गोल्फ लिंक रोड था। उसमे बायी ओर बाई लेन में मुडकर और दस मकान छोड़ गेस्ट हाउस था। यह एक कोठी थी, मेरे कल्पना का गेस्ट हाउस नहीं। हम उतरे। गोपिन दरवाजा खोल अन्दर गया। देखा सीढियॉ चढ़ आधी सीढियों पर खड़ा हो वह एक व्यक्ति से बातें करने लगा है। वह व्यक्ति ऊपर खडा था, लग रहा था जैसे वह प्रथम तल पर है, लेकिन वह था ग्राउण्ड फ्लोर। दरअसल यहाँ के मकान सडक से पॉच छ फीट ऊँचाई पर बनाए गए थे इसलिए ग्राउण्ड फ्लोर फर्स्ट फ्लोर का आभास देते थे

ऊपर खड़ा आदमी मलयालम मे गोपिन को कुछ समझाता नीचे सीढियों तक आ गया था। दोनो का वार्तालाप समझ नही आई। दो मिनट बाद गोपिन नीचे उतरा और गेट पूरा खोलकर गाडी अन्दर ले जाने के लिए ड्राईवर को इशारा किया। हम सब बाहर खड़े थे। गेट के ठीक सामने गैराज था। गाड़ी गैराज मे खडी कर गोपिन और ड्राईवर सामान उतारने लगे तेजी से।

दोनो ने सामान ऊपर पहुँचाया। हम हाल मे पहुँचे तो वहाँ टी वी पर कोई कार्यक्रम आ रहा था और एक गोरे से सज्जन बैठे थे। सोचा वह भी वहाँ ठहरा होगा या गेस्ट हाउस का मैनेजर होगा। उन्होंने 'हैलो' कर अभिवादन किया। उत्तर दे हम गोपिन के पीछे हो लिए। फर्स्ट फ्लोर मे हमारे लिए तीन बिस्तरों का कमरा तैयार था। गोपिन ने बनियान वाले उस आदमी को कुछ निर्देश दिए जिसमे हमने चपाती शब्द समझा। शायद उसने सोचा कि हम उत्तर भारतीय चपाती ही पसन्द करते होगे। इसलिए भोजन में वह उसी की व्यवस्था करना चाहता होगा। बनियान वाला आदमी सिर हिलाकर स्वीकृति दे रहा था। गोपिन और ड्राईवर को मैने धन्यवाद दिया और 2 अप्रैल को उनके कार्यालय जाकर सभी से मिलने के लिए कह उन्हे विदा किया।

कमरें में पहुँच हमने नहाने की तैयारी शुरू कर दी। तभी दरवाजे पर दस्तक हुई। वही बनियान-लुगी वाला व्यक्ति था। दो बोतलों में ठण्डा पानी और गिलास लेकर हाजिर था वह। समझने में देर नही लगी कि वह गेस्ट हाउस का चोकीदार-कम-रसोइया है। उसने इशारे से चाय के लिए पूछा। हमने उसी भाँति उसे समझाया कि वह चाय ले आए। कुछ देर बाद वह चाय लाया, और ऐसा लगा जैसे वह किसी बहुत ही अनुभवी कुक ने तैयार की है। उसने खाने के विषय में पूछा कि कब भोजन करेगे। हमने नौ बजे का समय दिया। वह चला गया तो हम चाय पीते कमरे के बाहर का जायजा लेने लगे। कमरे से सटी लम्बी छत थी—खुली। पीछे एक बड़ा मकान था और बगल मे एक ऐसा मकान, जिसके बेडरूम से लेकर किचन तक का दृश्य दृष्टव्य था। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से वहाँ चलती-फिरती छायाएँ ही दिख रही थी। चेहरे नहीं। किचन में काम करते हाथ तो दिख रहे थे किन्तु वे किसके थे, पता नहीं चल रहा था।

तैयार होकर हम अगले दिन सुबह जाने-आने की दृष्टि से रास्ता पहचानने और आस-पास से परिचित होने के लिए सवा आठ बजे निकले। गोल्फ लिंक रोड मोड पर रुके एक ऑटो वाले से पूछा कि सुबह सात बजे वहाँ आटो मिलते

हे या नहीं। 'मिलते है।' उसने 'यस सर' कहकर उत्तर दिया। किराया पूछा तो उसने बताया पन्द्रह रुपए होगा स्टेशन तक का किराया। त्रिवेन्द्रम के लिए चलने से पूर्व एक दिन टी.वी. मे दिखाया गया था कि त्रिवेन्द्रम के 'ऑटो ड्राईवर एशोसियेशन' ने अपना एक अखबार निकाला है, जिसके वे ही सम्पादक, रिपोर्टर ओर प्रकाशक है। उसी रिपोर्ट में था कि अधिकाश ड्राईवर पढे-लिखे अर्थात कम-से-कम मैट्रिक और अनेक ग्रेजुएट है। मैने इस विषय में उससे बात की। वह मैट्रिक पास था। इसलिए सहजता से मेरी बात भी समझ रहा था और उत्तर भी दे रहा था।

हम कावाडियार मार्ग पर दूर तक निकल गए। गोल चौराहे से पहले रुके। रास्ता साफ था और जगह-जगह नियॉन लाइट से युक्त। इक्का-दुक्का फुटपाथ पर चलते लोग मिले तेजी से अपने गन्तव्य की ओर जाते। चहलकदमी करता कोई नहीं दिखा। बसें, ऑटो और कारें सडक पर दौड़ रहे थे, लेकिन सख्या कम थी। कई बार पॉच-सात मिनट तक कोई वाहन न गुजरता और सन्नाटा हमारे साथ-साथ चलता। अच्छा लगता। नया शहर था, अपरिचित, लेकिन भय का नामोनिशान नहीं। ऐसी स्थिति मे दिल्ली होता तो मै सोच रहा था। कितने असुरक्षित हैं हम देश की राजधानी में...

हम लौट पड़े। गोल्फ लिक रोड पर खडा ऑटो जा चुका था। फुटपाथ के एक कोने में तरबूजों के ढेर के पास एक व्यक्ति बैठा ऊँघ रहा था। घडी देखी, पौने नौ बजने वाले थे। हम तेजी से गेस्ट हाउस की ओर लपके। ऊपर हॉल में पहुँचते ही सुनाई दिया कि काग्रेस ने 'सयुक्त मोर्चा' सरकार से समर्थन वापस ले लिया है।

"यह क्या?" बेसाख्ता मुँह से निकला। मैं सोफे में धंस गया और समाचार सुनने लगा। चौकीदार हॉल के साथ लगी किचन के दरवाजे पर खडा था। सामने सोफे पर शाम वाले गोरे सज्जन बैठे थे। बगल में उसकी पत्नी और उसके ठीक सामने एक सांवला व्यक्ति। वे आपस में बाते करने लगे थे। समाचार सुनते मैने 'हैलो कर' अभिवादन करने वाले सज्जन से कुछ पूछा, लेकिन उसने कोई उत्तर नही दिया। मुझे अच्छा नहीं लगा, लेकिन बाद मे सोचा कि शायद उसने सुना नही होगा या पत्नी के साथ बातो में मशगूल होने के कारण उत्तर टाल गया होगा।

उसकी पत्नी गर्भवती थी और वह उसे कुछ अधिक प्यार कर रहा था

"देवा गौडा हमारा नेता था, नेता है और नेता रहेगा।" टी.वी. पर बिहार के मुख्यमंत्री लालू यादव अपनी छडी हिलाते पत्रकारो को बता रहे थे।

कांग्रेस के समर्थन वापस लेने के समाचार के बाद मैं उठकर ऊपर कमरे में चला गया। ठीक नौ बजे हम भोजन की टेबल पर थे।

चौकीदार ने जो खाना परोसा वह हमें आश्चर्यान्वित कर गया। इतना अच्छा उत्तरभारतीय भोजन...केरल में.. लेकिन वास्तविकता सामने थी।

हम जल्दी ही सो गए, क्योंकि सुबह हमें जाना था।

पुराकथाओं से इतिहास तक की यात्रा

गेस्ट हाउस का नाम था 'एकेल्ट्रान'। सुबह निकलने से पूर्व चौकीदार से, जिसका नाम कृष्ण नायर था, गेस्ट हाउस का नाम पूछा तो अपनी विशिष्ट मलयाली उच्चारण मे उसने जो बताया वह समझ मे नहीं आया। रात उसने 'गोल्फ लिंक' रोड के विषय मे बताया, तो हम सभी को सुनने में आया था 'गोल्फ्रिन रोड।' चौकीदार के साथ संकट यह था कि वह हिन्दी, अंग्रेजी समझता नही था और मलयालम हमे नही आती थी। किसी प्रकार काम निकालने की बात थी। मैंने टूटी-फूटी अंग्रेजी मे जानना चाहा कि क्या गेस्ट हाउस किसी कम्पनी का है तो वह बहुत देर तक मेरी बात नहीं समझा। बाद में कुछ सोचकर बताया कि वह राज्य सरकार के किसी मंत्री का बंगला है। मंत्री महोदय ने उसे 'गेस्ट हाउस' बना दिया था।

रात दो बजे नींद खुली तो पानी गिरने की आवाज सुनाई दी। लगा बारिश हो रही है। "सुबह शहर और आस-पास घूमने जाना है... बारिश होती रही तो.. ' कुछ देर सोचता रहा और पानी गिरने के विषय मे अनुमान लगाता रहा। कुछ देर बाद महसूस किया कि पडोसी मकान के बाथरूम में नल बह रहा था।

"कमाल है . मकान मालिक इतनी गहरी नींद सोया है कि पानी की आवाज उसे बाधित नहीं कर रही है।"

पानी मेरी कमजोरी है। सभी की होती है। दिल्ली मे दूसरी मंजिल मे जाडे मे भी अपर्याप्त पानी आता है। मोटर न चले तो हम एक-एक बूँद पानी के लिए तरस जाएँ और कभी-कभी ऐसा होता भी है। मन मे बार-बार आ रहा था कि वश चलता तो मै ही नल बन्द कर देता या आवाज देकर करवा देता। लेकिन वहाँ जो मैंने देखा था उससे तो यही अनुमान लगा था कि कोई किसी से सम्बन्ध

नहीं रखता। सब अपने में डूबे–खोये–शान्त। वैसे सम्बन्ध तो अब कहीं भी नहीं रखते लोग।

सोने की कोशिश। लेकिन चार बजे तक दो बार जगा। सुबह सात बजे निकलने की चिन्ता थी।

सात से पहले ही हम निकल पड़े थे। कावडियार रोड पर लोगों से स्टेशन जाने वाली बस के विषय में पूछा। बस स्टैण्ड के संकेत कहीं न थे। खम्बे ही उनके निर्धारित स्टैण्ड थे। पाँच मिनट एक खम्बे के पास रुके। एक सवारी और थी। उससे पूछा। उसने पीछे खम्भे की ओर इशारा कर दिया। एक बस वहाँ रुकी, लेकिन जब तक हम निर्णय लेते वह चल दी। दूसरी को आती देख हाथ दिया। उसने इतनी दूर रोका कि दौड़ना कठिन लगा। कुछ कदम बढ़े फिर उसे इशारा किया जाने के लिए। लेकिन नहीं, बस रुकी रही। अन्ततः हमें आता न देख वह आगे सरक गई।

अन्त में ऑटो ले हम स्टेशन पहुँचे। यहाँ ऑटो वालों की विशेषता यह देखी कि वे अधिक किराया नहीं माँगते। सौजन्यता का भाव होता है उनमें और सभ्यता से बात करते हैं।

हम स्टेशन सात बजकर बीस मिनट पर पहुँच गए। सीधे 'होटल चैत्रम' के के.टी.डी.सी. कार्यालय गए। वहाँ पहुँचने वाले हम पहले यात्री थे। टूरिस्ट बस आठ बजे की थी। वहाँ बैठे क्लर्क ने आठ बजे आने के लिए कहा।

"क्यों न कल के लिए कन्याकुमारी की टिकट ही बुक करवा लें?" मैंने पत्नी से पूछा।

उसने सहमति व्यक्त की। बस अड्डा पास ही था। मैं काउण्टर पर पहुँचा। पाँच सौ रुपए का नोट देख बुकिंग क्लर्क अंग्रेजी में बोला, 'खुले दीजिए।'

"वह तो नहीं हैं।" हालाँकि थे लेकिन मैं पाँच सौ का नोट तोड़वाना चाहता था। दरअसल मेरे पास पाँच सौ वाले बहुत नोट थे, जबकि सौ के मात्र बीस।

"काऊण्टर शाम सात बजे खुला होगा?"

"जी हाँ, मैं रात नौ बजे तक आपको यहीं मिलूँगा।"

"आप मिलेंगे?" आश्चर्य से मैंने पूछा।

"जी हाँ, मैं ही. केवल मैं ही।" उसका स्वर विनम्र था।

मुझे पुनः आश्चर्य हुआ कि एक व्यक्ति सुबह सात बजे से रात नौ बजे तक की ड्यूटी करता है। और वह भी सरकारी। क्या यह सम्भव है? लेकिन वह व्यक्ति बता रहा था, फिर अविश्वास क्यों? और सच ही शाम जब सात बजे हम वहाँ से गुजरे तो वही व्यक्ति हमें बैठे दिखा था।

"लोग कितना परिश्रम करते है।" मै सोच रहा था। "इस देश मे एक ये लोग है और एक वे जो करते कुछ नही और अरबो के घोटाले कर ऐसे बैठे है जैसे कुछ हुआ ही नही। तीसरी ओर वे लोग है जो दूसरो के श्रम पर अय्याशी कर रहे है। यह व्यापारी और सत्ता के दलालो का वर्ग है। चौथी श्रेणी मे विश्वविद्यालय और कॉलेजों के वे अध्यापक हैं जो कम-से-कम कक्षाएँ लेकर आई ए एस. अधिकारियो के बराबर वेतन भोग रहे है। पाँचवी ओर वे है जो उच्चाधिकारी होने के अनुचित लाभ ले रहे है और करोडो के घपले कर रहे है। मै जब यह सब सोच रहा था तभी पत्नी ने टोका, "खडे सोच क्या रहे हो कहीं ट्राई कर लो, हो सकता है नोट टूट जाए।"

"हॉ यह भी ठीक है।"

हम दुकानो की ओर बढ़े। कई दुकानों में पूछने के बाद एक ने नोट तो दिया।

हमने दो अप्रैल की दोपहर बारह बजे की बस से कन्याकुमारी के लिए आरक्षण करवाया और घूमने निकल गए। हमारे पास तब भी पन्द्रह मिनट शेष थे। हम दूर तक यह देखने के लिए चलते गए कि मोड के बाद जो सडक है उधर क्या कोई बाजार है। लेकिन वहॉ पहुँचकर हमें निराशा हाथ लगी। बाजार जैसा कुछ भी नहीं दिखा। दफ्तर थे। मुझे लगा सात पहाडियो के मध्य बसा तिरुअनतपुरम.. अर्थात भगवान विष्णु का शयन क्षेत्र दफ्तरों और खूबसूरत रिहायशी मकानो का शहर है।



शायद इसीलिए वह केरल की बना

के टी डी सी की एस बस

परिचय देते हुए वह कह रहा था "सबसे पहले हम श्री पद्मनाभ मन्दिर जाएँगे।" उसने घडी देखी, मैने भी. साढे आठ बजा था।

दस मिनट बाद हम मन्दिर के पास थे।

द्रविड़ शैली मे निर्मित मन्दिर की वास्तुकला बेजोड है। देखकर मै मुग्ध रह गया। मुग्ध इसलिए भी, क्योंकि दक्षिण भारत के मन्दिरो की शृखला में वह पहला मन्दिर था जिसे हमने देखा था। मन्दिर के विषय मे बहुत कुछ सुन-पढ रखा था।

मन्दिर के गोमुख के सामने की सडक पर सीप-शख और लकडी से निर्मित वस्तुओ की दुकाने थी। बाई ओर एक तालाब था जिसमे पानी कम था। मन्दिर मे प्रवेश की शर्त यह थी कि पुरुषो को कपडे उतार धोती पहन अन्दर जाना होता है। स्त्रियाँ भी जो सलवार कुर्ते मे होती हैं उन्हें भी धोती पहननी होती है। पास मे एक कमरे मे यह सब उपलब्ध था, पॉच रुपए प्रति धोती। मैने और कुणाल ने कपडे बदले। सुविधा यह थी कि पैण्ट के ऊपर ही उन्होने धोती लपेट दी। मंदिर की एक बात समझ मे नही आई कि उसमे गैर-हिन्दुओ का प्रवेश वर्जित है। पूजास्थलों को क्यो नही सभी धर्मो के लिए खोल दिया जाता? प्रश्न उठता है कि क्या दूसरे धर्मानुयायी पुजारियों या मन्दिर प्रबन्धनो द्वारा निर्धारित नियमो का पालन करते मन्दिर के अन्दर नहीं जाते होंगे। माना कि ये नियम सैकड़ों वर्षो से चले आ रहे है; किन्तु स्वतत्र भारत मे सर्वधर्म समभाव या साम्प्रदायिक सद्भाव की बाते करने वाले लोगो का क्या यह कर्तव्य नहीं बनता कि वे मन्दिर के नियमों मे उदारता लाने का प्रयत्न करते। क्या किसी अन्य धर्मावलबी के प्रवेश मात्र से मन्दिर अपवित्र हो जाएगा! तो फिर देश की जनता का रक्त चूसने वाले, अरबों का घोटाला करने वाले, हत्या, लूट, बलात्कार जैसे जघन्य अपराधो मे लिप्त लोगों को वहाँ प्रवेश क्यो दिया जाता है? हर धर्म मानवता की सिफारिश करता है। तो फिर क्या दूसरे धर्मावलबी इसान नही? यह एक विवादास्पद विषय है और सनातन कहे जाने वाले हिन्दू धर्म को समयानुकूल अपनी नीतियो-नियमो का पुनरावलोकन कर पुनर्निर्धारण करना चाहिए। नियमो की रूढता विकास में बाधक होती है।

मन्दिर में प्रवेश करने तक मैं यही सब सोचता रहा था। हमारी बस मे एक सरदार दम्पति था। पुजारियो ने सरदार युवक की पगडी उतारने के लिए कहा, जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। और दोनो पति-पत्नी मन्दिर में नही गए, जबकि पत्नी सलवार-कुर्ता पर धोती लपेट सकती थी। सरदार युवक को अपने धर्म मे हस्तक्षेप खला था। पगडी तो उसके सिखत्व की पहचान है। यदि वह

पगडी पहने चला जाता तो क्या मन्दिर अपवित्र हो जाता? उसने पत्नी को रोक दिया था।

सम्पूर्ण भारत मे 'अनन्तशयनम' के नाम से विख्यात श्री पद्मनाभ मन्दिर की प्राचीनता सिद्ध करना कठिन है। आज तक ऐसा कोई दस्तावेज उपलब्ध नही हुआ, जिससे निश्चित तौर पर यह कहा जा सके कि यह मन्दिर किसने और कब बनवाया था और श्री विष्णु की अनतशायी झुकी मूर्ति की स्थापना उस स्थान पर कब की गई थी। त्रावणकोर के प्रसिद्ध इतिहासविज्ञ, विद्वान स्वर्गीय डॉक्टर एल.ए रवि वर्मा के अनुसार इस मन्दिर का निर्माण कार्य पाँच हजार वर्ष पूर्व कलियुग के प्रथम दिवस को प्रारम्भ हुआ था। सैकडों वर्षो से प्रचलित पुराकथाएँ इस भगवतस्थल की अति प्राचीनता को प्रमाणित करती है। ऐसी ही एक पुराकथा, जो ताड पत्रो तथा प्रसिद्ध ग्रन्थ—'अनंतशयन-महात्म्य' मे उल्लिखित है, इसमे कहा गया है कि यह मंदिर कलियुग के नौ सौ पचासवें दिन तुलुब्राह्मण तपस्वी दिवाकर मुनि द्वारा स्थापित किया गया था।

दिवाकर मुनि के विषय मे 'अनतशयन महात्म्य' मे कहा गया है कि वे बहुत बडे विष्णु भक्त थे। एक बार वे विष्णु की घोर तपस्या कर रहे थे। एक दिन उनके समक्ष दो वर्ष के सुन्दर चपल बालक के रूप में अपनी पहचान छुपाकर महाविष्णु प्रकट हुए। तपस्वी मुनि बालक की मनोहारी छवि के प्रति आकर्षित हुए और अनिच्छापूर्वक उसके विषय मे सोचने के लिए विवश हो गए। उन्होने उस बालक से इच्छा व्यक्त की कि वह उनके साथ रहे। बालक ने साथ रहने की एक शर्त रखी कि वह हर समय उसकी हर एक बात का सम्मान करेगे ओर वे जब ऐसा नहीं करेगे वह उनका साथ छोड देगा। संन्यासी ने बालक की शर्त स्वीकार कर ली। तपस्वी बालक की बालसुलभ चपलताओ की ओर ध्यान न देकर उसे अत्याधिक प्यार करने लगे। एक दिन जब दिवाकर मुनि प्रार्थना के समय गहन ध्यानावस्था मे थे, बालक ने पूजा के लिए प्रयुक्त होने वाला शालिग्राम उठाकर उनके मुँह मे डाल दिया और कुछ यो उत्पात मचाया कि तपस्वी का धैर्य चुक गया। उनका क्रोध जाग्रत हो उठा। उन्होने बालक को पीटना प्रारम्भ कर दिया। परिणामतः निर्धारित शर्त के अनुसार बालक वहाँ से अदृश्य हो गया। अदृश्य होने से पूर्व उसने मुनि से कहा "यदि आप मुझे पुनः देखना चाहते है तो मुझे 'अनन्तकाडु' मे पा सकेंगे। तब दिवाकर मुनि को अनुभूति हुई कि वह बालक वास्तव मे कौन था। दिवाकर मुनि का मन अत्यधिक अशान्त हुआ ओर अनेक दिनो तक भोजन, आराम और निद्रा त्याग वे उस बालक को खोजते भटकते रहे। और एक दिन वे समुद्र तट के पास घने वृक्षों से युक्त क्षेत्र मे पहुँचे, जहाँ

उन्हे विशाल 'इलप्पा' वृक्ष मे अदृश्य होते उस बालक की झलक दिखाई दी। तुरन्त ही वह वृक्ष धराशायी हो गया और मुनि को आश्चर्यान्वित करता महाविष्णु की अनन्तशायी मूर्ति के आकार मे परिवर्तित हो गया। उस अलौकिक मूर्ति का सिर तिरुवल्लभ में (तिरुअनतपुरम फोर्ट से तीन मील दूर) और पैर त्रिपापुर (विपरीत दिशा मे पॉच मील दूर) मे थे अर्थात् वह मूर्ति तिरुवल्लभ से त्रिपापुर तक लम्बी थी (लगभग आठ मील)। मुनि मूर्ति की उस अलौकिक स्थिति से परेशान हो उठे। उन्होने प्रार्थना की कि वह आकर मे छोटी हो जाए, जिससे वह भली-भाँति उसके दर्शन कर सके। प्रार्थना का प्रभाव हुआ और मूर्ति सन्यासी की योगदण्ड से तीन गुना लम्बाई के आकार मे सिकुडकर छोटी हो गई। सन्यासी ने कृतार्थतापूवक उस लकड़ी की मूर्ति की पूजा-अर्चना की। भगवान विष्णु प्रसन्न हुए और उन्होने निर्देश दिया कि भविष्य मे उनकी पूजा उसी स्थान पर उस क्षेत्र के निवासी तुलु ब्राह्मणो द्वारा ही की जाए। दिवाकर मुनि स्वय भी उसी जाति के थे। परिणामत जितने भी पुजारी इस मन्दिर मे नियुक्त होते हैं उसमे से आधे इसी जाति के होते हैं।

मुझे इस मन्दिर के विषय में प्रचलित एक अन्य कहानी भी बताई गई। कुछ लोग इस मन्दिर को प्रसिद्ध संन्यासी विल्वमगल स्वामी से जोडते हैं, जिनका नाम दक्षिण भारत के अनेक मन्दिरों के इतिहास से जुडा हुआ है। स्वामी बिल्वमगल नम्बूदरी ब्राह्मण थे और विष्णु के परम भक्त थे। इनके साथ भी दिवाकर मुनि की जैसी ही कथा मन्दिर के सम्बन्ध मे जुडी हुई है। कहा जाता है कि जब महाविष्णु अनन्त काडु मे अनतशयन रूप मे सन्यासी के समक्ष प्रकट हुए तब सन्यासी के पास प्रस्तुत करने के लिए कुछ भी नही था। पास ही खड़े एक आम के पेड से सन्यासी ने कुछ कच्चे आम तोड लिए, उन्हे नारियल के एक खोखल मे रखा और निवेद्यम में रूप मे उसे महाविष्णु के समक्ष प्रस्तुत किया। आज भी निवेद्यम के लिए प्रयुक्त पूजा के पात्र मे, जो आधे नारियल पर स्वर्ण-जडित होता है, पूर्व परम्परा की स्मृति शेष के लिए कच्चा आम या उसका खट्टा रस जाता है। सैकड़ो वर्षो से इस पदमनाभ मन्दिर मे प्रात:काल पुष्पांजलि पूजा होती है, जिसे नम्बूदरी ब्राह्मण सम्पन्न करते हैं और ये ब्राह्मण विशेष रूप से इसी पुष्पाजलि पूजा के लिए ही नियुक्त होते है।

नौ बजे के लगभग मैं बेटे के साथ मन्दिर में प्रविष्ट हुआ। पत्नी और बेटी कैमरा और बैग आदि सभालने के लिये बाहर ही बैठे। मन्दिर के खम्बो, दीवारो पर उत्कीर्ण मूर्तियॉ बरबस ध्यान आकर्षित कर रही थीं। अन्दर क्षीण प्रकाश था। लेकिन चीजें स्पष्ट दीख रही थी। दक्षिण भारतीय श्रद्धालु छोटी-छोटी मूर्तियो

की पूजा कर रहे थे। पुजारियो की संख्या गिनना कठिन था और पूजा सामग्री बेचने वालो ने तो गोमुख से प्रविष्ट होते ही पकड लिया था। उनसे बचकर मै लगभग दौडता-सा अन्दर बढ़ा था। सदैव मुझे मन्दिर के इन लोगो से भय लगता रहा है। सीधे जाने पर अनतशायी महाविष्णु की मूर्ति दिखाई दी, लेकिन वहॉ प्रकाश अत्यन्त क्षीण था . चिराग टिमटिमा रहे थे। पुजारियो ने मूर्ति को घेर रखा था और पूजा का धुँआ इतना अधिक था कि प्रकाश के अभाव और धुँए के अधिक्य के कारण स्पष्ट देख सकना कठिन था। फिर भी महाविष्णु की एक झलक देखने को मिल गई थी।

मुझे बताया गया कि पुष्पाजलि पूजा की प्राचीन परम्परा से सम्बद्ध स्वामीगण कभी 'एत्तारा योगम (ETTARA YOGAM)' (एक ऐसी समिति जो सैकडो वर्प पूर्व मन्दिर की शासन निकाय थी, लेकिन आज जिसके अधिकार उत्सवादि करने ओर सलाह देने तक ही सीमित होकर रह गए है) में महत्वपूर्ण स्थिति में हुआ करते थे। तुलु ब्राह्मण मन्दिर को आज भी दिवाकर मुनि द्वारा निर्मित मानते है, किन्तु मुझे यह बताया गया कि मन्दिर का शासन निकाय सभालने वाली 'एतारा योगम' में कभी भी इस जाति के ब्राह्मणो को प्रतिनिधित्व नहीं मिला। 'योग्य' मे प्रतिनिधित्व सॅभालने वाले नम्बूदरी ब्राह्मण सदैव प्रतिष्ठित पूर्व स्थिति मे रहे ओर वे ही मन्दिर के शास्त्रोक्त उत्सव सम्पन्न करते रहे और मन्दिर का प्रधान पुजारी भी सदैव इसी जाति से चुना जाता रहा। यह भी लोकोपकथन और लोकमत है कि मन्दिर के निकट ही श्रीकृष्ण का छोटा-सा मन्दिर विल्यमगलाथु स्वामीयार की समाधि के ऊपर बना हुआ है।

कुछ इतिहासकारो और शोधार्थियों के अनुसार पार्थसारथी रूप मे प्रसिद्ध श्रीकृष्ण का तिरुवम्बादि मन्दिर, जो पद्‌मनाथ मन्दिर के परिसर मे ही अवस्थित हे, इस पद्‌मनाभ मन्दिर से अधिक पुराना है। यह आश्चर्य की ही बात है कि इस मन्दिर का उल्लेख 'अनतशयन महात्म्य' मे कही नही हुआ। लोकमतानुसार मन्दिर के परिसर मे प्रतिष्ठित नरसिंह और सास्था का मन्दिर अलग-अलग समयो मे पद्‌मनाभ मन्दिर के निर्माण के पश्चात् बनवाए गए थे। भागवत पुराण मे (10 79) में कहा गया है कि बलराम (Bala Ram) अपनी धार्मिक यात्रा के दौरान 'स्यानान्दूरपुरम' गए थे और 'अतन्तशयनम' मन्दिर से अभिप्राय "तिरु+अनन्त+पुरम" अर्थात् भगवान+अनन्त+क्षेत्र...वह क्षेत्र जहॉ विष्णु अनंतशयन कर रहे है—अर्थात तिरुअनतपुरम (त्रिवेनद्रम)। ब्रमाण्ड पुराण में भी 'स्यानान्दूरपुर' का सन्दर्भ आता है। उपरोक्त बातो से यह तो प्रमाणित होता ही है कि यह मन्दिर अति प्राचीन हे और सैकडों वर्षो से महाविष्णु महात्म्य से जुडा हुआ है।

महान वैष्णव सन्त और 'नम्माल्वर' के रचयिता ने इस मन्दिर को पाचवीं शताब्दी में कभी निर्मित बताया है। ताड पत्रों के उल्लेख यह बताते है कि भलीभाँति इस मन्दिर का निर्माण संत और शासक चेरामन पेरुमल ने करवाया था। उन्होने मन्दिर की पूजा, अर्चना, प्रशासन आदि के लिए अनेक सदस्यो को नियुक्त किया था, जो भलीभाँति अपने कार्यो को देखते थे। वहुत वर्षो पश्चात् 1050 ईसवी के आसपास इस मन्दिर का पुर्ननिर्माण किया गया और प्रबन्ध समिति तथा 'एत्तार योगम' की स्थापना की गई, जिसमें समय-समय पर परिवर्तन किए जाते रहे।

एक अन्य प्राप्त साक्ष्य के अनुसार इस मन्दिर का इतिहास तत्कालीन त्रावनकोर के शासक वीर मार्तण्ड वर्मा (1335 ईसवी से 1384 ईसवी) से जुडता है। उसने मन्दिर के प्रवन्धन और प्रशासन में अपना पूर्ण अधिकार जमा लिया था। एक लिखित प्रमाण के आधार पर ऐसा कहा जाता है कि मन्दिर मे 1375 ईसवी मे 'अल्पासी उत्सव' (वर्ष में दो बार 10 दिन तक मनाया जाने वाला उत्सव, जो आज भी होता है) मनाया गया था। वीर मार्तण्य वर्मा की मृत्यु के पश्चात् मन्दिर से समबद्ध कुछ महत्वपूर्ण घटनाओ के प्रमाण मिलते है।

ऐसा उल्लेख मिलता है कि लगभग डेढ वर्ष के लिए (1459-1460) श्री पद्मनाभ की मूर्ति को 'वलालम' मे स्थानातरित किया गया था, जिससे गर्भ-गृह का पुर्ननिर्माण कार्य किया जा सके। 1441 के मध्य मे मूर्ति को पुन. पूर्व स्थान पर स्थापित किया गया था। 1566 मे पूर्वी प्रवेश द्वार पर गोपुरम (पगोड़ा) की आधारशिला रखी गयी थी। कहा जाता है कि 1686 में मन्दिर मे भयकर आग लगी थी और सब कुछ नष्ट हो गया था। मन्दिर का पुनर्निर्माण कार्य 1724 मे ही प्रारम्भ हो सका था। 1728 मे 1686 की भयंकर अग्नि को ध्यान में रखते हुए शान्तिकारी उत्सव मनाया गया था।

मन्दिर के अन्दर ओर-छोर घूमकर दीवारो-स्तम्भो में उत्खनित मूर्तियो के शिल्प को मस्तिष्क मे सजोये मै जब बाहर निकलने लगा, तो बाहर पूजा सामग्री लेकर बैठे लोगों को दूसरे दर्शनार्थियो से चीख-चीख कर सामग्री खरीद लेने का आग्रह करते देखा। जब हम मन्दिर के अन्दर घूम रहे थे, एक पुजारी से मैने मार्ग पूछ लिया कि किधर से जाना है। वह मार्ग बताने के बजाय साथ चलने लगा। चलते हुए अर्ध-मलयालम मिश्रित हिन्दी मे मूर्तियो के विषय मे वताने लगा। मेरा उद्देश्य उसे साथ ले चलने का न था। कुछ दूर चलने के पश्चात् मैने उसे धन्यवाद दिया और कहा "अब आप अपना काम देखे, मैं चला जाऊँ।", वह कडक गया। चला तो गया, लेकिन मलयालम मे क्या कहता गया, मैं समझ नही सका। यही मैंने पहली बार स्थानीय लोगो को विशेष ढग से दोनो कानों को

पकड देवी-देवताओ के समक्ष झुकते और पूजा करते देखा। पूजा की वही मुद्रा मुझे आगे सर्वत्र देखने को मिली।

हमें निर्धारित समय पर मन्दिर घूमकर लौटना था। पत्नी-बेटी बाहर अपनी बारी की प्रतीक्षा मे थी। कपडे बदल मैं आया और उन्हे मन्दिर देखने भेज दिया। सरदार और उसकी पत्नी अपने बच्चे को सँभाल रहे थे। उसने शायद पेशाब कर दिया था। सरदार ने बच्चे को पकड रखा था और पत्नी उसकी निकर बदल रही थी। पत्नी 'पप्पू आण्टी' (उस व्यक्ति की पत्नी जो बेटे को ट्रेन मे पप्पू कहता रहा था) से बाते कर रही थी। पत्नी के जाने के बाद मैने उस महिला से पूछा, "आप देख आई मन्दिर?"

"नही। सामान ताककर बैठी हूँ।"

मेरी मध्यवर्गीय मानसिकता यह जानने के लिए उत्सुक थी कि वे लोग ठहरे कहाँ हैं, कन्याकुमारी कब जाएँगे और किस टूरिस्ट बस से घूमने निकले हे। मै पूछता इससे पहले ही उसने पूछ लिया कि मैं किस बस से घूम रहा हूँ। बातो का सिलसिला चल निकला तो पता चला कि वे स्टेशन के पास एक लॉज मे ठहरे है और लॉज वाले ने उन्हे मेटाडोर तय करवा दी थी, जो मंहगी पडी। उस महिला के स्वर मे अफसोस स्पष्ट था। मुझे लगा अधिक पूछना उचित नही है। मैं मन्दिर की ओर देखने लगा जिसकी कलात्मकता मुझे आकर्षित कर रही थी। मैं उसके विषय में ही सोचने लगा।

1729 में महान मार्तण्ड वर्मा त्रावनकोर का शासक बना। उसने उसी वर्ष मन्दिर का पुनर्निर्माण कार्य प्रारम्भ करवा दिया। मार्तण्ड वर्मा स्वयं कार्य का निरीक्षण करता था।

1930 मे श्रीपद्मनाभ की मूर्ति को पुनः वहाँ से हटाकर 'बलालम' ले जाया गया था जिससे गर्भ गृह को नया रूप दिया जा सके। अगले वर्ष के अन्त तक यह कार्य सम्पन्न हुआ। श्रीपद्मनाभ की पुरानी काष्ठ मूर्ति (जिसकी कहानी दिवाकर मुनि से जुड़ी मानी जाती है) के स्थान पर नई मूर्ति स्थापित की गई, जो बारह हजार शालिग्रामों द्वारा विशेष रूप से निर्मित की गई थी। यह वही अन्तनशायी मूर्ति है, जिसकी आज पूजा की जाती है। मूर्ति के सामने ढाई फीट मोटे और बीस वर्ग फीट के आकार के एक ही ग्रेनाइट पत्थर से 'उत्तकल मण्डपम' का निर्माण किया गया। आज प्रयोग मे आने वाला 'मण्डपम' और मन्दिर की दीवारे महान मार्तण्ड वर्मा द्वारा निर्मित हैं। कहते हैं कि 'श्रीवलिपुर' के निर्माण में चार हजार शिल्पकार छः हजार मजदूर और सौ हाथी लगातार सात महीने तक लगे रहे थ जिस गोपुरम का शिलान्यास 1566 म किया गया था इसी शासक

के काल में उसका निर्माण पॉचवी मजिल तक किया गया। इसी साल मे 'फ्लैग स्टॉफ' बनवाया गया। इसके लिए तीस मील दूर जगल से अच्छे किस्म के टीक लकडी के लट्ठों को मजदूर और हाथियों की सहायता से इस प्रकार शास्त्रोक्त विधि अनुकूल ढोकर लाया गया कि वे जमीन का स्पर्श न करने पाएँ। उन्हे सोने के पत्तरो से ढककर स्थापित किया किया। मन्दिर के तालाब.. 'पद्मतीर्थम' को नवीन रूप से बनवाया गया और सीढ़ियों मे नए पत्थर लगवाए गए।

मै यह सोचकर विभोर हो रहा था कि मन्दिर को हम जिस रूप मे देख रहे थे उसका निर्माण महान मार्तण्ड बर्मा ने करवाया था। मै कब वर्तमान से खिसककर इतिहास में जा बैठा था, पता ही न चला था।

1737 के प्रारम्भ में मन्दिर के दक्षिण द्वार मे 'मद्रदीयपुर' और 'दीप यज्ञ मण्डपम' का निर्माण कार्य पूरा हुआ था। राजा मार्तण्ड वर्मा उन दिनो अपने ही कुछ सामन्तो के विरुद्ध और राज्य के एकीकरण के लिए युद्धरत था। 1739 तक राजा अपने अधिकाश विरोधियो को उखाड फेकने मे सफल रहा था। उसने उन सभी की सम्पति राज्य मे शामिल करने के आदेश दिए थे। उसने यह भी आदेश दिया था कि उस जब्त सम्पत्ति से प्राप्त वार्षिक आय 'श्री पद्मनाभ मन्दिर' की प्रात-कालीन 'पल्पयासम' पूजा के निमित्त खर्च की जाएगी।

1750 और 1753 मे उसने मद्रदीप मण्डपम में अनेक वलियॉ दीं और 'तुल पुरुष धनम' और 'हिरण्यगर्भम' जैसे राजकीय उत्सव मनाए। यह भी कहा जाता हे कि 1753 में पेरिन्थीरामृत (perinthiramrilu) पूजा वडे धूमधाम से मनाई गई थी। यह पूजा 1587 मे भी सम्पन्न हुई थी, लेकिन इतनी भव्यता के साथ नही। 1574 में श्रीबलीपुर के चारों कोनों में 'अन्जलि मण्डपम' का निर्माण करवाया गया। यह उन अभ्यागतो और भक्तों के ठहरने के लिए बनवाया गया था जो 'उत्सावा श्रीबलीपूजा' और उत्सव के जुलूस में भाग लेने के लिए वहॉ आते थे।

इस मदिर से जुड़ी जो महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है वह यह कि 1750 मे राजा मार्तण्ड वर्मा ने राज्य के समस्त अधिकार श्री पद्मनाभ की मूर्ति को समर्पित कर दिया था। इस विशिष्ट दिन प्रातः समय राजा मार्तण्ड वर्मा अपने परिवार के सदस्यो, मुख्य मत्री, 'दलबा रामायण', मंत्रिपरिषद के अन्य सदस्यो और दरबारियों के साथ मन्दिर में आया और 'पुष्पाजलि स्वामियो (पुष्पाजलि पुजारियो), 'एत्तारा योगम' के सदस्यों, अन्य ब्राह्मणो और अब्राह्मण भक्तो के समक्ष उसने मन्दिर के समस्त अधिकार गर्भगृह मे श्रीपद्नाभम को समर्पित कर दिए। समर्पण की इस ऐतिहासिक प्रक्रिया में उसने अपनी तलवार भी मूर्ति के चरणो में रख दी थी बाद म उसे लेकर वह राजमहल लौट गया उसके पश्चात् उसने

'पद्नाभम दास' के रूप मे राज्य मे शासन किया। उसने यह भी निर्दिष्ट किया कि उसके पश्चात् के सभी शासक अपने समस्त राज्याधिकार और सीमाएँ आदि को श्रीपद्नाभ को उसी-की भॉति समर्पित करके शासन करेंगे। और मार्तण्ड वर्मा के इस निर्देश को उसके उत्तराधिकारियो ने सहर्ष पालन किया था। यही कारण है कि 1947 मे आजादी प्राप्त होने के पश्चात् मन्दिर के प्रशासन औग प्रबन्धन मे कोई परिवर्तन नही किया गया।

1744 मे मद्रदीपम में पवित्रीकरण सस्कार सम्पन्न किया गया और तव से प्रत्येक छठवे वर्ष 'मूर जापम' उत्सव मनाया जाता है अर्थात् 'लक्ष दीपों का उत्सव।' यह उत्सव अभी तक प्रचलित है। पिछला उत्सव 1971-72 मे सम्पन्न हुआ था।

मार्तण्ड वर्मा के पश्चात् 'कार्तिक तिरुनाल राम वर्मा' ने 1758 मे 1798 तक त्रावणकोर मे शासन किया। इसके समय पूर्वी द्वार मे गोपुरम का निर्माण कार्य पूरा हुआ और गोपुर की जिस भव्यता और ऊॅचाई को मै निहार रहा था वह उसी के शासनकाल की देन थी। 1763 मे चॉदी की पताका (Silver flg-staff), जो आज तिरुवम्बादी मन्दिर के समक्ष स्थापित है, बनवाई गई। 1739 मे निर्मित स्वर्ण पताका काफी खराब स्थिति में थी और 1786 के समुद्री तूफान मे पर्याप्त क्षतिग्रस्त हो गई थी। उसे उखाड़कर उसके स्थान पर 1787 में आज दिखने वाली पताका लगाई गई थी।

राज्य मे मुख्य उत्सव 'उत्सवम' प्रत्येक छः माह के अन्तराल मे मनाया जाता था, जो दस दिन चलता था, लेकिन 'तिरुवम्बादी' मन्दिर में यह उत्सव केवल पॉच दिन ही मनाया जाता था। 1821 ईसवीं तक उत्सवों की यह परम्परा अबाध चलती रही थी। लेकिन इस वर्ष तत्कालीन राजा के आदेश पर 'तिरुवम्बादी उत्सवम' नाम से उत्सव मनाया गया, जो दस दिन तक चला और यह परम्परा आज भी बनी हुई है। हाल के कुछ वर्षो तक मन्दिर के उत्सव, पूजा सस्कार आदि परम्परानुसार ही सम्पन्न होते रहे। लेकिन आर्थिक और सवैधानिक कारणो से परम्परागत उत्सवो मे किञ्चित् परिवर्तन किया गया। हमे बताया गया कि इन परिवर्तनो के समय यह ध्यान रखा गया कि पूजा और उत्सवादि मे प्राचीन-अगम-शास्त्रोक्त विधानो का उल्लघन न हो।

प्रत्येक वर्ष मलायालम कलेण्डर के 'थुलम माह 'सितम्बर-अक्टूबर' में श्रावण अष्टमी के दिन पताका फहराकर 'उत्सवम'—उत्सव का प्रारम्भ किया जाता हे, जो दस दिन तक चलता है। प्रत्येक दिन व्यापक पूजोत्सव होता है और नवे दिन साय मन्दिर के बाहरी प्रागण म धामिक यात्रा निकाली जाती है

दसवें दिन अपराह्न का दृश्य दर्शनीय होता है। उस दिन अपराह्न 'अराट' (Arat) यात्रा निकाली जाती है। इसमें श्री पद्मनाभ, श्री नृसिंह और श्री श्रीकृष्ण की मूर्तियाँ समस्त आभूषणों से सज्जित तथा सजे-धजे गरुड वाहन मे मन्दिरों के शान्तिकारों द्वारा 'सनमुघम समुद्र तट' तक ले जाई जाती हैं। सैकड़ो वर्षो से चली आ रही परम्परानुसार सूर्यास्त के बाद उन मूर्तियों को समुद्र मे स्नान करवाया जाता है तथा पूजा की जाती है। उसके पश्चात् उन्हे मन्दिर वापस लाया जाता है। तत्पश्चात् दस दिन तक फहराने वाले ध्वज को उतार दिया जाता है। यह उत्सव के समापन का सकेत होता है। इसी प्रकार 10 दिन का उत्सव 'पगुनी माह (मार्च/अप्रैल) मे सम्पन्न होता है। लेकिन इसमे पताका रोहिणी की अष्टमी के दिन फहरायी जाती है।

उपरोक्त-उत्सव के अतिरिक्त प्रत्येक दो वर्ष मे धनु के अन्त अर्थात दिसम्बर-जनवरी और मिथुन के अन्त अर्थात जून-जुलाई मे सात दिन का 'कलम्भम' उत्सव मनाया जाता है। इसमें चंदन से अभिषेक किया जाता है। इसके अन्त मे रात में 'सीवोली' उत्सव मनाया जाता है। इसमे आखिरी रात 'उत्सवम' की भाँति मन्दिर की दीवारों, स्तम्भो और बाहरी सहन मे दीप प्रज्ज्वलित किए जाते है। बताते हैं कि यह दृश्य दर्शनीय होता है। सीवोली के इस उत्सव के अतिरिक्त प्रत्येक माह तीन दिन विशेष 'पोताम सीवोली' मनाया जाता है। इस अवसर पर भी मन्दिर के दीप जलाए जाते है, वाहनो का जुलूस श्रीबलीपुर से होकर मन्दिर के चारो ओर निकाला जाता है। 'थिरु ओणम' के दिन अनेक सगीतकारो द्वारा मगल वाद्य बजाए जाते है, जबकि सामान्य दिनो में केवल नाद स्वर वादन ही होता है।

मन्दिर से निकलते हमें दस बज गए। धूप तीखी हो गई और उमस बढ गई थी। रह-रहकर प्यास लग रही थी। बस मे पहुँचे तो पता चला कुछ लोग अभी भी आने शेष है। ड्राईवर गायब है और गाइड बार-बार चारों ओर नजरे दोडा रहा है। स्पष्ट था कि उसे यात्रियो की चिन्ता थी, क्योंकि अगले पडाव पर भी निकलना था। हमारा अगला पडाव था 'नायर डैम'।

नायर डैम शहर से लगभग 40 किलोमीटर दूर था। रास्ता बस्तियो के मध्य मे गुजरता था। बस्तियाँ भी ऐसी कि उनका कभी न खत्म होने वाला सिलसिला मुझे परेशान कर रहा था। अधिकांश मकान मुख्य मार्ग के साथ बने थे। और ऐसा लग रहा था कि किसी लम्बी माला मे पिरोये वे फूल हों। सडक के दोनो ओर नारियल के बाग फूलो के बोझ से झुके कटहल और आम बागों की सघनता इतना कि खो जाने का भय लकिन बीच-बीच में झाँकते मकानो से वहीं ठहर

जाने की आकाक्षा. . अद्भुत था वह क्षण। गाइड के पास माइक नही था। माइक खराव होने की सूचना वह पहले ही दे चुका था। गाइड खड़ा हुआ और सहज अंग्रेजी में बोला, "अभी आपके दाएँ हाथ रबड़ के वृक्ष दिखेगे।"

काफी देर हो गई। रबड़ के पेड़ नहीं प्रकटे तो मैंने उत्सुकता जाहिर की। उसने कहा, "अभी दिख जाएँगे" और वास्तव में ऊँचाई पर खडे रबड़ के पेड हमारा अभिनन्दन कर रहे थे। और हम गदगद थे उस प्रदेश की धरती की हरीतिमा देख, जिसने बहुमुखी विकास कर दूसरे राज्यों के लिए प्रेरणास्पद कार्य किया हे।

समुद्र ने छोड़ी धरती

केरल के विषय में एक आकर्षक कथा प्रचलित है। यह पौराणिक कथा सर्वविदित है कि परशुराम ने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया था। धरती से क्षत्रियो का उच्छेद कर परशुराम हिमालय के उत्तग शिखर पर तपस्या करने चले गए थे। तपस्या करते हुए उन्हे अपने किए का घोर पश्चाताप हुआ। पश्चाताप के दौरान परशुराम ने अपना परशु पूरी ताकत से उठाकर फेंक दिया, जो धुर दक्षिण मे समुद्र मे जा गिरा। समुद्र मे तीव्र हिलोर हुआ। लहरे आसमान छूने लगी। उठती लहरे समुद्र के क्रोध को व्यक्त कर रही थी, किन्तु कुछ ही अन्तराल मे समुद्र ने अपनी लहरो को समेटा और दूर तक खिसकता चला गया...मीलो धरती छोडता। अर्द्ध-चन्द्राकार समुद्र द्वारा छोडी हुई यह धरती गोकर्ण से कन्याकुमारी तक विस्तृत थी। कालान्तर मे इस धरती पर केरल का जन्म हुआ। इस पौराणिक कथा के आधार पर केरल के जन्म की प्रमाणिकता का कोई आधार न होते हुए भी इस बात से अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि समुद्र के मुँह पर अवस्थित राज्य की धरती को समुद्र का वरदान ही कहा जाएगा। सम्पूर्ण केरल अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है और कल तक जम्मू-कश्मीर को भारत का स्वर्ग मानने वाले सैलानी वहाँ की आतंकवादी गतिविधियों के कारण दक्षिण भारत के इस प्रकृति की अनुपम भेंट की ओर आकर्षित हो आने लगे है।

शत-प्रतिशत साक्षर इस प्रदेश का क्षेत्रफल 38863 वर्ग किलोमीटर है ओर 1991 के जनगणना के अनुसार यहाँ की जनसंख्या 29098518 थी। निश्चित ही इसमें इतने दिनो में कुछ अभिवृद्धि हुई होगी। यहाँ आज भी महिलाओ की सख्या पुरुषो से अधिक है और इसका कारण प्राकृतिक हो सकता है। बावजूद इसके कि बडी मात्रा में यहाँ के उच्चशिक्षा प्राप्त लोग विदेशों मे चले गए है

ओर अनेक क्षेत्रों में विशेषज्ञता प्राप्त शिक्षित-अर्द्धशिक्षित खाडी देशो मे धनार्जन कर रहे है। लेकिन गरीबी अभी भी यहाँ अपने पैर जमाए हुए है। नायर डेम जाते हुए मार्ग मे पडने वाली दुकानो मे खडे झुड-के-झुड पुरुषो की सख्या इसे सिद्ध कर रही थी। लड़कियाँ यहाँ अधिक सक्रिय दिखाई दे रही थी। बसो और मोपेड में वे हमें सर्वत्र दिख रही थीं। और उनमे से अधिकांश अपने व्यवसायिक सस्थानों के लिए ही जा रही थी।

लगभग 20 किलोमीटर का रास्ता हमने नायर डैम की ओर तय किया था कि हमे एक स्थान पर हाट लगी दिखी। यह हाट उत्तर भारत के कस्बों की हाटो स भिन्न न थी। तरबूजों के ढेर-के-ढेर दिखाई दे रहे थे और हाट में जो विशेष बात दिख रही थी वह थी महिला खरीददारो की सख्या। लगभग पच्चहतर प्रतिशत महिलाएँ खरीददारी कर रही थी। कन्धों पर झोला लटकाए, हाथो में थैला पकडे पसीने से तर-बतर सामान के बोझ से श्रमित अपने घरो की ओर जा रही थी।

केरल कृषि प्रधान राज्य है। यहाँ की जनसख्या का पचास प्रतिशत कृषि पर निर्भर है। नारियल, रवड, पेपर, इलायची, अदरक (सौठ), सुपारी, कॉफी ओर चाय आदि। फलों मे नारियल, आम, कटहल, केला और अनानास मुख्य है। इनमे से अधिकांश फलों के पेड हमे मार्ग में दिखाई दे रहे थे। ऊँचाईयो पर खडे नारियल के पेडो के नीचे से गुजरती टूरिस्ट बस से मुझे दृश्य किसी पहाडी क्षेत्र की भॉति आकर्षक लग रहे थे। कई वार लगता हम नीलगिरि के जगल से होकर गुजर रहे है। प्रकृति ने चप्पे-चप्पे पर अपने पैर जमा रखे थे। हरीतिमा सर्वत्र धरती का आलिंगन कर रही थी। पेड़ों पर नारियल किसी युवती के पयोधरो की भॉति लटकते दिखते तो कभी लगता केरल की किसी परम सुन्दरी ने गले में सुन्दर हार पहन रखा है और उसकी सुरक्षा के लिए उसके सिर पर हरी छतरी तनी हुई है।

मेलों-त्यौहारों का राज्य

केरल मछली उत्पादन व्यवसाय में बडी भागेदारी निभाता है। यह अनेक त्यौहारो का राज्य है। प्रमुख है ओणम, जिसका सम्बन्ध नई फसल से है। यह महाबली के घर वापसी के लिए मनाया जाता है। नववर्ष के रूप में महा-विसु मनाया जाता है। 'नवरात्रि' को सरस्वती पूजा के रूप मे मनाया जाता है और पेरियार नदी के तट पर प्रयाग के कुम्भ मेला की भाँति महाशिवरात्रि में मेला लगता है ओर श्रद्धालु पेरियार नदी मे स्नान करते हैं। मुझे बताया गया कि केरल के अधिकाश गॉवो मे मेला लगते हैं और गॉवों के कुछ अपने निजी त्यौहार भी होते हैं। अगर केरल को त्यौहारो और मेलो का राज्य कहा जाए तो आत्युक्ति न होगी। 'सबरीमाला अय्यपन मन्दिर' में मकराविलाकू की भॉति इकतालीस दिन का उत्सव मनाया जाता है जिसमें देश-विदेश से लाखों लोग सम्मिलित होते हैं। वल्लममली अर्थात् नौकादौड केरल का एक ऐसा महत्वपूर्ण उत्सव है जो किसी-न-किसी धार्मिक बात से सम्बद्ध है। त्रिचूर के 'बडाकुनाथ मन्दिर' में 'पूरम' उत्सव प्रत्येक वर्ष अप्रैल मे धूम-धाम से मनाया जाता है जिसमें सुसज्जित हाथियों की यात्रा निकाली जाती है। अपनी प्राचीन सास्कृतिक विशेषताओं को आज भी सुरक्षित रखने वाला प्रदेश अनेकात्मकता मे भी एकात्मकता का अनुपम उदाहरण है। यहाँ भिन्न जातियो के लोग साम्प्रदायिक सौहार्द का जो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं उससे उत्तर भारत, विशेषकर उत्तर प्रदेश और बिहार को सबक लेना चाहिए, जहॉ आए दिन साम्प्रदायिक उन्माद राजनैतिक प्रश्रय पा धार्मिकोत्सवों को रक्त रंजित करते रहते है। ऐसा नहीं है कि केरल के लोगों मे आपसी मतभेद या रागद्वेष नही होंगे, लेकिन यहॉ का समझदार नागरिक शायद राजनीतिज्ञों के बहकावे का उतना शिकार नही होता होगा या उनके पास ऐसा काले अध्याय लिखने का समय नहीं होगा

मुझे बताया गया कि यहाँ के इसाई प्रतिवर्ष पम्बा नदी तट पर 'मैरामां (Maramon) सभा' करते है, जिसमे विश्व के अनेक देशो के इसाई एकत्र होते है। मुसलमानो की सख्या भी कम नहीं है और वे अपने सभी पारम्परिक त्यौहारो के साथ 'जर्रम' तथा 'नेर्मा' त्यौहार मनाते है। त्रिवेन्द्रम यात्रा मे जाने से पूर्व समाचार पत्रों और दूरदर्शन से जानकारी प्राप्त हुई थी कि त्रिवेन्द्रम की एक मुसलिम बालिका मस्जिद में नमाज पढवाने का कार्य कर रही है। इसका विरोध होना ही था। उत्तर भारत के असहिष्णु मुल्लाओं ने इसे घोर अनैतिक करार दिया, किन्तु त्रिवेन्द्रम के मुख्य मस्जिद के मुख्य इमाम ने इसे धर्म के अनुकूल बताया। आश्चर्यजनक रूप से उस लडकी के इस कार्य का जितना केरल के बाहर विरोध हुआ उतना केरल के इमामो और धार्मिक लोगो द्वारा नही।

यात्रा में निकलने तक मेरे मन में उस लडकी से मिलने की प्रबल इच्छा थी, किन्तु त्रिवेन्द्रम पहुँच कर कार्यक्रम की व्यस्तता ने उस कार्यक्रम को खाते मे से निकाल देने के लिए विवश कर दिया। इसका मुख्य कारण समय का अभाव तो था ही साथ ही इतने कम समय में 2192 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल मे फैल और लगभग 32 लाख आबादी वाले (1991 जनगणना के अनुसार 29 46 650) तिरुअनतपुरम् मे उस लडकी को ढूँढ़ना आसान न था। तिरुअनंतपुरम की इस आबादी को पानी सप्लाई करने का स्रोत है 'नायर डैम।'

"हैलो.. मै गाईड बोल रहा हूँ...आप कुछ देर बाद नायर डैम पहुँचने वाले है। वहाँ बोटिग की व्यवस्था है। बोट्स दो प्रकार की हैं, एक में चार व्यक्ति जा सकते है और दूसरी मे पन्द्रह। आप में से जो भी जलावतरण करना चाहे वहाँ कर सकेगा।" गाइड अपनी धीमी आवाज मे बोल रहा था। वह सावले रग का शर्मीला नौजवान था जो बोलता कम था (सक्षिप्त सूचनाएँ ही देता था)। पूछने पर कुछ विस्तार में जाता, किन्तु फिर भी लगता कि वह आधी-अधूरी सूचना ही होती थी।

नायर डैम तक पहुँचने तक बस्ती सिमटनी शुरू हो गई थी, फिर भी बीच-बीच मे एक-आध मकान उभर आते थे। सोचने लगता की कस्बे या शहर से इतनी दूरी एकान्त में बने उन मकानों के लोगों को क्या असुविधा न होती होगी! गृहस्थी के लिए सामान खरीदने से लेकर बच्चो की शिक्षा और व्यवसायिक कार्यो मे जाने के लिए। लेकिन शायद ही होती हो। मन ने कहा, "यहाँ बस सेवा इतनी अच्छी है कि शायद ही कोई असुविधा होती हो।"

बस नायर डैम के पास छायादार स्थान पर रुकी। पेडो का घना झुरमुट था और पास ही एक डाक बंगला किस्म की छोटी-सी बिल्डिंग थी जो बन्द थी

नीचे नल लगा था उससे कुछ दूरी पर चार-पाँच दुकानों का बाजार था और कुछ दूरी तक पेड़ों का जंगल। दुकानों में भीड़ थी - अधिकांश मजदूर किस्म के लोग इडली-वड़ा खा रहे थे या चाय पी रहे थे। दो दुकानों में केलों की घारें लटक रही थीं।

बस से उतरते ही 'नारियल पानी' की आवाज कानों में टकराई।

दो औरतें कच्चे नारियल लिए बैठी थीं। नारियलों की इस धरा पर जब से उतरा था नारियल पानी की ललक मन में थी। लेकिन आश्चर्य कि तिरुअनंतपुरम में कहीं भी उनके दर्शन न हुए थे। जबकि 1993 में जब हम बैंगलोर, मैसूर, ऊटी गए थे. . कदम-कदम पर नारियल की दुकानें सजी हुई थीं। दिल्ली से चलते समय सोचा था कि दिल छककर नारियल पानी पिऊँगा...लेकिन...और अब वे इच्छित फल सामने थे।

"लेते हैं. .।" दोनों बच्चे भी ललचा उठे थे।

"अभी नहीं, डैम देखकर...फिर इत्मीनान से पियेंगे।"

और हम आगे निकल गए यात्रियों के झुण्ड को पकड़ने के लिए बढ़े। तभी स्मरण हुआ कि कन्धे पर लटकती बोतल खाली है। नल तो पीछे छूट गया था। कुणाल को दौड़ाया पानी भरने के लिए। हम एक पेड़ की छाया में इन्तजार करते रहे। वह पानी भर लाया। साथ के यात्री काफी आगे निकल गए थे और गाइड उनका नेतृत्व कर रहा था। लेकिन यह देखकर सन्तोष हुआ कि एक वृद्ध पंजाबी दम्पत्ति हमारे साथ था। वे भी बस में थे। वृद्ध सज्जन पैंसठ के आस-पास, लंबे-स्लिम। उम्र चेहरे पर विद्यमान थी, लेकिन शरीर इतना सुगठित था कि यह अनुमान लगाना कठिन था कि वे कई वर्ष पहले भारतीय खाद्य निगम से अधिकारी के रूप में अवकाश प्राप्त कर चुके थे। वे आर.पी.सूद थे। पत्नी भी स्वस्थ, लेकिन सूद साहब की अपेक्षा वृद्धावस्था के चिह्न उन पर अधिक स्पष्ट थे।

बातों का सिलसिला आरम्भ हो गया। इस यात्रा में मैंने अनुभव किया कि अपने में ही सीमित रहने की अपेक्षा साथ वालों से अवश्य सम्पर्क बनाना चाहिए। यह तब और आवश्यक हो जाता है, जब हमें एकाधिक स्थानों की यात्रा करनी हो। सूद साहब ने बताया कि वे मद्रास, तिरुपति, रामेश्वरम और कन्याकुमारी होकर तिरुअनंतपुरम आए हैं और ऊटी, मैसूर और बंगलौर होकर दिल्ली लौटेंगे। वहाँ से चण्डीगढ़, क्योंकि वे चण्डीगढ़ के रहने वाले हैं। तिरुअनंतपुरम में 'केरल हिन्दी प्रचार सभा' ने मुझे जो सुविधा-साधन मुहैय्या करवाया था, वह आगे तो मिलनी न थी। अस्तु, सूद साहब से जानकारी लेना चाहा कि कन्याकुमारी और रामेश्वरम में ठहरने की क्या व्यवस्था है।

'कन्याकुमारी मे विवेकानन्द आश्रम है, जहॉ हर प्रकार के कमरे उपलब्ध हे। सबसे सस्ता है पन्द्रह रुपए प्रति व्यक्ति वाला कमरा, जिसमे एक कमरे मे तीन बेड होते है। लेकिन उसमें असुविधा है कि बाथरूम आदि सार्वजनिक हे। दूसरा है एक सौ का, डबल बेडरूम, जिसमे बाथरूम अटैच है।''

''रामेश्वरम मे रामेश्वरम मन्दिर के पास है, गुजराती भवन है। वह उपयुक्त ओर सस्ता है।''

जानकारी देने के लिए मैने सूद साहब को धन्यवाद दिया।

हम नायर डैम पहुँच चुके थे। गाइड उस स्थान पर ले गया था, जहॉ से 'बोटिंग' स्थल निकट था, लेकिन आश्चर्य हो रहा था कि वहॉ पानी नाम मात्र को था। लग रहा था वह डैम नही, कोई छोटी नदी है...एक प्रकार से डैम सूखा पडा था..सीमित पानी मे कैसे बोटिग करेगे लोग।

''जिसे भी बोटिग करनी है मेरे साथ आ जाएँ।'' एक ग्रुप को समझाते हुए गाइड ने कहा। ओर मैने देखा कुछ लोग उसके साथ जा रहे थे। हम टूटी सीढियो पर खड़े होकर मैसूर के 'कृष्णराजसागर डैम' के विषय मे चर्चा ओर नायर डैम के साथ उसकी तुलना करने लगे थे। हमारी बातचीत मे सूद साहब की बहू भी शामिल हो गई थी।

सूद दम्पत्ति पोती, जो पॉच-छः वर्ष की थी, को लेकर डैम के पुल पर जा पहुँचे थे। हम भी अपने को रोक न सके। धूप थी, तीक्ष्णता की चिन्ता न कर हम भी पुल के मध्य में जा पहुँचे और नीचे झॉककर तीव्रगति से नीचे गिरते पानी को देखने लगे। अकस्मात नजर पडी नीचे डैम से गिरते पानी का आनन्द लेते कुछ सैलानियो पर। हम भी घूमकर वहाँ जा पहुँचे। हमारे साथ के एक दम्पति अपने बच्चे के साथ वहॉ पहले से ही मौजूद थे।

सीढियों से चक्कर काटते हम नीचे जा पहुँचे। नीचे गिरते तीव्र प्रपात के निकट तक जाने के लिए हम अधीर हो रहे थे। हम प्रतिबन्धित मार्ग से सीधे नीचे उतरे। प्रपात के पास चित्र खीचे। निकट के आम के पेड़ से बच्चों ने दो कच्चे आम तोडे। हम वहॉ के खूबसूरत पार्क मे टहले और आम के एक विशाल पेड की छाया में बैठकर कुछ देर के लिए विश्राम कर बस के पास वापस लौट आए। अब नारियल पानी पीने का अवसर था। चारो ने नारियल पानी पिया। जिससे नारियल खरीदे वह एक युवती थी। सुडौल शरीर, ताम्बाई रग और चेहरे पर स्निग्धता। हिन्दी न जानते हुए भी वह हमारी बात समझ रही थी और उसके बोलने में एक आकर्षण था। उसके निकट ही एक अधेड महिला नारियल बेच रही थी। हमने पहले उसी से पूछा था किन्तु लेने का निर्णय उस युवती से किया

था। लेकिन वह महिला बार-बार दात निकालती अपना नारियल खरीद लेने का आग्रह कर रही थी। मना करने के बावजूद एक नारियल काटने लगी थी। मैने जोर देकर उसे मना किया, लेकिन वह हॅसती, दॉत निकालती अपने कार्य मे निमग्न रही। यहॉ तक कि हमने युवती से नारियल लेकर पीना प्रारम्भ कर दिया था तब भी वह नारियल काटती रही और अन्तत काटकर जब देखा कि हम लोग नही ही खरीदेंगे, उसने निराश होकर उसका पानी स्वय ही पी लिया था। मुझे बाद में दुख हुआ। सोचा, "यदि उसका नारियल भी ले लिया होता तो क्या बिगड जाता। सात रुपए ही तो देने होते...।" स्पष्ट था कि मेरे नारियल न लेने से वह निराश हुई थी और यह निराशा उसकी आर्थिक स्थिति को स्पष्ट कर रही थी।

नारियल गिरी निकलवा कर हम दुकानो की ओर बढे। सवा बारह बज रहे थे, लेकिन चार-पॉच लोगो को छोड एक भी सहयात्री आता नही दिख रहा था। न ही गाइड नजर आ रहा था। हम दुकानों की ओर बढते रहे। केले खरीदना था। खरीदते समय चाय पी रहे एक मजदूर को अपने साथी से कहते सुना "ये लोग 'नार्थ इडियन' है।" हमने 'नार्थ इंडियन' से उनके बातचीत का अन्दाज लगाया था।

हम डाक बगलानुमा बिल्डिग मे आकर बैठ गए और अन्य यात्रियों की प्रतीक्षा करने लगे। सूद दम्पति अपने बेटा-बहू और पोती के साथ वहॉ पहले से ही मौजूद थे।

सूद साहब बहुत जीवन्त व्यक्ति थे। उस उम्र मे भी वे अपने बेटा-बहू को दक्षिण भारत दिखाने निकले थे। जबकि वे वर्षो पहले बस से पूरी एक टीम के साथ पत्नी सहित लगभग डेढ महीने की लम्बी यात्रा कर चुके थे, जिसमे उन्होने न केवल सम्पूर्ण दक्षिण भारत नापा था, प्रत्युत, मध्य भारत, उत्तर प्रदेश, नेपाल, बिहार आदि तक यात्राऍ की थीं... और वह भी एक साथ। आश्चर्य हुआ था सुनकर। सूद साहब उठे और पोती के साथ दौड़ कर आइसक्रीम खरीद लाए। पत्नी को भी दी। इससे पहले भी मैंने उन्हें पोती के साथ छोटा बनते देखा था। मै उनकी इन खूबियो से प्रभावित था। जो बड़ों के मध्य बडे, और बच्चों मध्य बच्चा बन जाने की थी।

"मै प्रत्येक वर्ष गर्मियों मे शिमला चला जाता हूँ।" सूद साहब बता रहे थे।

"वहाँ आपका अपना घर है?"

"शिमला मे नही, कुछ दूरी पर एक गॉव मे है...लेकिन वह शिमला से

अधिक दूर नहीं है। अवकाश ग्रहण के बाद पाच लाख में खरीदा था. .दो कमरो का छोटा-सा मकान है।''

''लेकिन सुना है, वर्षो पहले हिमाचल सरकार ने वहॉ जमीन-घर खरीदने पर प्रतिबध लगा दिया था।''

''हॉ, ऐसा है ..लेकिन केवल शहरो मे .गॉवो मे नहीं . । यहॉ से लौटते ही मै पत्नी सहित हिमाचल चला जाऊँगा। जून के अन्तिम सप्ताह तक वहॉ रहूँगा।'' कुछ क्षण रुके वे, फिर बोले, ''दरअसल मै जिम्मेदारियों से मुक्त हो चुका हूँ। दो बेटे है. .बडा अच्छे ओहदे पर है और छोटा यह, यह भी व्यवस्थित है। चण्डीगढ मे अपना मकान है। कई हजार रुपए मुझे पेशन मिलती है। किसी से कुछ लेता नही और पेशन का पैसा किसी को देता नही। हम पति-पत्नी के लिए वह पैसा पर्याप्त होता है। साल में एक बार हम चण्डीगढ के बाहर घूमने अवश्य जाते है। दरअसल घूमना मेरी हॉबी है।''

''अच्छा लग रहा है आपसे यह सुनना...मैं स्वयं घुमक्कड़ होना चाहता हूँ लेकिन बच्चो की जिम्मेदारियॉ रोकती है. .फिर भी जब भी अवसर मिलता है भाग लेता हूँ।''

''आप ताज्जुब करेंगे...मैं पाकिस्तान भी गया था...दरअसल हम पाकिस्तान से आए शरणार्थी लोग है। मै उन लोगो को कभी भूल नहीं पाया, जो बचपन मे मेरे साथ खेले थे, घूमे थे, पढे थे। हम गुजरावालां के रहने वाले थे। मेरे परिचित इतने भले थे कि उन्हे भुला पाना कठिन है...धर्म कभी प्रेम में आडे नहीं आता ओर आप तो जानते ही है, 'पार्टीशन' राजनीति की देन थी। आम जनता ने कभी उसे स्वीकार नही किया और कत्लेआम भी राजनीति से प्रेरित उनके गुण्डो के द्वारा प्रारम्भ किया गया था।'' अतीत के कुएँ में उतर चुके थे सूद साहब, ''आप तो दिल्ली के रहने वाले है आपने इंदिरा गॉधी की हत्या के पश्चात् की दिल्ली को तो देखा ही होगा .सिखों के खून से अपनी प्यास शान्त करने के पीछे क्या राजनीतिक कारण नही था?'' वे मेरी ओर देखने लगे थे।

''आप ठीक कह रहे हैं.. राजनीतिक गुण्डो ने ही वह कत्ले आम किया था। मैंने अपनी ऑखों से जलते मकान देखे थे और किसी बात का विरोध करने के कारण मदर डेयरी में ऐसे ही एक गुण्डे का शिकार होते-होते बचा था। उसी क्षण मुझे अन्दाज लगा था कि कितने सुनियोजित ढंग से सिखो के विरुद्ध अभियान चलाया गया था देशव्यापी उस आतकवाद ने देखते-ही-देखते दस हजार से अधिक हमारे सिख भाइयो को छीन लिया था। और हमारे भावी प्रधानमंत्री कह रहे थे, ''जब कोई बडा पेड गिरता है तब धरती हिलती ही है।''

"छोडिए चंदेल साहब उस प्रसग को. .सोचकर बडा कष्ट होता है।" सूट साहब बातचीत में मेरा परिचय जान चुके थे। "उन काले अध्यायों के पन्ने उलटना अब ठीक नहीं ..।" कुछ रुके वे, फिर बोले, "मै पाकिस्तान गया था अपने बचपन के साथियो से मिलने, जिनसे मेरी खतो-किताबत होती रहती है। लेकिन पाकिस्तानी नियमानुसार हमे वहाँ नही जाने दिया गया था।

"अर्थात् आप अपने घर को.. मोहल्ले को नही देख सके।"

"नही। लेकिन अपने मित्र से मिला अवश्य था। मैने विस्तार से अपना कार्यक्रम अपने मित्र को लिख दिया था। जहाँ ठहरना था, वहॉ की सूचना उन्हे दे दी थी। मित्र मुझसे मिलने आ गया था। उससे मिलकर मै घंटो अपने अतीत मे जीता रहा था।"

"चलकर देखें, लोग लौटे या नहीं।" मैंने उन्हें अतीत के गुंजलक से निकालना उचित समझा।

"हॉ...चले।"

बस ओट में खडी थी। वहॉ पहुँचे तो देखा ड्राईवर सीट पर बैठा है ओर गाइड नीचे खडा बचे सैलानियों की प्रतीक्षा कर रहा है। दूर डैम की ढलान पर एक दम्पत्ति अपने बच्चों को दुलारते उतर रहे थे। शेष सारे सैलानी बस मे पसीना बहाते बैठे थे। जब बस चली तो दोहपर के पौने एक बजा था।

"अब हम के.टी.डी.सी. कार्यालय जाएँगे। अर्थात् होटल चैत्रम ..वहॉ से दोपहर के बाद के टूर के लिए प्रतीक्षारत सैलानियो को लेना होगा।" गाइड कह रहा था।

लौटते हुए वही मनोहारी दृश्य थे और पेट में था नारियल का ठण्डा पानी, जिसने बार-बार लगने वाली प्यास को दबा दिया था।

नायर डैम जाते हुए हमें महिलाओं और युवतियो के सजे झुण्ड मिले थे। सभी ने हाथों मे कटोरनुमा बर्तन उठा रखे थे। रग-बिरंगे परिधानो में सजी वे किसी धार्मिक अनुष्ठान के लिए जाती लगीं थी। अब वापस लौटते समय वे अनुष्ठान सम्पन्न कर लौटती मिल रही थी। पहले ही कह चुका हूँ कि केरल उत्सवों, त्यौहारों और मेलो का प्रदेश है। निश्चित ही कोई छोटा त्यौहार रहा होगा उस दिन। वह 31 मार्च का दिन था...उजली चटख धूप सडक पर लेटी हुई थी। यदि हम बस मे न होते तो पसीने से नहाए होते, उन महिलाओं की भॉति।

जब हम होटल चैत्रम पहुँचे दोहपर के ठीक डेढ बजे थे।

वह प्रस्तर मत्य सुन्दरी

लगभग पन्द्रह-सोलह सैलानी बस की प्रतीक्षा में थे। अब सैलानियो की सख्या चालीस के लगभग पहुँच गई थी। गर्मी अधिक थी और बस के अन्दर होने के कारण पसीना कपडे गीले कर रहा था। लेकिन अधिक प्रतीक्षा नही करनी पडी हमे। ठीक दो बजे बस चली। गाइड ने बताया, "अब हम यहाँ से 9 किलोमीटर दूर 'सनमुघम बीच' चल रहे है।" अति प्रसिद्ध समुद्री तट अनेक ऐतिहासिक उत्सवों का गवाह है। आज भी पद्मनाभ मन्दिर में सम्पन्न होने वाले उत्सवो की अन्तिम परिणति इसी तट पर होती है। यह अति प्राचीन ऐतिहासिक महत्व का समुद्र तट है।

'सनमुघम समुद्र तट' से कुछ दूर पहले ड्राईवर ने बस रोकी। लगा नगी धूप में वह हमे वही से तट तक जाने का निर्देश देगा। उस दिन आसमान साफ था। दूर समुद्र के ऊपर एक-दो सफेद बादलो के टुकडे तैरते दिख रहे थे, जबकि एक दिन पहले, तिरुअनंतपुरम पहुँचने से पहले ही घटाएँ उमडती दिखीं थी और सोचना पडा था कि यदि वर्षा हुई तो घूमना कठिन होगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। अगले दिन की सुबह साफ, निर्मल थी। बादलों का कहीं नामों-निशान न था और यह जहाँ मन हो घूम पाने की आश्वस्ति दे रहा था वहीं दिन की गर्मी का आतंक भी था। गेस्ट-हाउस से निकलते समय साथ लाया एकमात्र छाता बैग में डाल दिया था।

"यह एक ही पत्थर मे उकेरी मत्स्य सुन्दरी है।" गाइड खड़ा होकर बाई ओर सडक से कुछ हटकर बनी मूर्ति की ओर सकेत कर बता रहा था। हमारी नजरे उस पर टिक गई। एक दो सैलानियो ने चित्र लेने की अनुमति चाही जो गाइड ने दे दी। अवसर देखकर मैं भी कैमरा सँभाल बस से नीचे उतरा।

माशा को भी उतारा और उसे मूर्ति के निकट खडे होने के लिए कहा। लकिन, सकोची मेरी बेटी उसके पास नही फटकी। मुझे अकेले ही मत्स्य सुन्दरी का चित्र कैमरे के कैद करना पडा। कैमरा सँभाले कई लोग नीचे आ गए थे। गाइड को लगा कि यदि उसने ढील दी तो अधिकाश वहाँ उतर पडेगे। उसे समय का भी ख्याल रखना था। उसने सभी को बुलाना शुरू कर दिया, "क्वीक.. समय कम है.. अभी बहुत देखना है...क्विक. ।"

और हडवड़ाहट, सभी भाग लिए।

ड्राईवर ने बीच के निकट बस रोकी। हमें पन्द्रह मिनट का समय दिया गया यह कहते हुए कि यहाँ 'बीच' उतना सुन्दर नही है .अधिक समय 'वेली लेगून' में देना उचित होगा।"

रेतीली धरती लाघते...हम तट पर पहुँचे। लहरे हमे छूने के लिए. शायद हमारे स्वागत के लिए आगे बढी, लेकिन हम ही भयवश पीछे रहे। मै ऊँचाई पर खडे हो दूर क्षितिज को छूते सागर को देख रहा था मुग्धभाव से और सोच रहा था कि मार्तण्ड वर्मा कभी भक्तिभाव से ओत-प्रोत यहाँ आता रहा होगा। जिस रेत से होकर मैं तट पर पहुँचा था, पीली रेत. .मार्तण्ड वर्मा भी उसे मझाकर तट तक जाता रहा होगा, लेकिन वह तो राजा था। सम्भव है उसके लिए उसके रास्ते मे कीमती कालीने विछाई जाती रही हो और सागर इसी भाँति गर्जन-तर्जन करता उसका स्वागत करता रहा होगा।

मुझे मलयाली कवियित्री सुगतकुमारी की 'सागर' पर लिखी कविता याद हो आई।

"कान लगाने पर/सुनाई पड़ता है/आते लहरों का/तहस-नहस होता पतन।
दरअसल तरगे/धरती के ऑसू है/उसकी सिसकी/
युगों से उसकी गूँज, रोज का काम/आकुलता गर्जन/
चट्टानो पर सिर मार-मारकर लुढकना
गहरी चीख/सब सुनते हैं/उनींदा रहती हूँ मै।"

मेरी ऑखे अव दिवाकर मुनि के चरण-चिह्न खोजने लगी थीं। यहीं कहीं दर्शन किए होगे मुनि ने वालक महाविष्णु के या वृक्ष मे अन्तर्ध्यान होते कही आसपास ही देखा होगा उस बालक को। तट से कुछ दूर, जहाँ अनन्त निद्रा मे सोयी पडी है किसी शिल्पकार के सृजन की साक्षी वह मत्स्य सुदरी, वहाँ कभी घना जगल रहा होगा। जिस रास्ते बस आई थी वह कभी पैदल चलने योग्य भी न रहा होगा जगलो की सघनता के कारण। क्या कभी दिवाकर मुनि ने या मार्तण्ड वर्मा ने यहाँ-वहाँ के अन्य युगपुरुषो ने सोचा होगा कि वे जब नही रहेंगे यहाँ

समुद्र तब भी इसी भॉति तट से टकराता अपने अज्ञात क्रोध को प्रकट करता रहेगा. .युगो तक. .प्रलय के अन्तिम क्षणो तक।

मुझे सुगतकुमारी की उसी कविता की आगे की पंक्तियॉ याद आती है—

“आखिर, जब मेरे प्राण भी,
गहरी नीद मे खो जाते है
तब समझ मे आता है—
सौ साल बाद
जो रात आएगी
तब भी
सागर यों हीं गरजता रहेगा।”

मैं बच्चों के साथ लौट लेता हूँ। पत्नी रेत की गर्मी के कारण पहले ही बस में वापस लौट चुकी थी। दूसरे लोग भी जा चुके थे। मै लपका। तभी दृष्टि पडी . एक परिवार अभी भी मुझसे पीछे था।

“आराम से...जल्दी क्या है...।” मन ने कहा और मैंने गति धीमी कर दी।

‘सनमुघम बीच’ से कुछ देर की यात्रा के बाद ही हम ‘वैली लगून’ पहुॅच गए। बस से ही समुद्र दिखाई देने लगा था। लेकिन यह क्या, ड्राईवर ने गाडी दूसरी दिशा में मोड़ दी और एक ऐसे स्थान मे जा रोका जहॉ पार्क तो थे, लेकिन समुद्र ओझल हो चुका था। वास्तव मे यही था ‘वैली लैगून’ जिसे विशेष रूप से तैयार किया गया है। गाइड हमें ‘रेस्टॉरेण्ट’ के अन्दर ले जाता है। हम सोच नही पाते कि वह हमे वहॉ क्यो ले आया। एक बडा-सा हॉल है, जहॉ व्यवस्थित ढग से मेज-कुर्सियॉ लगी है। महाराष्ट्र से आया परिवार एक मेज के इर्द-गिर्द जम जाता है। पति-पत्नी और दो लड़कियॉ बडी है... स्नातक की छात्राएँ होंगी। मै पीछे मुडकर देखता हूँ, दोपहर बस में चढा युवक सरदार, उसकी पत्नी और बच्ची भी वहीं जमने की कोशिश मे थे। एक परिवार और था, पति-पत्नी और बेटी। शेष सहयात्री कहॉ गए?

“क्या लंच की व्यवस्था पर्यटन विभाग की ओर से है?” मैं साथ चल रहे गाइड से पूछता हूँ।

“नही...ऐसा नहीं है।” वह मुस्कराकर उत्तर देता है।

“कुछ लेना है...कोल्ड ड्रिक .कॉफी?” पत्नी-बच्चों से पूछता हूँ।

“नही...।” एक उदासीन उत्तर है सभी का।

देखता हूँ सामने दरवाजे है, जहॉ से लोग बाहर जा रहे हैं। गाइड भी उसी रास्ते बाहर निकल गया। हम भी उधर बढे। बाहर अच्छा पार्क था और पार्क

से लगी कृत्रिम 'लेक'। समुद्र के पानी को इकट्ठा कर यह लेक बनाई गई थी। गाइड हमें आता देख रुककर पूछता है, "आप लोग लच नहीं करेंगे?"

"नही।"

"बोटिंग करेंगे? उधर व्यवस्था है।" बोटिंग के विषय मे वह बस में ही बता चुका था। लेक के विषय में हम जानते थे।

गाइड की बात का हम कोई उत्तर नहीं देते। वह आगे बढ़ जाता है, दूसरे सैलानियो की ओर। मै देखता हूँ, सूद साहब अपने परिवार के साथ कुछ दूरी पर पत्थर की बनी बैंच पर बैठे थे। लेक के साथ अनेक वैसी ही बैचे थी। मे अलग एक नारियल के पेड़ के नीचे घास पर आसन जमाता हूँ। सामने आम के पेड थे और कुछ दूरी पर दूसरे घने छायादार वृक्ष। बच्चे भला कहाँ शान्त रहते हैं। थैला लेकर वे नमकीन निकाल लेते हैं, खुरमे-मठरी। हम दिल्ली से ले गए थे घर मे बनवाकर।

"मैं आँखें बन्दकर लेट जाता हूँ। कुछ देर बाद ही एक बोट की आवाज सुनाई देती है। कुछ लोगो को लिए बोट को पुल की ओर बढ़ते देखता हूँ। लेक के ऊपर कुछ दूरी पर पुल है, जहाँ से ट्रैफिक आ-जा रहा था। लेक का पानी स्थिर है। बोट गुजरने से किनारे हल्की-सी हिलोर हुई.. फिर शान्त। पानी गन्दा भी है। बेटा कंकड उठाकर लेक में फेंकता है। मै उसे रोकता हूँ। वह शरारत पर उतारू है। ढूँढकर कंकड़ लाता है और उछलकर दूर फेकने का प्रयत्न करता है। मैं डर रहा हूँ कही उछलता वह लेक मे न जा गिरे। पुनः रोकता हूँ। वह मान जाता है और माशा के पास बैठ नमकीन खाने लगता है। मै आँखे बद कर लेता हूँ। यहाँ धूप नही है और हवा मे शीतलता है।

"काँव-काँव...।"

आँखें खुल जाती है। पास ही पाँच-छ· कौए आ जुटे है। दोनो बच्चे उन्हे खुरमे फेक रहे हैं। मैं उठ बैठता हूँ। बच्चो को रोकता हूँ। लेकिन जब तक वे रुकें, कौओं की संख्या दोगुनी हो जाती है। वे पेड़ से उतर कर पैदल चले आ रहे थे तेजी से। वहाँ ठहरना कठिन लगा। पास मे कुछ कंकड थे। उठा लेता हूँ—बैठे-ही-बैठे फेंकता हूँ। वे भागते हैं, लेकिन फिर आ जुटते है लगभग दस मिनट तक संघर्ष चलता है। अंतत वे छिटक जाते है। पत्नी बच्चो के साथ पानी की तलाश मे चली जाती है। मै कुछ दूर पार्को मे टहलते सैलानियो को देखता हूँ। गाइड पर दृष्टि टिक जाती है। वह एक वैच पर बैठा एक गोरे पर्यटक को कुछ समझा रहा था। "शायद वह टूरिस्ट बस सेवा और त्रिवेन्द्रम के आसपास के पर्यटक स्थलों के विषय मे बता रहा होगा।" सोचता हूँ। गाइड उसे ब्रोचर

दिखाने लगा, तो मुझे अपने विचार की पुष्टि होती दिखी।

मै पुन लेट गया। लगभग दस मिनट तक लेटा रहा आँखे बन्द किए। पत्नी वच्चे लौटे नही थे। मै फिर उठ वैठा और ऑखे फैलाकर उन्हे देखने लगा। अचानक दूर दृष्टि गई। तीनो रेस्टॉरेण्ट के दूसरे छोर पर एक पार्क मे वने सीमेण्ट के विशाल हाथी शंखो के पास खडे दिखे। वहॉ सीमेण्ट के दो शख वनाए गए थे। उनमे एक आकार में विशाल हाथी जैसा और दूसरा उसके वच्चे जैसा था।

पत्नी किसी व्यक्ति से बातें कर रही थी। मै तीनो की प्रतीक्षा कर रहा था। तीन वजने वाले थे। अभी हमारे पास चालीस मिनट और थे। मैं उनकी ओर चलने को हुआ कि देखा वे उस व्यक्ति से बातें करते मेरी ओर आ रहे थे।

पत्नी वहुत प्रसन्न दिख रही थी।

"समुद्र पास ही है..समय भी है..देख आते हैं।" पत्नी ने प्रस्ताव किया।

"कहॉ..यह तो लेक है।"

"यह लेक समुद्र से ही निकाली गई है। चौकीदार ने वताया कि यहॉ से पॉच-सात मिनट का रास्ता है...चलो.. ।"

लेक के किनारे फुटपाथ-सा बना था। हम तेज गति से समुद्र तट की ओर बढे। लेक बाई ओर को मुडती थी। दरअसल बाई ओर पतली-सी लेक काफी दूर तक चली गई थी। उसके पार जाने के लिए लकडी का पुल था।

हम उत्साह मे पुल की ओर तेजी से बढ रहे थे कि किसी की आवाज सुनाई दी, "टिकट।"

"टिकट?" मेरे मुँह से अनायास ही निकल गया।

"यस सर।"

ख्याल आया, हम पर्यटन स्थल मे है। कहीं भी कितने की भी टिकट लेनी पड सकती है। "नो क्वेश्चन।"

"चार टिकट।"

"टू रुपीज प्लीज।" गहरे सांवले रंग का लुंगी-कमीज पहने व्यक्ति चार टिकटें फाड़ने लगा। साथ मे उस जैसा ही एक व्यक्ति और था। वह बाते भी करता जा रहा था।

"लकड़ी के हिलते-डुलते पुल से लेक पार कर हम रेतीली जमीन पर आ गई थे। रेत ही रेत। तपती रेत। चलना कठिन था। एक लडका टट्टू पर बेठा था। उसने हॉक दी, इशारा किया, जिसका अर्थ था कि हम चाहे तो टट्टू पर बेठकर रेत पार कर सकते है। मैंने घडी देखी। तीन दस बहुत समय है उसे

इकार किया और आगे बढे। नारियल के दो ढेर...नारियल पानी नारियल पानी.. की आवाज। पास ही छोटी-सी झोपडी और झोपडी के आसपास नारियल के लगभग तीस-चालीस वृक्ष। एक युवक नारियल के ढेर के पास बैठा था ..दो बच्चे उसके निकट खेल रहे थे. .नंग-धड़ंग। झोपड़ी से कुछ हटकर दो चारपाइयो पर तीन लोग बैठे बातों में मशगूल थे। वे ऐसे लग रहे थे जैसे दिल्ली के आस-पास गाँवो के चौधरी हों। कमी हुक्कों की थी।

रेत पार करने के बाद मिट्टी-रेत मिली। यहाँ कुछ ऊँचाई थी। समुद्र अभी तक हमे नहीं दिखा था। कुछ लोग ऊँचाई पर खडे थे। स्पष्ट था कि उससे नीचे ही समुद्र होगा। अभी हमे उनके निकट पहुँचने मे समय था, तभी देखा वे लोग दौडते कुछ पीछे हटे और यह क्या...यह तो समुद्र का पानी था...जो उन लोगों का पीछा करता ऊँचाई तक चढ़ता चला आया था। हम लगभग दौड पडे।

तट बहुत ऊँचा था, जैसे किसी नदी का कछार। नीचे हाहाकार करता समुद्र...लहरे इतनी तेज कि जो भी उसकी चपेट मे आ जाए...वापस लौटना कठिन। दृश्य देख मुग्ध रह गया। गर्जन करती लहरे मचलती हमें छूने के लिए ऊँचाई तक उठ आती। कई बार ऊँचाई पार कर दूसरी ओर भी पानी चला जाता।

समय देख हम लौट पड़े। कुछ देर तक पार्क में विश्राम किया, फिर वापस बस मे। थोडी देर बाद हम 'कोवलम बीच' की ओर जा रहे थे।

विश्व का दूसरा खूबसूरत बीच

किसी सुन्दर घाटी का-सा दृश्य आँखो के समक्ष उभरता दिखाई दे रहा था। सडक पतली हो गई थी और सर्पिणी की भाँति मुड़ रही थी। बस्ती अभी भी हमारा पीछा कर रही थी, जबकि मानसिक तौर पर हम उसे कब का झिटक चुके थे। लेकिन दक्षिण भारत की अपनी विशेषताओं मे एक विशेषता यह भी देखने को मिली, जिसका जिक्र पहले भी कर चुका हूँ कि यहाँ बस्ती कभी खत्म नही होती। सडकों के किनारे या कुछ हटकर इक्का-दुक्का मकान ही सही, दिखाई दे जाते है और दूर-दूर होने पर भी सभी आधुनिक सुविधाओं से युक्त। कुछ मकानो का दूर-दूर होना यों भी समझ में आ रहा था। नारियल आदि के बाग के साथ बागों के स्वामी का निवास अवश्य होगा. मालिक नही तो देखभाल करने वालो के लिए ही सही. और 'वेली लैगून' से निकलने के बाद हमें शहर अपने पूरे वजूद मे मौजूद नजर आ रहा था। मुझे बताया गया था कि 'कोवलम बीच' शहर से बीस किलोमीटर दूर है। 'वेली लैगून' तो शहर के मुहाने पर टिका है, और मे सोच रहा था कि एक दो किलोमीटर के बाद शहर समाप्त हो जाएगा। शहर तो एक प्रकार से समाप्त ही हो गया था, लेकिन उसका प्रभाव 'कोवलम' तक था। कितने ही भव्य भवन हमे मिले और उनमे से कई सैलानियों के लिए बनाए गए 'लॉज' और 'रिसोर्ट' थे। जाते हुए मैं सोच नही पा रहा था कि शहर से इतनी दूर ये रिसोर्ट क्यों है? यह तो 'बीच' में पहुँचकर ही पता चला।

बस थोड़ा मुडी। सामने बड़ा गेट और उस पार खूबसूरत पार्क।

"शायद इस पार्क को पार करके समुद्र तट होगा।" मैं बुदबुदाया।

"अभी पता चल जाएगा।" पत्नी बोली।

अब यह पार्क की ओर मुड़ेगा और सभी को पीछे आने का संकेत करेगा

उतरते हुए मैं सोच रहा था।

सैलानी गाइड के इर्द-गिर्द एकत्रित हो गए।

बस सीधे सडक की ओर बढ गई और चाय की फुटपाथी दुकान के सामने रुक गई।

"सामने पार्क है। आप चाहे तो पार्क मे घूम सकते हैं। नीचे बीच है. यह आम लोगो के लिए है।" गाइड ढलान वाले पतले रास्ते की ओर इशारा करते हुए बता रहा था। ढलान वाले उस रास्ते के बाई ओर कैमरा, घड़ियाँ, सैलानी कपडों ओर वास्तु-शिल्प की वस्तुओं की दुकानें सजी थी। अमूमन वहाँ का दृश्य दिल्ली मे जनपथ मे सजी दुकानों जैसा था। वहाँ भी दिल्ली की ही भाँति विदेशी पर्यटक दिखाई दे रहे थे। एक गोरी युवती अपने पति या प्रेमी के साथ पहली दुकान मे कुछ खरीददारी कर रही थी। दो दुकाने छोड़कर तीन विदेशी पर्यटक घुसे हुए थे जिनमे एक युवक और दो युवतियाँ थे। ढलान वाले रास्ते पर लोग आ जा रहे थे। ढलान काफी थी इसलिए आने वालों को पहाडी चढ़ाई का अनुभव हो रहा था।

"के.टी.डी.सी. का बीच, जिधर बस खडी है उधर कुछ दूरी पर है। उधर ही के टी.डी.सी. कॉम्पलैक्स है।" गाइड समझा रहा था। उसने घडी देखी, "अभी चार बज रहे हैं. . हम ठीक छ· बजे यहाँ से चल देंगे। बस उधर सामने मिलेगी। आप लोग समय का ध्यान अवश्य रखेगे।" गाइड कुछ रुककर बोला, "अगर कोई देर तक रुकना चाहता है तो रुक सकता है। लौटने के लिए यहाँ से बसे भी है और ऑटो भी—लेकर आराम से आ सकते हैं। लेकिन टूरिस्ट बस में जाने के लिए ठीक छ. बजे...धन्यवाद।"

गाइड ढलान पर बनी एक दुकान की ओर मुड़ गया और हम नीचे उतरने लगे। हमारे आगे एक प्रौढ़ अंग्रेज, जिसकी उम्र पचपन के आसपास होगी, एक छोटा-सा सूटकेस थामें चल रहा था। उसके बगल में एक अफ्रीकन युवती चल रही थी जिसने स्कर्ट पहन रखी थी, जिससे उसके भारी नितम्ब पीछे से कुछ अधिक ही उभरे दिखाई दे रहे थे। युवती के हाथ में भारी सूटकेस था, जिसे वह कठिनाई से उठा पा रही थी। एक प्रकार से वह बाई ओर को झुकी चल रही थी।

"कैसा आदमी है...खुद ने तो छोटा-सा सूटकेस सँभाला हुआ है...और. । लगता है यह इसकी नौकरानी है।" मैं पत्नी की ओर देख बुदबुदाने लगा था।

"नौकरानी क्यो. .मित्र भी तो हो सकती है। बल्कि मित्र ही होगी. ।"

"मित्र ही होगी मैने तो यो ही नौकरानी कह दिया"

और तभी देखा गोरा अपना सूटकेस उसे थमा रहा था और उसका भारी सूटकेस खुद लेता हुआ कुछ कह रहा था। उसके बाद दोनो ठटाकर हँसे थे।

"यकीनन ये मित्र हैं।" मैंने मन-ही-मन सोचा और तेजी से उन्हे क्रास करता नीचे उतर गया। नीचे समुद्र.. आलिगन में बांध लेने के लिए तत्पर। विस्तृत अर्द्धचन्द्रकार तट ..दूर तक फैली रेत और रेत पर 'सन बाथ' लेते विदेशी सैलानी। अधिकाश युवतियॉ...तीन-चार जोड़े। दूसरे छोर पर छोटे-बड़े रॉक्स ..कुछ लोग उन पर बैठे समुद्र मे उठती-गिरती लहरों का आनन्द ले रहे थे। लेकिन देखने मे वे स्थानीय लग रहे थे।

तट से ऊपर ऊँचाई पर कतार से बने होटल्स, रिसोर्ट्स और रेन्तरा। उन्ही मे एक के.टी.डी.सी का होटल भी है और उनमें ठहरने वाले नब्बे प्रतिशत विदेशी पर्यटक। धूप से बचने के लिए गोल छतरियों के नीचे अर्द्धनग्न उनके शरीर देसी पर्यटकों में कोई जुगुप्सा या आकर्षण नही उत्पन्न कर रहे थे।

दो गुलाबी युवतियाँ—उम्र होगी लगभग सोलह-सत्रह...चुस्त अण्डरवियर और कसी ब्रॉ मे नीचे उतरती दिखती हैं। दोनों के हाथ में चटाइयॉ हैं और मन मे उल्लास। तट पर चटाइयॉ रख वे समुद्र मे उतर जाती है। गर्जन करती लहरे तेजी से बढती हैं ..आक्रमक मुद्रा में और दोनों को समेट लेती है। कुछ दूर तक दोनो लहरो के साथ बहती जाती हैं लेकिन समुद्र भी सौन्दर्य प्रेमी है... वह केवल लहरों से उनके बदन का स्पर्श करता है और शिथिल कदमो से वापस लौट जाता है। लेकिन मैं देखता हूँ, लहरों का एक उफान शान्त होता है, तो पीछे से उससे भी तीव्र लहरें तट की ओर दौडती है। लेकिन इस बार दोनों युवतियॉ अपने को तैयार कर लेती हैं। जैसे ही लहरों का ज्वार उनके निकट पहुँचता है, वे ताकत भर ऊपर उछल जाती है। लहरें रेत में दूर तक दौड़ती चली जाती है और तट पर खडे सैलानियो को घुटनों तक भिगोती उसी तीव्रता से लौट लेती हैं। मैं बच्चो के साथ लहरों की तीव्रता को किनारे खड़े अनुभव करता हूँ। माशा की सैंडिल भीग जाती है। हम सबक लेते हैं और जूते-सैडिल रेत पर उतार फिर लहरों को पकडने का प्रयत्न करते है वे आती है, कुछ कहती है और उसी तेजी से मुड़कर चली जाती है। बीच-बीच में उनकी तीव्रता इतनी प्रखर होती है कि ऊँचाई को नापती रेत के मैदान के मध्य तक जा पहुँचती है। हमे अपने जूते-चप्पले और दूर रखना पडता है।

दोनों विदेशी युवतियॉ आधा घण्टा से ऊपर स्नान कर चटाइयाँ रेत मे बिछा पेट के बल लेट कर 'सन बाथ' लेने लगती है। कुछ दूरी पर दो अन्य विदेशी लडकियाँ भी लेटी हैं उम्र में पचीस-तीस के जिनके शरीर निश्चित

ढीले हो चुके है। उनसे कुछ हटकर एक प्रौढ जोड़ा पास-पास लेटा है। पुरुष अण्डरवियर ही पहने है, पीठ उसकी नगी है। महिला की मोटी जाघे अनाकर्षक हे, जिनमें बल पडे हुए है। बढी उम्र अपनी छाप छोड चुकी है। वह सीधी लेटी हे।

देसी सैलानी कपड़े पहने केवल किनारे खड़ अपने को भिगो रहे हैं। कोई भी अन्दर जाकर लहरो से टकरा नहीं रहा। दूर रॉक्स की ओर लम्बा-कसे वदन का मावला पुरुप लहरो से खेल रहा है। जव मै तट पर आया वह तब से पानी मे था और आगे ही बढ रहा था धीरे-धीरे। वह इतनी गहराई मे था कि पानी उसकी छाती तक पहुँच चुका था। उसके वाल छोटे थे और चेहरे पर 'फ्रेंचकट दाढी' थी। कभी वह देशी पर्यटक होने का भ्रम देता तो कभी किसी पडोसी देश का। तट पर एकत्रित भीड मे सर्वाधिक आनन्द वही ले रहा था। लहरें उसके ऊपर से गुजरती तो वह गायव हो जाता और जब लौट जाती तो हम उसे उसी स्थान पर खडा देखते।

"काफी ताकत वाला लगता है, यह व्यक्ति।" मैंने पत्नी से कहा।

"होगा ही।" पत्नी अन्यमनस्क भाव से बोली और दूर क्षितिज की ओर ऑखे फैला दी। मैने भी उसकी ऑखो का अनुसरण किया।

"वह दूर कुछ चलता दिखाई दे रहा है न।" वह बोली।

"अरे हॉ' एक नहीं तीन...तीन...।" माशा उछलती हुई उस ओर इशारा कर रही थी।

"हॉ.. नावें लग रही हैं .तट की ओर बढ़ रही है।" मैंने उन पर नजरें गडा कहा।

"इतनी दूर चली जाती है ये नावे।" माशा का स्वर था।

"मछलियों के लिए जाना ही पड़ता है। कभी-कभी तो मछुआरे सीमा रेखा पार कर जाते हैं। रामेश्वरम तट के मछुआरे श्रीलंका की सीमा में प्रवेश कर जाते हे और पकड़े जाते है।"

"लगता है ये 'वैली लैगून' के तट की ओर बढ़ रही है।" पत्नी ने अनुमान लगाया।

"मेरा भी अनुमान यही है। शायद वही तट होगा मछुआरों के लिए...देखा नही था वहाँ मध्य सागर से पडे जाल को कई मछुआरे किस प्रकार मिलकर खींच रहे थे। मजबूत रस्सो में खूँटे बॉध देते हैं। शायद इसलिए कि जाल बह न जाए।"

"हाँ नावें भी तो पड़ी थी वहॉ।" कुणाल ने अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई।

"वे नावें उधर ही जा रही लगती हैं" कहने के साथ ही मैं चीखा

“बचो .तेज लहरं आ रही है।” हम सबने एक दूसरं को पकड़ लिया। लहरे इतनी तेज थी कि लहराती रेत मे दूर तक बढ़ती चली गई। ‘सन बाथ’ ले रहे सभी विदेशी पर्यटकों को भिगोती वे उनसे भी आगे निकल गई। दोनो सुन्दर युवतियाँ पेट के बल लेटी किसी ख्वाब में डूबी होंगी जब लहरो ने उनकी पीठ थपथपाकर कहा होगा, “उठो .एक बार फिर नीचे आओ...हमारे गले मिलो।”

युवतियाँ घबड़ाकर उठी। चटाइयाँ उठाई और एक दूसरे की ओर देख खिलखिलाकर हँसने लगीं। लेकिन दूसरी युवतियो का जोडा लेटा रहा। पानी वापस लौट गया तो उनमे से एक ने दाहिना हाथ बढा पीठ पर ब्रॉ का हुक खोल दिया और स्तनों को ढीला छोड़ उसी मुद्रा में लेटी रही।

“चलो उधर रॉक्स की ओर बढते हैं।” पत्नी का सुझाव आया।

“अभी एक फोटो और।” माशा चीखी।

पत्नी ने आती लहरों मे भिगते हमारी फोटो ली और हम गीले पैरो में चप्पले डाल रॉक्स की ओर बढे। बस के सहयात्रियो में एक परिवार ही वहाँ मौजूद दिखा। पति ने पैण्ट उतार रखा था और अण्डरवियर और शर्ट में नहाने का प्रयत्न कर रहा था। उसकी बेटी ने जींस को गीला कर लिया था और पिता के साथ बार बार भीग रही थी। पत्नी दोनो के जूते और पति का पैण्ट उठाए उनके चित्र लेने का प्रयत्न कर रही थी। बस के शेप सैलानी कहाँ गए? मे सोचता रॉक्स की ओर जा रहा था। अभी सवा पॉच बजा था।

हमारा गाइड तीव्र गति से चलता हमारी ओर आता दिखा तो लगा कि शायद वह हमे ही खोजता उधर आ रहा है। “लेकिन अभी तो निर्धारित समय मे ही पैतालीस मिनट शेष है।”

“कहीं और जा रहा होगा।” मन ने सोचा और मैंने देखा कि वह बजाए हमारी ओर आने के के.टी.डी.सी. होटल की ओर मुड़ गया था। वह तो उन्ही का कर्मचारी है...किसी मित्र से मिलने गया होगा।

रॉक्स के पास पहुँचकर पाया, जो आकर्षण दूर से था वह निकट पहुँचकर विकर्षण बन गया। वहाँ मछलियो की गन्ध थी और आसपास बिखरी थी गदगी। एक क्षण ही रुके हम वहाँ। बच्चे किनारे पडी छोटी सीपियाँ इकट्ठा करना चाह रहे थे। कुणाल ने तीन-चार ढूँढ भी लीं, लेकिन वातावरण ठहरने की अनुमति नही दे रहा था। मुझे आश्चर्य हो रहा था उन लोगो पर जो वहाँ बैठे थे। दो कदम के फासले पर तीन प्रौढ़, गोरे सैलानी लेटे हुए थे और एक के साथ एक स्थानीय महिला चिपकी हुई थी। किसी चीज का मोलभाव कर रही थी। आश्चर्यजनक रूप से कुछ हटकर एक ज्योतिषी को देखा, जो एक विदेशी महिला पर्यटक का

हाथ थामे उसे अंग्रेजी मे कुछ बता रहा था और वह महिला मंद-मद मुस्करा रही थी। शायद सोच रही थी कि "तू भले ही मुझे मूर्ख बनाने का प्रयत्न करे, लेकिन मे तेरी असलियत जानती हूँ।"

इस देश मे ज्योतिष भी एक व्यवसाय की भाँति पनप रहा है। गली-मोहल्लो मे कम्प्यूटर से भविष्य बांचने वालो की संख्या बढ़ रही है और महानगरो के व्यस्त लोग अपनी समस्याओं से निजात पाने के लिए उनके व्यवसाय को जमा रहे हे। हालॉकि बचपन से ही देखता आया हूँ फुटपाथी ज्योतिषियो को और बचपन मे रक्षा बंधन वाले दिन पडोसी गॉव सिकठिया से आने वाले गोसाईजी, जिन्हे मॉ महापात्र कहती थीं, से अपना हाथ आगे बढ़ा भविष्य पूछने की कोशिश भी करता रहा। लेकिन 'सीधा' (यजमान से मिलने वाला आनाज या आटा) और दक्षिणा पर दृष्टि रखने वाले महापात्र महाराज ने जब जो बताया आगे बढती उम्र के साथ मैंने वह सब कभी घटित होते नहीं पाया।

मैंने घडी देखी, पॉच चालीस हो रहे थे।

"चलना चाहिए।" गति मे कुछ तेजी लाता मैं बोला।

"इतनी जल्दी भी क्या है डैडी। अभी तो बीस मिनट है।" माशा की इच्छा कुछ देर और दुनिया के उस दूसरे खूबसूरत बीच...यानि 'कोवलम बीच' मे रुकने की थी।

"बस तक पहुँचने मे दस-बारह मिनट लग जाएँगे।" मैंने तट पर चारो ओर नजरे दौड़ाई। बस का एक भी सहयात्री वहाँ नही था। जो परिवार पन्द्रह मिनट पूर्व तक था, वह भी जा चुका था। "कोई भी तो नही दिख रहा...चलते हे के.टी.डी.सी. का एरिया भी देखते है...गाइड कह रहा था न. .।"

सभी बेमन चल पडे।

चढाई अधिक न थी, फिर भी पत्नी को कुछ भारी पड रही थी। घुटनो मे तकलीफ होने से चढ़ने की उसकी गति मन्द थी। दुकानो में विदेशी पर्यटको की सख्या बढ गई थी।

ऊपर पहुँच हम चाय की दुकान की ओर लपके, जहॉ बस के 'पार्क' होने का अन्दाज था। बस वहाँ न थी। पार्क के गेट की ओर दृष्टि दौड़ाई...बस वहॉ भी न थी। हम परेशान। अभी छः नहीं बजे थे। "बस कहॉ जा सकती है।" हम सोचने लगे। एक भी परिचित चेहरा नहीं दिख रहा था।

"सब कहॉ चले गए?" घबड़ाहट नही थी, लेकिन चिन्ता अवश्य थी। बेग ओर पानी की बोतले बस में थी।

"आगे देखो...उधर होगी कहीं.. ।" पत्नी ने सुझाव दिया तो चेहरे पर तनाव

लादे मैं तेजी से आगे बढा। चाय की तीन-चार दुकानो के बाद शंख-से बनी वस्तुओ तथा अन्य सामानों की फुटपाथी दुकाने शुरू हो गई थीं। दूर तक देख आया ..के टी डी सी कॉम्पलेक्स मे खडी हर वस का मुआयना दूर से ही कर लिया, लेकिन हमारी टूरिस्ट बस कही नहीं दिखी। जितनी तेजी से गया था उतनी ही तेजी स लौटा और अपनी ओर आ रहे पत्नी-वच्चों को हाथ हिलाकर दूर से ही बताया कि वस नहीं है। स्पष्ट था कि उन सबकी परेशानी भी कुछ बढ़ गई थी। हम पीछे लौटे। पार्क के गेट के पास खड़ी बसों का पुन मुआयना किया और फिर वापस के.टी.डी.सी. कॉम्पलेक्स की ओर लौटे। इस बार पत्नी वच्चे साथ थे।

अचानक एक दुकान में उस युवक सिख पर दृष्टि पडी, जिसे पद्मनाभ मन्दिर में अन्दर जाने से रोक दिया गया था।

"सरदार जी अपनी टूरिस्ट बस किधर है?"

"आप के टी.डी.सी. कॉम्पलेक्स की ओर देखे।" अंग्रेजी मे उस सिख युवक ने तेजी से उत्तर दिया और पत्नी के साथ कुछ खरीदने में व्यस्त हो गया।

हम पुन॰ के.टी.डी.सी. कॉम्पलेक्स की ओर गए। वहाँ का जायजा लिया ओर लौट आए। इस बार सिख युवक किसी दुकान में नही दिखा।

"कहॉ गया! अभी तो यही था।" पत्नी से पूछा।

"होगा कही...इतना परेशान होने की क्या आवश्यकता है...आप इसी से अंदाज लगा सकते हैं कि वह परिवार है तो बस भी है।" पत्नी कुछ चिडचिडाई।

"हो सकता है यह अधिक एन्ज्वॉय करना चाहता हो .. बस से न जाकर ऑटो-या टैक्सी से लौटे।"

"कुछ भी हो सकता है। आप किसी दुकानदार से पूछे।"

मैंने एक पढा-लिखा दिखने वाले दुकानदार से अंग्रेजी में पूछा। उसने सोचकर बताया कि मैं कुछ और आगे...के.टी.डी.सी. कॉम्पलेक्स से आगे जाऊँ। बस वहॉ खडी है।"

बस कॉम्पलेक्स से कुछ आगे खड़ी थी। दरअसल सड़क में यहॉ घुमावदार मोड था। हम कॉम्पलेक्स के सामने जाकर लौट आते थे। मोड़ पर पहुँचकर बस दिख गई। देखा अधिकाश यात्री बैठे थे। कुछ नीचे खडे समुद्र मे उठती लहरें देख रहे थे। लेकिन यहॉ लहरों मे वह तीव्रता न थी जो ढलान से जानेवाले बीच मे थी और न ही यहॉ कोई सैलानी पानी मे लहरों से खेल रहा था। छ॰ बज चुके थे। गाइड चलना चाहता था, किन्तु यात्रियो ने अनुरोध किया कि वे 'सनसेट' देखना चाहते हैं। हालॉकि यह स्पष्ट था कि वहॉ 'सनसेट' जैसा कुछ भी न दिखेगा, लेकिन यात्रियों की इच्छा को सम्मान देते गाइड ने बस॰आधा घण्टा के लिए

रोक दी। लेकिन सूर्य आधा घण्टा बाद भी काम्पलेक्स के सामने समुद्र के ऊपर चमक रहा था सुनहरे गोले के रूप में।

ठीक साढ़े छ बजे ड्राईवर ने 'स्टियरिंग' सॅभाल ली। सुबह से वह हमारे साथ था। आखिर एक आदमी कितना श्रम कर सकता है। मैंने सोचा और अपनी सीट पर जम गया।

होटल चैत्रम के सामने बस ने जब हमें उतारा, ठीक सात बजे थे।

"समय के कितने पाबन्द है यहाँ के टूरिस्ट विभाग वाले।" मैंने सोचा ओर पानी में मुँह फैला चुकी माशा की सैण्डिलो के लिए मोची ढूँढ़ने लगा। एक मोची होटल के गेट पर बैठा दिखा। और वह एक मात्र ऐसा व्यक्ति मिला मुझे तिरुअनतपुरम में, जिसने हमारे पर्यटक होने का अनुचित लाभ लेने का भरपूर प्रयत्न किया। यदि समय रहते मैं सतर्क न हो जाता तो वह केवल सैन्डिलों को चिपकाने और दो चार रिपिट कोठने के पचास रुपए ले लेता।

उस क्षण मेरा धैर्य चुक गया था उसकी धूर्तता के कारण और मैं चीखकर उसे लताड़ने लगा था। मन मे यह बल भी था कि हम होटल चैत्रम के बाहर हे। और परिचित गाइड अभी टूरिस्ट दफ्तर मे है। दफ्तर सामने ही था। आवश्यकता पडने पर हम उसकी मदद ले सकेंगे। लेकिन उसका अवसर नहीं आया। वह मोची, जो बीस-बाइस वर्ष का रहा होगा और हिन्दी भी टूटी-फूटी बोल लेता था, मेरे क्रोध से अधिक प्रभावित नही दिखा, लेकिन उसके साथ बैठा युवक अवश्य घबड़ा गया। उसे शायद लगा कि कोई लफड़ा हो सकता है, इसलिए वह अपने साथी को समझाने लगा। अन्ततः मुझे एहसास हुआ कि मैं गलत स्थान पर क्रोधित हो रहा हूँ। यह अपना शहर नही है...और अपना भी हो तो वहीं कौन-सा लोग साथ देने के लिए तैयार हो जाते हैं। दिल्ली तो और पराया है ऐसे मामलो मे, जहाँ संवेदना काठ हो चुकी है। मोची जितने रुपए माँग रहा था उसके आधे से कुछ अधिक रुपए फेंके और तेजी से फुटपाथ पर बढ गया। मोची चीखता रहा, लेकिन मैंने मुड़कर नही देखा।

"ऑटो ले हम 'कावडियर रोड' पर उतरे। कुछ दूर पैदल चलकर, बुढिया की दुकान पर केलों का भावताव करते 'को-आपरेटिव स्टोर' की ओर बढे। सोचा कि अगले दिन दोपहर-के भोजन के लिए कुछ ले लेगे, लेकिन स्टोर बन्द था।

गेस्ट हाउस पहुँचे तो सवा आठ वज रहे थे। कृष्ण नायर ने सूचित किया कि भोजन तैयार है।

"नौ बजे आएँगे।" उसे समय दे हम नहाने चले गए।

रात गहरी नींद आई। अगले दिन ग्यारह बजे गेस्ट हाउस से निकलना था।

जल्दी कुछ थी नहीं। आज पड़ोस से पानी टपकने की आवाज भी नही सुनाई दी। थकान भी थी। सुबह सात बजे के लगभग जगा।

नायर साढे सात बजे चाय दे गया और नाश्ता कितने बजे करूँगा, यह भी पूछ गया।

"नौ बजे।"

"ओ.के.सर।"

चाय पीकर मैं सामान पैक करने लगा। तैयार होकर ठीक नौ बजे हम नाश्ते की मेज पर थे। नायर के पाक कौशल पर मै मुग्ध था। प्रायः दक्षिण मे रहने वाले लोग उत्तर भारतीय भोजन या तो बना नही पाते या बना भी पाते है तो बेहतर नही लेकिन नायर तो उत्तर भारतीय रसोइयो को भी पछाड रहा था। रात ही उसने कहा था कि नाश्ते मे वह आलू करी और पूडियाँ बनाएगा। ओर जब उसने नाश्ता लगाया तो मै देखकर दग था कि कुशल गृहणी की भाँति बनाई हुई थी उसकी पूडियाँ...करारी और नमकीन। सब्जी सादी, किन्तु स्वादिष्ट। हमने नाश्ता नही एक प्रकार से भोजन ही किया। उसने पुनः चाय दी। ओर यह सब वह एक शब्द बोले बिना ही करता रहा। उसका संकट थी भाषा। केवल सकेत के लिए तो उसे शब्द मालूम थे, किन्तु बाकी बाते कठिनाई से पल्ले पडती थी उसके।

मैने उसे आतिथ्य के लिए धन्यवाद दिया।

कपडे पहन मै नीचे आया और 'हिन्दी प्रचार सभा' को फोन करने की अनुमति माँगी। वह मुस्करा दिया। फोन किया और वहाँ की प्रशासनिक अधिकारी शाताकुमारी अम्मा को पूछा। पता चला वे साढे दस बजे आएँगी। लेकिन फोन पर दूसरी ओर से पूछा गया कि मै कौन हूँ और क्या चाहिए। मैने परिचय दिया तो दूसरी ओर का स्वर अतिरिक्त सम्मान मिश्रित हो उठा, "सर आप साढे दस बजे फोन कर ले।"

"आप उन्हें मेरा नाम बताकर बता दीजिएगा कि मैने एकेल्ट्रान गेस्ट हाउस से फोन किया था। क्या वे प्रचार सभा की गाड़ी मुझे बस स्टैण्ड तक छोडने के लिए भेज सकेगी?"

"जरूर भेज सकेगी सर।" गाड़ी उन्ही के पास है। आते ही मै कह दूँगा। फिर भी आप एक बार साढ़े दस . ।" बोलने वाला व्यक्ति हिन्दी में ही बाते कर रहा था और उसकी हिन्दी मे ऐसा माधुर्य था कि वह मुझे प्रभावित कर रहा था।

यही तो है केरल की विशेषता, जहाँ किसी भाषाई विवाद या राजनीति

के हिन्दी जानने वाले लोग हिन्दी भाषी से हिन्दी में ही बात करना पसन्द करते हैं।

मैंने साढ़े दस बजे फोन मिलाया। शांताकुमारी जी मिलीं। मेरा नाम सुनते ही बोलीं, "आपके लिए हमने गाड़ी भेज दी है। पहुँचने ही वाली होगी।"

और पाँच मिनट बाद देखा गाड़ी गेस्ट हाउस के अंदर प्रवेश कर रही थी।

वे आत्मीय चेहरे

यह संयोग ही था कि 'केरल हिन्दी प्रचार सभा' के ड्राईवर का नाम भी कृष्ण नायर था। नाटे कद का सांवला आदमी, जिसके चेहरे पर प्रतिक्षण मुस्कान खिली रहती। एक भोली निर्छद्म मुस्कान। ड्राईवर ने ऊपर देखा। मैं बाल्कनी मे खडा था। मुझे देखकर वह मुस्कराया, गेस्ट हाउस का गेट खोला और गाड़ी गैराज मे पार्क कर सीढियॉ फलागता ऊपर आ गया। आते ही चौकीदार से मलयालम मे बाते करने लगा।

"अन्दर आ जाओ .प्लीज कम...।" मैं अन्दर की ओर मुडा और सोफे मे धस गया। वच्चे भी आ गए थे। ड्राईवर भी सकुचाता-सा आ बैठा।

"ग्यारह बजे चलेगे।" मैंने से ड्राईवर से कहा।

"नो प्राब्लम।"

मैं उससे प्रचार सभा के विषय मे बातें करने लगा. .मसलन कितने लोग है कितने प्राध्यापक आदि.. । वह मेरे प्रश्नो का उत्तर देता रहा। पूछने के लिए कुछ शेष नहीं बचा, तो मैं चुप दीवार की ओर देखने लगा। हमारे बीच चुप्पी रेगती रही।

"अभी तो बहुत समय है आपकी बस में. .क्यो न कुछ देर के लिए प्रचार सभा चलें...रास्ते मे ही पडेगा...अच्छा रहेगा सर।" ड्राईवर ने सकुचाते हुए कहा तो मुझे भी लगा कि जिन लोगों ने मेरे लिए इतनी सुन्दर व्यवस्था की...खाने.. ठहरने आदि की और वह भी सब मुफ्त ..उनसे बिना मिले चले जाना कृतघ्नता होगी। मे कुछ देर पहले ही शांताकुमारी अम्मा के साथ हुई अपनी बातचीत के विषय मे सोचने लगा। गाड़ी के विषय में वात करने के बाद मैंने उनसे पूछा था कि गेस्ट हाउस के बिल के विषय मे मुझे क्या करना है?

"आपको कुछ नही करना है।" उन्होने छूटते ही कहा था।

"फिर भी।"

"हमारे मंत्री महोदय (श्री वेलायुधम नायर) दिल्ली गए हुए है। लौटकर वे ही 'डिसाइड' करेंगे . क्या करना है?"

मैं मन-ही-मन विनयावनत हो उठा था वेलायुधन नायर साहब के प्रति, जिनसे आज तक मेरा साक्षात् नही हुआ था। एक हिन्दी लेखक के प्रति इतना सम्मान.. ।

"आप ठीक कहते है. .प्रचार सभा होकर जाना तो मेरे पूर्व निश्चित कार्यक्रम मे था। और अभी तो समय है।"

ड्राईवर कृष्ण नायर मुस्कराया।

"आप रुके, मै दो मिनट मे सामान लाया।" और मै ऊपर जा पहुँचा।

अटैचियाँ लिए नीचे उतरा तो नायर ने दोनों अटैचियाँ थाम ली। मैंने बच्चो को गाड़ी मे बैठने के लिए कहा और क्षण भर के लिए रुका। जब पत्नी भी नीचे जा चुकी तब मैंने सौ का नोट निकाला और गेस्ट हाउस के कृष्ण नायर को पकड़ाया। उसने उसे झट लुगी की टेंट में खोस लिया और हाथ जोड दिए। मैने उसे धन्यवाद दिया और सीढियाँ उतर गाडी में जा वैठा। गाडी जब गेस्ट हाउस से बाहर निकली, मैंने पीछे देखा, कृष्ण नायर ऊपर खडा निर्निमेष हमे जाता देख रहा था। आज भी बनियान और लुगी मे उसका चेहरा मेरी आँखो के सामने धूम जाता है। मध्यम कद काठी का गबरु-सा व्यक्ति था वह। उम्र होगी चालीस के लगभग। चेहरे पर हल्की मूँछें और इक्का-दुक्का चेचक के निशान। हर समय दाँत खिले रहते. .लगता जैसे वह मुस्करा रहा है।

कृष्ण नायर को गेस्ट हाउस मे छोड गाड़ी कावडियर रोड के लिए मुड गई थी।

ठीक दस मिनट मे हम 'प्रचार सभा' में पहुँच गए थे। रास्ते में मैने ड्राईवर को अपनी दो किताबों 'चौपाले चुप है।" और "एक मसीहा की मौत" कहानी सग्रह पकड़ा दिया था कि वह वेलायुधान साहब के दिल्ली से लौटने के वाद उन्हे दे देगा।

"पहले मै पढ़ूँगा इन्हे।" वह वोला तो मै चौका, "आप हिन्दी पढ़ लेते है?"

"जी हाँ।"

"फिर तो आप अवश्य पढें, इन्हें फिर सचिव महोदय को देगे।"

ड्राइवर मुस्करा दिया।

लेकिन प्रचार सभा के छोटे से प्रांगण मे पहुँचकर गाडी से उतरते समय मुझे एक विचार कौंधा, "क्यों न पुस्तकों का पैकेट शांताकुमारी अम्मा को सौंपू। कुछ तो देना ही चाहिए सरस्वती के इस मन्दिर मे।" मैंने सकुचाते हुए नायर से कहा, अगर आप बुरा न माने तो किताबो का यह पैकेट शांताकुमारी जी को दे दूँ।"

"अरे साब। इसमें बुरा क्या मानना.. मै उनसे लेकर पढ लूँगा।"

पुस्तके नायर से लेते हुए मुझे अच्छा नही लगा। लेकिन मेरे पास अधिक पुस्तकें थी नही। एक ही सेट और था, जिसे मुझे चेन्नै में डॉक्टर शौरीराजन के लिए ले जाना था। नायर ने पुस्तके मुझे थमा दीं। बच्चो को गाडी मे ही छोड मै उसके साथ आगे बढा। लेकिन माशा भी मेरे साथ हो लीं। सोचा था मात्र दस मिनट मे मिलकर लौट लूँगा, लेकिन क्या यह इतना आसान था? नायर जिस कमरे में मुझे ले गया वहाँ दो सज्जन थे। छोटा-सा कमरा, जिसमें सामान्य-सी मेज और चार कुर्सियाँ। मेज के सामने दुबले-लम्बे-साँवले एक सज्जन बैठे थे। ड्राईवर ने मलयालम मे मेरा परिचय दिया। नाम वह नही बता पाया होगा। लेकिन साथ बैठे दूसरे सज्जन को शायद मेरे विषय में पहले से जानकारी थी। उन्होने मेरा परिचय सामने बैठे सज्जन को दिया। मे तब दरवाजे पर खडा अन्दर जाऊँ या नहीं की उहापोह मे था कि तभी आवाज सुनाई दी, "आइए ..अन्दर आ जाइए।" मेज के सामने बैठे सज्जन ने मुस्कराकर कहा।

मेरे अभिवादन का उत्तर दोनो ने बैठे-ही-बैठे दिया। मुझे बैठने के लिए कह दूसरे सज्जन मेज के सामने बैठे सज्जन का परिचय देते बोले, "यह है हमारे प्राचार्य डॉक्टर तकप्पन नायर।" फिर डॉक्टर तकप्पन नायर की ओर उन्मुख हो बोले, "और आप हिन्दी के बडे कवि लेखक है...।" मेरे परिचय मे वे इतना ही बोल पाए। मुझे ही कहना पड़ा, मै कवि नहीं कथाकार हूँ।' अपना नाम भी बताना आवश्यक लगा मुझे।

प्राचार्य डॉक्टर तकप्पन नायर ने उन सज्जन का परिचय दिया, "आप है डॉक्टर एस.राजप्पन नायर।"

मैने पुनः डॉक्टर राजप्पन को प्रणाम किया। वे शिष्ट और वाकपटु थे ओर अपने विशेष अदाज मे शुद्ध हिन्दी बोल रहे थे। उन्हे सुनना मुझे अच्छा लग रहा था जबकि डॉक्टर तकप्पन मितभाषी और अधिक सरल लग रहे थे। प्राचार्य के पद की गरिमा के अनुरूप। डॉक्टर राजप्पन ने बताया कि वे कभी दिल्ली मे किसी विभाग में क्लर्क या ऐसा ही कुछ थे। क्लर्क से "स्नातकोत्तर छात्रो को पढाने वाले प्रोफेसर तक की यात्रा कठिन मार्ग लेकिन हजारों ऐसे हैं

''प्रचार सभा'' की गतिविधियों और समस्याओं पर चर्चा होने लगी। प्राचार्य मन्द स्वर मे बता ही रहे थे कि शान्ताकुमारी जी आ गई। थोडा-सा स्थूल...लेकिन आकर्षक व्यक्तित्व-साधारण धोती...दक्षिण 'भारतीय शैली में पहनी हुई। बडा चेहरा, गंगा जमुनी बाल.. एक ऐसा व्यक्तित्व जो घरेलू अधिक लग रहा था, किसी दफ्तर का प्रशासनिक अधिकारी कम। लेकिन कितने ही ऐसे लोग है जो अपने रहन-सहन को पद से नही जोडते। वे जितना सहज बाहर रहते है उतना ही दफ्तर मे भी रहना चाहते हैं। ऐसे ही लोग कर्मयोगी होते है।

शांताकुमारी जी हँसती तो चमकते दाँतो के ऊपर काले मसूढे झाँकने लगते। उन्होंने गाडी से पत्नी और बेटे को बुला लिया। मैंने पुस्तको का पैकेट उनकी ओर बढा कहा, ''मेरी दो सद्यः प्रकाशित पुस्तके है...वेलायुधन जी को दे देगी।''

डॉक्टर राजप्पन ने किताबे लपक लीं और सबसे पहले परिचय देखा। कितनी पुस्तके छप गई हैं, पूछा, फिर उलट-पलटकर सग्रह देखने लगे।

''इन्हें पुस्तकालय में रखवा दे।'' डॉक्टर राजप्पन ने शांताकुमारी जी से कहा।

''रखवा दूँगी।''

मुझे यह देख अच्छा लग रहा था कि वहाँ सभी हिन्दी मे बाते कर रहे थे।

कुछ देर बाद शांताकुमारी अम्मा बोली, ''चलिए आपको अपना कार्यालय और पुस्तकालय दिखा दे।''

''अच्छा लगेगा।''

''और हम उनके पीछे हो लिए। हमारे पीछे डॉक्टर राजप्पन नायर ओर डॉक्टर तंकप्पन नायर भी चल पड़े। मैं उन्हे अपने से आगे रखना चाहता था। उम्र का लिहाज था मेरे मन मे। शांताकुमारी जी हमें अपने कार्यालय ले गई, जहाँ स्टॉफ बैठता है। हमें देख लोग खडे हो गए। उन्होंने सबसे मेरा परिचय करवाया। अपने प्रति लोगों का सम्मान मुझे मुग्ध कर गया। वास्तव में उससे अधिक मुझे मुग्ध कर गया उन सबका संस्कार। एक अपरिचित के सम्मान मे खडे होना हमारी सस्कृति का प्रतीक है, और यह सुखद लग रहा था कि भारतीय सस्कृति का संवाहक होने का दावा करने वाले उत्तर भारत को धता बताती केरल मे वह निर्छछ्म रूप से उपस्थित है।

कुछ समय बाद ही हम पुस्तकालय मे थे। छोटा-सा पुस्तकालय, लेकिन महत्वपूर्ण हिन्दी की पुस्तकों से सजा हुआ। विष्णुप्रभाकर, भीष्म साहनी, शिवप्रसाद सिंह अमृतलाल नागर राजेन्द्र यादव कमलेश्वर कितने ही वरिष्ठ लेखको से

लेकर युवा लेखक तक वहॉ मौजूद थे। नही लगा कि पुस्तको की खरीद मे कोई भेदभाव किया जाता होगा वहॉ। जो कुछ देखा वह उत्कृष्ट साहित्य था। खरीद और पुरस्कार की धांधली तो हिन्दी भाषी क्षेत्रो मे ही होती है। स्वय हिन्दीवाल ही एक दूसरे की कब्र खोदने में जुटे हुए है।

पुस्तकालयाध्यक्ष उठ खडे हुए हमारे प्रवेश करते ही। वे पुस्तकालय के विषय मे बता रहे थे। स्थानाभाव के विषय मे चिन्ता व्यक्त कर रहे थे और इतनी अच्छी हिन्दी बोल रहे थे कि लग ही नही रहा था कि वे 'केरलाइट' है। शुद्ध उच्चारण। पत्नी उनकी सहायिका से पुस्तको के क्लासीफिकेशन पद्धति पर बाते करने लगी थी। कई छात्राएँ थी, जो पुस्तके खोज रही थी। अपने बीच एक हिन्दी लेखक को देख वे रोमाचित हो रही थीं। दो लडकियों से पत्नी कुछ पूछ रही थी। एक से मैने पूछा, "आप क्या कर रही है?"

"बी.एड.।"

"इससे रोजगार की क्या सम्भावना है?"

छात्रा सकुचा गई। मोर्चा सम्भाला पुस्तकालयाध्यक्ष ने, "कहॉ हल होती हे रोजगार की समस्या साहब. .बस पढना है...इसलिए पढ़ रही हैं।"

शांताकुमारी जी को हमारी बस का ख्याल था। वे हमे सचिव के कमरे मे ले जाती है। छोटा-सा कमरा .लेकिन साफ-सुथरा सजा हुआ। सब कुछ व्यवस्थित।

"कितना अच्छा होता कि वेलायुधन साहब भी होते।" मै सोच रहा था।

डॉक्टर तकप्पन नायर और डॉक्टर राजप्पन नायर वहॉ पहले से ही मौजूद थे। पॉच मिनट बाद ही सभी के लिए फ्रूटी और लाल रंग के वहॉ की 'नियामत' कहे जाने वाले केले आ गए। बलात खाना पडा। शांताकुमारी जी के आग्रह को टालना कठिन था। केला वास्तव में स्वादिप्ट था और एक ही पेट भरने के लिए पर्याप्त था।

"यह केला आपको दिल्ली मे नहीं मिलेगा. " डॉक्टर राजप्पन कह रहे थे।

"जी हॉ...यहीं देखा।"

"देखने मे जितना भारी-बडा है...पाचन में उतना ही हल्का ..। खाने के आधा घण्टा मे ही पच जाता है।"

लेकिन एक केला और एक फ्रूटी पेट मे बजने लगे थे।

डॉक्टर राजप्पन ने माशा से एक शास्त्रीय गीत सुना जिसे वह आधा ही गा पाई।

मैंने घडी देखा, पौने बारह बजे थे।

"अब चलना चाहिए. ।"

"मन तो नही कह रहा कि आप जाएँ ..एक दिन और ठहरते तो बच्चों के बीच आपका भाषण रखता।" डॉक्टर राजप्पन बोले।

"आप लोगो से मिलने के बाद जाने की इच्छा तो मेरी भी नहीं हो रही.. लेकिन अभी बहुत आगे तक जाना है। फिर कभी अवसर मिला तो अवश्य आऊँगा.. तब सही... ।"

"हॉ ऑ. ।" बेमन बोले डॉक्टर राजप्पन।

"आप लोगो का आतिथ्य और यहॉ का प्राकृतिक सौन्दर्य मुझे लाएगा अवश्य एक बार फिर खीचकर . मैं अवश्य आऊँगा और तब पर्याप्त समय लेकर आऊँगा।"

हाथ जोड सभी का अभिवादन किया और बेटे के साथ सीढियॉ उतर गया। पत्नी शांताकुमारी जी के पास कुछ देर और रुकी। शायद, एक दूसरे को छोडना उनके लिए कठिन हो रहा था।

गाडी मे बैठते मै सोच रहा था, यह कैसा सम्बन्ध है...जो क्षणो मे इन्सानो को इतना निकट ले आता है। मात्र पैतालिम मिनट की मुलाकात और विलग न होने की इच्छा । मैंने एक दृष्टि प्रचार 'सभा' भवन पर डाली, आ जा रहे लोगों को देखा...लगा जैसे उनकी नजरें मुझ पर ही टिकी है और गाड़ी का दरवाजा बन्द कर लिया।

इस बार ड्राईवर के बगल मे गोपिन आ बैठा था। वह हमें छोड़ने जा रहा था। मेरे और पत्नी के हाथ में "केरल हिन्दी प्रचार सभा" की पत्रिका 'केरल ज्योति' के लगभग एक दर्जन अंक थे, जो शांताकुमारी अम्मा ने चलते समय पकडा दिए थे यह कहते हुए "यह छोटी-सी पत्रिका हम निकालते है, आप भी सहयोग दे।"

"आप चाहे तो अपनी पुस्तके समीक्षार्थ भेज सकते है। यहाँ कई अच्छे समीक्षक है जो हिन्दी पुस्तकों की समीक्षा लिखते है।" डॉक्टर राजप्पन नायर ने सुझाव दिया।

मैंने उन्हे आश्वस्त किया तो दोनो ही मुस्करा पडे थे।

"केरल ज्योति" का मार्च 96 अक ऊपर है, जिसके मुख पृष्ठ पर भारतीय ज्ञानपीठ से पुरस्कृत मलयालम साहित्यकार श्री एम टी. वासुदेवन नायर का चित्र हे। मुझे यह सुखद लगा, अपने साहित्यकारों का कितना सम्मान करते हैं ये लोग। मे दूसरे अंक देखता हूँ और पाता हूँ सभी के मुखपृष्ठ पर मलयालम रचनाओ के चित्र हैं · पन्ना पलटता हूँ एम टी वासुदेवन नायर का विस्तृत परिचय छपा

है। दृष्टि एक आलेख पर टिकती है--"समीक्षा और सृजन" लेखक है डॉ.एन. ई विश्वनाथ अय्यर। विद्वतापूर्ण आलेख। सरसरी दृष्टि से देख जाता हूँ। ड्राईवर गाडी मोड़ता है। अनुमान लगाता हूँ कि रेलवे स्टेशन निकट है। साफ सड़क.. प्रदूषण रहित वाहन.. पैदल यात्री। नजर पुनः पत्रिका में जा टिकती है। डॉक्टर रामविलास शर्मा की कविता के नीचे उसी आलेख में शलम श्रीराम सिंह की कविता है। पढने लगता हूँ..

"तुम अगर
शोषण के जबडे पर मार दो घूँसा/तो
झटककर बाहर आ जाए
आजादी की नन्ही चिड़िया
और गाते गाते रख दे अपनी
वह चोंच
तुम्हारे होठो पर
जिसमे एक गीत है
धान की पत्ती की तरह हरा SSSSS"

ड्राईवर गाड़ी खड़ी कर नीचे उतरता है। गोपिन भी। मै भी नीचे आ जाता हूँ। कुछ समझूँ इससे पूर्व दोनो डिग्गी से सामान उतारने लगते है। पत्नी बच्चे भी आ जाते हैं। बस तो कही दिख नही रही थी। तभी मैं अनुमान लगाता हूँ कि वहाँ गाड़ी पार्क नही की जा सकती, इसलिए वे जल्दी कर रहे थे। बसे आ जा रही थी...व्यस्त बस स्टैण्ड।

"मै पता करता हूँ बस के विषय में..किस प्लटफार्म से जाएगी।"

"उधर से जाएगी सर...आप उधर चलें।" नायर और गोपिन अटैचियाँ उठा लेते हैं और धूप से हटकर एक ओर रख देते है। बच्चे पत्नी भी वही जा टिकते है।

"आप रुकेगे कुछ देर...दरअसल भाषा की समस्या होगी...बस मे तमिल या मलयालम मे ही लिखा होगा...थोडी कठिनाई हो सकती है।" मैं कहता हूँ।

"आप चिन्ता न करें सर ..हम चढ़ाकर ही जाएँगे।" ड्राईवर नायर अपनी सदाबहार मुस्कराहट मे उत्तर देता है और गाडी मे धँस जाता है। वह सिर बाहर निकाल गोपिन को कुछ निर्देश देता है और गाडी स्टार्ट कर देता है। मै गोपिन के बगल मे खडा हो जाता हूँ। वह निपट धूप में खडा होता है। गोपिन के साथ समस्या है। वह हिन्दी तो समझता ही नहीं. अंग्रेजी भी कम समझ पाता है। बात भी क्या करु सोचता हूँ तभी नायर आ जाता है बसें जा रही हैं और वहा

से छूटने वाली हर बस को मै कन्याकुमारी की बस मानने की गलती करता हूँ। बारह बजे चुके है। बस का पता नही। मै नायर से पूछता हूँ, "बस मिस तो नहीं होगी?"

"नहीं सर...अभी आ जाएगी।" वह मुस्कराता है। इस बार मैं देखता हूँ, उसके नीचे का मध्य भाग का एक दॉत छोटा है जिससे उसकी मुस्कराहट अधिक खिली नजर आती है।

मै बस स्टैण्ड के अन्दर की ओर देखने लगता हूँ। हम लोग बाहर की ओर खड़े थे। थे बस अड्डे के कैम्पस में ही।

ठीक बारह बजकर दस मिनट पर बस आती दिखती है। मैं समझ नही पाता, लेकिन गोपिन की व्यस्तता स्पष्ट कर देती है। वह ड्राईवर को बताता है और दोनों अटैचियॉ उठाने के लिए लपकते है। बस के लगते ही पता नहीं कहॉ से सवारियॉ हुर्र कर चढने लगती है। सभी इधर-उधर छाया मे खड़े रहे होंगे। नायर मुझे चढने का इशारा करता है। मै अपनी सीट पर पहुँचता हूँ। एक से चार नम्बर सीटे। बगल की खिडकी से नायर अटैचियॉ पकड़ाता है। मैं उन्हे धन्यवाद कहना चाहता हूँ, लेकिन यह तो एक औपचारिक शब्द है। मैं शब्द ढूँढता हूँ कृतज्ञता ज्ञापित करने के लिए, लेकिन मुझ अल्पज्ञ को उस हबड-हबड मे उपयुक्त शब्द नही मिलते। दोनो बस से नीचे खिडकी के बाहर खडे थे धूप में मुस्कराते हुए।

"आप दोनो कभी दिल्ली आएँ।"

'आएँगे सर।" नायर कहता है।

"आएँगे तो मेरे घर ही ठहरेंगे।" मै अंग्रेजी मे कहता हूँ जिससे गोपिन भी कुछ समझ सके।

दोनो ठठाकर हँस देते हैं। मैं उनके हँसने का कारण खोजने लगता हूँ। तभी बस हॉर्न देती स्टार्ट हो जाती है। गोपिन और नायर हाथ जोड नमस्ते कहते हैं। मैं इस बार विना कुछ कहे हाथ जोड लेता हूँ। बस रेंगने लगती है।

फिर प्रकृति की गोद में

ढाई घण्टे की यात्रा है तिरुअनतपुरम से कन्याकुमारी तक।

बस रेलवे स्टेशन के पास का गोल-चक्कर घूमकर पुल पर चढ रही थी। मे धूप मे नहाए शहर पर दृष्टि डालता हूँ और अलविदा कहता हूँ।

"हमे अभी एक दिन और ठहरना चाहिए था।" बगल मे बैठी पत्नी से कहता हूँ।

"आगे भी बहुत कुछ है...वहाँ के लिए समय कम नही पडता?"

आगे की यात्रा के संयोजन मे पत्नी की कोई भूमिका नही है। यहाँ तक कि जब भी दिल्ली मे उससे सलाह माँगता, वह कह देती है आप जैसा उचित समझे।

और मुझे यही उचित लगा था कि मै एक दिन-डेढ़ दिन तिरुअनतपुरम मे ठहरता। अब यह अपर्याप्त लग रहा था। लेकिन शहर का आकर्षण मुझे खींच रहा था।

"दरअसल हमने कन्याकुमारी के लिए टिकट आरक्षण मे जल्दी की थी...वर्ना ।"

"आज अगर कैंसिल करवा लेते, कल की टिकट ले लेते।"

"अब तो जो हुआ...।"

"हूँ...ऊँ...।"

पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम के अनुसार जो स्थान हमने देखा उनके अतिरिक्त 'नेपियर म्यूजियम' 'श्री चित्रा आर्ट गैलरी', 'पद्मनाभपुरम महल', 'चिडियाघर' आदि स्थान रह रहे थे। नैपियर म्यूजियम के विषय मे बताया गया था कि इसकी स्थापना 1853 में की गई थी। उसमे लकड़ी का काम व वास्तुकला का सुन्दर शिल्प दर्शनीय है इसका वर्तमान नाम 1880 मे तत्कालीन मद्रास के गवनर लॉड नेपियर के नाम से रखा गया था इसके वास्तुविद थ चिस्हल्प म्यजियम अवश्य

देखना' कई मित्रो ने कहा था। किन्तु 31 मार्च को सोमवार था और उस दिन म्यूजियम और ऑर्ट गैलरी, चिड़ियाघर आदि बन्द रहते है।

म्यूजियम की ही भाँति ऑर्ट गैलरी भी दर्शनीय है। मुझे जानकारी थी कि इसमें मुगलिया, राजपूती और तंजौर शैली की कलात्मक चीजो का अद्भुत सग्रह है। यहाँ चीनी, जापानी और तिब्वती चित्रों का संग्रह दर्शको को मुग्ध करता ह। यही नहीं रूसी चित्रकार रोरिक और राजा रविवर्मा के चित्र भी यहाँ सुरक्षित हे। राजा रविवर्मा के चित्रो को मैसूर की ''राजा रविवर्मा आर्ट गैलरी'' मे देखकर मे मुग्ध हो चुका था। एक और अवसर था, किन्तु साप्ताहिक अवकाश के कारण दख नही सका, जिसका अफसोस मन में लिए मुझे कन्याकुमारी के लिए प्रस्थान करना पड़ा था।

तिरुअनतपुरम से तिरपन किलोमीटर दूर 'राजा मार्तण्ड वर्मा' का एक महल हे, 'पद्मनाभपुरम महल'। उस महल की वास्तुकला के विषय मे कहा गया है कि वह देखने योग्य है। और वहाँ तो अलग से ही जाना होता है।

बस हरे-भरे खेतों-बागो के रास्ते जा रही थी। दूर नारियल के बाग आँखो को शीतलता प्रदान कर रहे थे। सडक के दोनो ओर वृक्षों की कतारे और उनसे सटे धान के खेत। पीछे छूटती बस्तियाँ और कस्बे। गाँवो मे खपरैल के मकान और कस्बो मे आधुनिकता की उपस्थिति, उस सबके बावजूद हर घर के सामने एक-दो पेड। नीम के पेडों की कतारे। घरो के लॉन में रंग-बिरंगे फूल...ऐसे कि जिन्हें मैंने पहले कभी देखा नही था। लाल, गुलाबी, नारगी...मन करता यही ठहर जाऊँ ओर फूलो को गदोली पर रख सूँघूँ। कहते हैं गरीबी है वहाँ, लेकिन मुझे एहसास नही हुआ। ट्रेन मे बच्चो के साथ चिपकने वाला 'पप्पू अकल' तो बार-बार कहता रहा था ''भूखे-नगे लोग है यहाँ के...।'' लेकिन मुझे तो यहाँ भिखारी भी गिनती के मिले। महिलाएँ व्यस्त दिखीं और युवक जो बेकार भी थे वे भी बेकार जैसे नहीं दिख रहे थे।

मुझे यह देख अच्छा लग रहा था कि गाँव ही नहीं कस्बों और शहरो मे भी लोग हरियाली पसन्द है। सभी ने मकान का कुछ हिस्सा हरियाली के लिए छोड़ा हुआ है। जबकि दिल्ली में...एक-एक इंच जमीन की कीमत वसूलने मे लोग पीछे नहीं हैं। जितनी जगह में एक पेड खड़ा करेंगे उतने में एक कमरा बनाकर हजार-पाँच सौ महीने कमा लेने की अर्थवादी मानिकसता ने दिल्ली के लोगो को मानवीय नहीं रहने दिया। सम्भव है दूर से मुझे सब कुछ हरा-ही-हरा दिख रहा हो लेकिन अन्दर से राज कुछ और ही हो। दिल्ली—मुम्बई की अर्थवादी मानसिकता का प्रभाव हो सकता ह की पर भी छा रहा हो लेकिन

वाहर से उसके लक्षण दिखे नही। हॉ, इतना तय है कि राजनीति के खूनी पजो से देश का कोई भी हिस्सा महफूज नही है।

इसमे कोई सन्देह नही कि केरल में गरीबी है। कही-कही तो इतनी अधिक कि लोग अपनी वच्चियो को अरव के शेखो के यहॉ कुछ हजार के वदले भेजने मे नही कतराते। पेट मनुष्य का सबसे वड़ा शत्रु है। नर्स जैसे पेशे में आज सर्वाधिक केरल की लड़किया दिखाई देती है, लेकिन इसका एक पक्ष यह भी है--विदेशी मुद्रा भी देश के दो ही प्रांतो मे सर्वाधिक आ रही है—वह हैं पजाव और केरल। इसलिए सम्भव है कि कन्याकुमारी के रास्ते पड़ने वाले कस्बो, गॉवो में मुझे वह सब देखने को नही मिला।

तिरुअनंतपुरम से निकलने के लगभग एक घण्टे बाद आसमान में वादल चलते दिखाई दिए।

"हम समुन्दर के निकट पहुँच रहे हैं, इसलिए ये बादल दिखाई दे रहे है।"

"ऐसा तो यहॉ होता ही रहता है।"

हवा में मादक शीतलता है। कुछ देर पहले तक बहने वाले पसीने से निजात का सुख मन को शान्ति देता हैं। बस को चलते डेढ घण्टा से ऊपर हो चुका है। 'नागरकोइल' मे एक रेस्टारेण्ट के सामने ड्राईवर सडक के किनारे बस रोकता हे। बगल में एक खण्डहर है। कच्चा-पक्का मकान।

"जस्ट फिफ्टीन मिनट...लच लेके आता।" ड्राईवर बोलता है। उसे कामचलाऊ हिन्दी आती है।

सामने रेस्तरा मे खासी भीड है। दो विदेशी पर्यटक भी दिखाई देते हे। सामने के खण्डहर मकान से मुझे विशेष राहत मिलती है। लघुशंका निवारण का अच्छा अवसर देख मै उतर जाता हूॅ। एक दक्षिणात्य युवती मुझे खण्डहर के अन्दर जाता देख मुस्कराती है। मैं उसकी ओर देखता हूॅ तो वह दूसरी ओर देखने लगती है। निवृत्त होकर निकलता हूॅ तो मन को हल्का पाता हूॅ। यह तो सुखद सयोग था कि ड्राईवर ने वहॉ गाडी रोक दी, अन्यथा रास्ते में कही मुझे ही अनुरोध कर रुकवाना पडता।

"कुछ खाना है?" मैं खिड़की के पास जाकर पत्नी से पूछता हूॅ।

"देख लो... इडली वगैरह कुछ.।"

रेस्टारेण्ट मे इडली या सादा डोसा नहीं है। वडे मिलते है—चना बडा। ले आता हूॅ। वच्चो को पसन्द नहीं। लेकिन हम टूगने लगते हैं।

ठीक पन्द्रह मिनट वाद ड्राईवर आ जाता है। 'नागरकोइल' दूर तक फैला हुआ है। व्यवसायिक कस्वा लगा। बडी-वडी दुकाने सजी हुई। नागरकोइल मे

नागराज का मन्दिर है।

"क्यो न उतर कर मन्दिर देखकर जाएँ।" मन सोचता है, लेकिन यह कठिन है। सामान सँभाले घूमना सहज नही। कन्याकुमारी से ही आना ठीक रहेगा। है ही कितनी दूर 19 किलोमीटर। मन्दिर का वैशिष्ट्य इसी से स्पष्ट है कि वहाँ नागराज के साथ शिव और विष्णु की भी स्थापना मिली है। नागराज की मूर्ति आधार तल मे है, जहाँ से वह प्राप्त हुई थी। मन्दिर के स्तम्भो मे जैन तीर्थंकर महावीर और पार्श्वनाथ के चित्र खुदे हुए हैं। मन्दिर के प्रवेश द्वार मे चीनी शैली के दर्शन होते है। यहाँ जाने वाले भक्तो को प्रसादस्वरूप रेत दी जाती है।

नागरकोइल निकल गया। आसपास ठुठियाये खेत शुरू हो गए है। दूर कही नारियल के बाग दिखते है.. लेकिन हरियाली कम हो गई है। बाएँ हाथ छोटी पहाड़ियाँ है, जिनमे से एक मे वैसा-ही छोटा मन्दिर दिखाई देता है, जैसा हमें मध्यप्रदेश में रेलवे लाइन के किनारे दिखा था। वैसी ही सीढ़ियाँ। और आश्चर्य दो छोटे मकान भी पक्के...।

"कौन रहता होगा यहाँ जगल मे?" पत्नी पूछती है।

"मकान हैं तो कोई तो रहता ही होगा।"

रेलवे लाइन साथ-साथ दौड रही हैं। कन्याकुमारी-मदुरै से रेलमार्ग द्वारा भी जुडा हुआ है। हिमसागर एक्सप्रेस जम्मू से सप्ताह मे एक बार कन्याकुमारी के लिए चलती है और तिरुअनतपुरम होकर कन्याकुमारी जाती है। सम्भवतः भारत मे सर्वाधिक लम्बी यात्रा करने वाली गाडी होगी वह।

मै ड्राईवर के पास जाकर अनुरोध करता हूँ, "विवेकानद आश्रम के सामने रोक दीजिएगा।"

'ओ.के.' ड्राईवर सिर हिला देता है।

और पौने तीन बजे ड्राईवर इशारा करता है। बस विवेकानद आश्रम के सामने खडी है। हडबड़ाकर नीचे उतरता हूँ। पत्नी खिड़की से समान पकडा देती है। आश्रम के अन्दर से एक लड़का दौडता-आता दिखता है बस को रुकने का इशारा करता हुआ। लेकिन ड्राइवर जल्दी मे है। हमे उतार वह बस दौडा देता है। आश्रम के अन्दर से आता लडका गेट पर रुक जाता है हताश। उसकी सास फूल रही है। पीछे उसका परिवार दिखाई देता है। मै अटैचियाँ उठाए चौकीदार के पास पहुँचता हूँ। "एकमोडेशन चाहिए।"

"आगे जाइए...रिशेप्शन मे बात कीजिए।"

मै सामान उठाए चल देता हूँ. .चौड़ी सडक पर।

स्वच्छता का पर्याय है आश्रम

रिशेप्शन गेट से अधिक दूर नहीं है, फिर भी मैं रास्ते मे मिलने वाले हर व्यक्ति से पूछ लेता हूँ। हाथ का इशारा...थोडी दूर की सांत्वना और मै चल देता हूँ।

रिशेप्शन में दो कर्मचारी बैठे हैं। बगल मे विवेकानद साहित्य बेचने की दूकान है, जिसमे मराठी-सा दिखने वाले सज्जन व्यस्त है। एक कर्मचारी बाहर खडा है। कुछ हटकर दो लोग बैठे बाते कर रहे है और काउण्टर पर बैठा व्यक्ति रजिस्टर मे झुका है। सामने एक व्यक्ति...पैतालिस के आसपास और उसका पन्द्रह-सोलह वर्षीय बेटा.. खडे हैं। उन्हें हिसाब-किताब निबटाने की जल्दी है। सामान उनके पैरो के पास रखा है।

"ठहरने के लिए कमरा चाहिए।" मैं रजिस्टर में झुके व्यक्ति से कहता हूँ।

"एक मिनट सर।"

मैं एक ओर खडा हो जाता हूँ। काउण्टर पर खडे सज्जन बेटे से कहते है, "देखो कोई टैक्सी मिल जाए .. ।"

"जल्दी क्या है पापा.. अभी तीन ही तो बजे हैं।"

सज्जन चुप हो जाते है। मै घडी देखता हूँ, "आप लोग जा रहे हैं?"

"मद्रास ..अभी चार बजे की गाड़ी है।" उत्तर दे वह पूछ लेते हैं "कहाँ से आ रहे हैं?"

"तिरुअनतपुरम से।"

"मैं भी कुछ देर पहले वहीं से आया हूँ।"

"वहाँ घूम चुके?"

"जी हाँ...कल आया था मदुरै से...कल ही शाम तिरुअनतपुरम चला

गया आज वापस ।'' कम-से-कम समय मे अधिक जगहे घूम लेने का सुख उनके चहरे पर विद्यमान था। ''परसों चेन्नई से दिल्ली के लिए ट्रेन पकड़नी है।''

देखने मे किसी प्राईवेट कम्पनी के एक्ज्यूक्यूटिव-सा दिख रहे थे वह सज्जन, लेकिन बातचीत से पता चला कि सरकारी मुलाजिम है। आश्रम मे कमरों की स्थिति पर प्रकाश डालने के बाद वे बोले, ''मै तो सार्वजनिक सुविधा वाले कमरे मे ठहरा था। तीस रुपए किराया है दो बिस्तरो वाले कमरे का।''



तनुमलयन मंदिर, सुचि

''लेकिन सुबह सनराइज (सूर्योदय) देखने के समय तो वहाँ लाइन लगती होगी।''

''वह तो है। लेकिन मैंने तो देखा नहीं। रात सामान यहॅ चला गया था...।''

काउण्टर क्लर्क उन्हे बिल पकडाता है। वे शेष पेमेण्ट दे हे ''यहाँ से कहाँ जाएँगे?''

''मदुरै।''

''हाँ. .अच्छा शहर है...यहाँ से तो हजार गुना अच्छा ।''

मैं मदुरै के विषय में सोचने लगता हूँ। वह अपने बेटे के कब उतर गए ध्यान नही दे पाया।

''कैसा कमरा चाहिए?'' काउण्टर क्लर्क पूछता है।

''थ्री बेड रूम।''

क्लर्क विस्तार से कमरों की जानकारी देता है और अन्त की चाबी देकर बहार खडे लड़के को कमरा खोल आने का निर्दे अग्रिम राशि का भुगतान करता हूँ और चलते-चलते पूछता हूँ ''

के लिए साधन क्या है?"

काउण्टर क्लर्क सामने दीवार पर टँगे बोर्ड की ओर संकेत कर अंग्रेजी में उत्तर देता है। "पढ लीजिए. दिये गये समय को नोट कर लीजिए. .।"

मै पुन कुछ पूछना चाहता हूँ। वह स्पष्ट कहता है "नो क्वेश्चन।"

हम सामान लाद चौकीदार के पीछे चल देते है।

पसीने से वदन चिपचिपा रहे है हमारे। पंखे की हवा से राहत मिलती है। नहाकर हम ठीक चार बजे तैयार हो जाते है। लिस्ट मे देखते हैं—आश्रम की बस जाने का समय साढे तीन बजे है। हमे नया टूरिस्ट समझ दो टैक्सी वाले आ जाते हैं। 'बीच' तक ले जाना चाहते हैं। 'बीच' केवल डेढ किलोमीटर है। हम पैदल चल देते है।

"सर साइट सीन्स ..जाऍगे।" नाटे कद का, गहरा सावला टैक्सी वाला पूछता है। पहले वाला भी रुका है। उसे उम्मीद है कि हम टैक्सी मे 'बीच' तक जा सकते है।

"कहॉ...कहाँ ले जाओगे?"

"नागरकोइल का नागराज टैम्पल, सुचिन्द्रम और बट्टाकोटाई. .।"

"उदयगिरि किला।"

वह समझ नही पाता।

"उदयगरि किला...यानी उदयगिरि फोर्ट।"

"हॉ...चलेगे...तीन सो रुपए...।"

"कितना समय दोगे।"

"सर तबीयत से घुमाऍगे...सुबह आठ बजे निकलेंगे, दोपहर एक बजे तक वापस सुचिन्द्रम टैम्पल बहुत अच्छा है...देखने माफिक ..नागराज टैम्पल भी . ।"

"तीन सौ तो अधिक है. ।"

"इससे कम न होगा साहब—अपुन की गाडी अच्छी है साहब।" वह सामने खडी सफेद अम्बेसडर की ओर इशारा करता है।

"हुँह...सोच लो...तीन सौ अधिक हैं कुछ कम करो।" मै पत्नी की ओर देखता हूँ..."कैसा रहेगा यदि कल सुबह आठ बजे चलें..?"

"ठीक रहेगा...एक वार और विचार कर लेते हैं..।"

"आप भी सोचकर देख लें..कुछ कम कर सको तो. .? मैं भी विचार कर देखता हूँ।" और हम लोग चल पडे।

"मैने तो सोचकर ही वोला साहब . आप बोलेगा तो आठ बजे इधर हाजिर मिलेगा .पैसा कम न होगा।" टैक्सी वाले ने अपना निर्णय सुना दिया मुस्कराते

हुए। उसके छोटे सफेद दांत अच्छे लगे। मद्रासी ढग से सफेद लुंगी बांधे, आधी बॉह की सफेद शर्ट मे उसका नाटा गठा हुआ बदन आकर्षक था। वह मुस्कराता हुआ चल पडा, कहते हुए "जाना मॉगता तो बोल देना साहब। अपुन रात आठ बजे तक इधर ही मिलेगा।"

"लौटकर बताएँगे।"

तेज धूप बहती हवा के कारण महसूस नही हो रही थी।

"कल सुबह सूर्योदय देखकर अगर आठ बजे तक लौट आएँ तो चलना चाहिए।"

"लेकिन केवल सूर्योदय ही नही देखना . विवेकानद रॉक भी देखना है...वहॉ जाने का समय ही है सुबह साढे सात बजे के बाद।"

मै सोचने लगा।

सुचिन्द्रम कन्याकुमारी से तेरह किलोमीटर दूर है, जहाँ 'थनुमलयन' मन्दिर है। मन्दिर का कलात्मक सौन्दर्य अद्भुत है। यहॉ अठारह फीट ऊँची हनुमान प्रतिमा है, जिससे तत्कालीन शिल्पकारी का अनुमान लगाया जा सकता है। यह मन्दिर विष्णु, शिव और ब्रह्मा को समर्पित है और वहॉ प्राप्त शिलालेखो के अनुसार इसका निर्माण नवी शताब्दी निश्चित होता है। वास्तव में मन्दिर से अधिक इच्छा मुझे उदयगिरि किला देखने की थी। उदयगिरि का किला मार्तण्ड वर्मा (1729-1758 ईसवीं) ने बनवाया था। वर्मा के इस किले में बदूकें बनाने का कारखाना था। मार्तण्ड वर्मा दक्षिण भारत का शक्तिशाली और वीर शासक था। उसने 1741 मे कोलाचल मे डच सेनाओ को भयानक शिकस्त दी थी और चौबीस यूरोपियो को बधक बना लिया था। इसमे डी. लेनोय भी था। बाद में यही डी लेनोय मार्तण्ड वर्मा का वफादार सेनापति बना था। लेनोय ने वर्मा के सैनिको को पश्चिमी युद्ध-कौशल का प्रशिक्षण देकर राजा के हृदय में अपने प्रति विशेष स्थान बना लिया था। मृत्यु के पश्चात् डी.लेनोय को इसी किले में दफनाया गया था, जहॉ आज भी उसका मकबरा मौजूद है।

हम आश्रम के गेट पर जाकर बस की प्रतीक्षा करने लगे थे। वहॉ पहुँचते ही एक सिटी बस आती दिखाई दी। हाथ देने पर रुक गई। 'बीच' के विषय मे हमने किसी से नही पूछा। 'बीच' तक जाने वाले गोलचक्कर से बस मुडी तो कडक्टर से पूछने की इच्छा हुई, किन्तु टाल गया, "देखा जाएगा. कहॉ तक जाती है ।"

दाहिने हाथ, "केन्द्रीय कर्मचारियों के लिए गैस्ट हाउस"—की कीमती लाल बिल्डिग दिखाई दी।

"अरे मालूम होता तो यही ठहरता।" मै बुदबुदाया।

"यहॉ से वहीं अच्छे हैं...साफ सुथरी जगह है वह...हरे-भरे पेडो के बीच रहना अच्छा या यहॉ गदगी मे ।" पत्नी की ओर इशारा किया। सुअरो की टोली गेस्ट हाउस के आसपास भोजन की तलाश में विचर रही थी।

"फिर भी लोग तो ठहरते ही है।"

"होंगे।"

बस मुडकर स्टैण्ड में आ लगी।

"अब क्या किया जाए।" उतरते हुए मै बोला। "क्यो न परसो तीन अप्रेल के लिए मदुरै की टिकट आरक्षित करवा ले।"

"हॉ, यह भी ठीक है।"

घडी देखी, पॉंच बजने वाले थे। "लेकिन 'बीच' क्या आगे है।"

"लगता है पीछे रह गया। जहॉ से बस गोलाइ मे मुड़ी थी. .वहॉ भीड थी.. वही होगा 'बीच'।"

"अधिक दूर नही है ..दस मिनट का वॉक है.. ।" मैने बस स्टैण्ड पर नजर दोडाई। लगभग सुनसान बस स्टैण्ड.. आठ दस सवारियाँ और उतने ही कण्डक्टर ड्राईवर। एक दुकान पर ड्राईवर-कडक्टर चाय पी रहे थे। एक कंडक्टर से आरक्षण काउण्टर के विषय में पूछा। हिन्दी जानने वाला व्यक्ति था। अग्रेजी में पूछे प्रश्न का उत्तर टूटी-फूटी हिन्दी में देते उसने आरक्षण काउण्टर की ओर इशारा किया। उसी से मैने 'बीच' के विषय मे पूछा।

"किसी भी बस मे बैट जाएँ...बीच के सामने उतार देगी।"

"अधिक दूर नहीं है।"

"जस्ट टैन मिनट वॉक।"

उसी व्यक्ति ने बताया कि विवेकानंद रॉक सुबह साढे सात से एक बजे तक और शाम तीन से पॉच बजे तक खुलता है। घडी एक बार पुनः देखी।

"अब कोई लाभ नहीं। रॉक को देख नहीं पाएँगे।" मै फिर बुदबुदाया।

"फिर 'बीच' मे जाने की क्या जल्दी है. .बहुत समय है...तब तक टिकट ले लीजिए।"

आरक्षण, काउण्टर मे कम्प्यूटर पर झुके क्लर्क से तीन अप्रैल की सुबह का किसी भी बस से मदुरै का टिकट माँगता हूँ। वह मुझे सलाह देता है कि पास मे लगे चार्ट मे बस नम्बर देखकर तय करूँ कि मुझे किस बस से यात्रा करनी है।

मै चार्ट मे ऑखे गडा देता हूॅ। ऊपर-नीचे—आडे-तिरछे कम-से-कम पॉच

वार चार्ट देखता हूँ। पत्नी की भी सहायता लेता हूँ, लेकिन कुछ समझ नही आता। वास्तव मे उसमे कोई तकनीक न था। बहुत ही सहज था सब। बस नम्बर के सामने लिखा था वह कहाँ जाएगी। उसका, छूटने का समय और गतव्य तक का समय दिया हुआ था। मेरी उलझन यह थी कि एक बस छोड कर कोई भी बस मदुरै नही जाएगी, मैं बार-बार यही पढ रहा था। जो बस मदुरै जाने वाली थी वह सायं तीन के बाद थी। कन्याकुमारी से मदुरै का रास्ता कम-से-कम छ घण्टे का है।

"यह तो मुश्किल हो जाएगा। रात मे पहुँचेगे। होटल ढूँढना कठिन होगा। "क्यो न चार बजे की ट्रेन से जाया जाए।" मै पत्नी से पूछता हूँ। वह उत्तर नही देती। मै खीजता हूँ। एक बार पुनः क्लर्क के पास जाता हूँ। वह फिर मुझे चार्ट को गौर से देखने की सलाह देता है।

"पागल तो नहीं है यह क्लर्क। एक बार नहीं पॉच-छः बार देख चुका हूँ.. एक ही बस है, फिर, यह...।" मै मन-ही-मन उसे कोसता हूँ। और इस बार पास खडे दो तमिल भाषियो की सहायता मॉगता हूँ, स्थानीय लोग हैं ..चार्ट की तकनीकी समस्या जानते होंगे।"

दोनो मेरी बात नहीं समझते, क्योंकि वे हिन्दी या अंग्रेजी नही समझते थे ओर मै तमिल। मेरा चेहरा अन्दर की खीझ प्रकट कर रहा था।

"क्या समस्या है सर।" एक सज्जन, जो बुकिंग काउण्टर के पास खडे थे टिकट लेने के लिए, मेरे पास आते हैं।

"मुझे मॉर्निंग की किसी बस से मदुरै जाना है।"

"आल बसेज् विल गो वाया मदुरै।" सज्जन चार्ट में सबसे ऊपर लिखे हिज्जो पर उँगली रख देते हैं।

"ओह...।" मै शर्मसार चेहरा छुपाने लगता हूँ।

उन्हे धन्यवाद देना तक भूल जाता हूँ। वह सज्जन पुनः काउण्टर पर जाकर अपनी टिकट लेने लगते हैं और मै सोचने लगता हूँ "काउण्टर क्लर्क नही, पागल तो मैं ही था, जो इतनी छोटी-सी बात भी नहीं देख पाया।

सवा दस बजे सुबह की बस थी चेन्नै के लिए। काउण्टर पर उसकी चार टिकट मॉगता हूँ। एक बार फिर भूल जाता हूँ कि आरक्षण करवा रहा हूँ। क्लर्क के पास कम्प्यूटर है .रजिस्टर नही, फिर फार्म भरना होगा। क्लर्क आरक्षण फार्म बढा देता है और पचीस पैसे मॉगता है, "फिल करके दीजिए।" वह अग्रेजी मे कहता है।

फार्म भरकर उसे पकड़ाता हूँ। वह पलटकर देखता है और वापस लौटाते

हुए एक स्थान पर पैन टिका देता है। उसका अर्थ है वहाँ हस्ताक्षर करने से। चश्मा न होने से मुझे सब-कुछ पढ-समझ लेने मे कठिनाई हो रही है।

आरक्षण करवाकर कुछ पूछना चाहता हूँ लेकिन क्लर्क मेरी गलतियों को सुधारता इतना दुखी हो चुका था कि उत्तर नहीं देता, सीट छोडकर चला जाता है।

पत्थरों से टकराती लहरें और नन्हें हाथों में लटकती शंख की वस्तुएँ

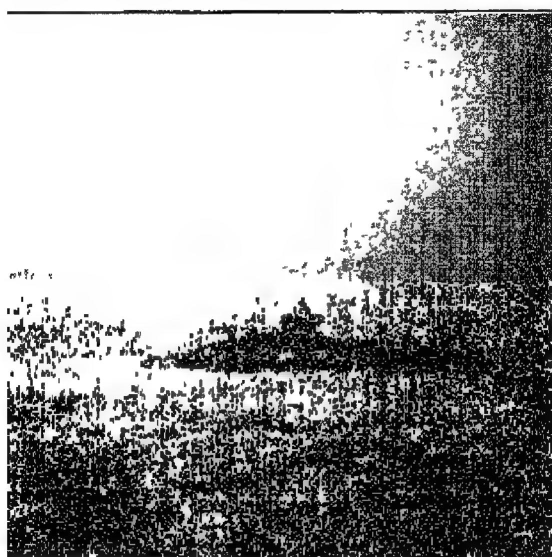
पैदल टहलते हम 'बीच' की ओर बढ़े। बाई ओर 'केन्द्रीय कर्मचारियों के गेस्ट हाउस' मे सूखते कपड़े और दाई ओर लाइट हाउस। लाइट हाउस के पार क्षितिज के पास छूता समुद्र।

आसमान मे बादल आ गए है। जिनकी बड़ी भूरी-काली टुकड़ियॉ समुद्र के ऊपर पहरेदारों की भॉति गश्त लगा रही हैं। दूर... बहुत दूर...काले-बिन्दु दिख रहे है ..एक...दो.. तीन...नावें होगी...मछली पकडने वालो की।

मोड पर छोटे-ढाबे चाय की दुकाने...परॉठें सेंक रही थी, पकौडियॉ तली जा रही थी.. यहॉ पकौडियॉ उडद की या केलो की मिल रही थी। देखता हूँ और आगे बढ जाता हूँ।

बीच तक जाने के लिए पतली सडक। छोटी दुकाने-फुटपाथी। एकाध ठेले वाले भी। नारियल पानी की एक दुकान। हम रुकते है ..पानी पीते है। गिरी निकलवाते है। चारो नारियल में मोटी गिरी—पानी इसलिए कम निकला था उनमे। दस कदम चलते ही सडक दाहिनी ओर को मुड़ जाती है। अनेक टूरिस्ट बसे उधर खडी है। वाऍ हाथ चाय की एक दो दुकाने...और उनके साथ ही मार्केट। शाम हो रही थी इसलिए यहॉ रौनक बढ़ गई थी। 'बीच' रोड से कन्याकुमारी मन्दिर तक फैली यह मार्किट जगमगा रही थी। कैमरे, घड़ियॉ आदि की आवाजे लगाने वाले 'बीच' रोड मे खड़े थे। दुकानों में सीप, शख, ताडपत्र, बांस एव लकड़ी की बनी वस्तुऍ सजी थी। 'बीच' के रास्ते मे सीप, शख और उनसे बनी वस्तुओ की ढेरा दुकान हम शुरू की एक दुकान में टिकते हैं ऐश ट्रे पर नजर

द्र स निकली 'ओरिजनल' है। वे देखने में अच्छे लग रहे है। ह
फिर सोचते है—अभी से इतना बोझ लादना ..अभी तो कल
भी दुकाने है वहाँ शायद कम कीमत मे मिल जाए ..मध्यवर्ग
ार हम आगे बढ लेते है। एक-दो दुकानों मे शखों का मोल-भाव. अच
कुणाल की इच्छा है. .दुकानदार बजाकर दिखाता है...वडा.. दूधि
अधिक नहीं मॉगता तीन सौ...फिर छोटा. .और छोटा और ती



कन्याकुमारी मे विवेकानन्द रॉक के पीछे से उगता सूर्य

दिखाता है...हर शख को वह बजाकर हमे आश्वस्त कर देता
आजमाइश करता है.. दुकानदार बजाना सिखाता है—ऐसे नहीं...ऐसे—
आवाज निकालता हूँ...मोलभाव—तीन सौ वाला मात्र सौ
ही हमें इससे अच्छा शंख लेना है—वह उस दुकानदार के पास
कदम-कदम दुकानों का नजारा लेते 'बीच' तक पहुँच जाते हे
सोलह खम्बों से बना मण्डप, जिसके उत्तर में शंकराचार्य का मन्
वेकानंद रॉक। 'विवेकानद मेमोरियल' शान्त—स्थिर समुद्र से च
। कोई दिखता नहीं वहाँ...लेकिन कोई तो होगा ही यह अनुमा
तरे से नीचे उतरते है। समुद्र को निकट से देखना चाहते है—ह
रो से बाते करना चाहते है...।" नीचे गोलाई मे खिर्ची, छ
नी जिस पर सैलानी बैठे है हम भी एक कोने में टिक जाते

लहरे दौड़ती आ रही हैं। ऊपर दीवार तक आने से पहले रास्ते मे पडे विशाल पत्थरो से टकराकर शक्ति खो बैठती है। खीजती है और पुन: तीव्रतर वेग से आक्रामक मुद्रा मे पत्थरो पर मुष्टि प्रहार-सा करती लहराती दीवार से आ टकराती है। उछाल इतना कि पानी दीवार पार कर जाता है। दीवार पर बैठे लोग गीले हो जाते है। लहरो का क्रम जारी है...उनका नर्तन ऑखो मे बसा लेने की इच्छा है। हम कैमरा सॅभालते है। कितना कैद हो पाता है, कहना कठिन है। अधेरा बढ रहा है .धीरे-धीरे। सूर्य बादलो की गोद मे समा चुका है। सामने विवेकानद रॉक में बत्तियॉ जगमगा उठती है। पीली-दूधिया रोशनी में चमकते लट्टू समुद्र के बीच उभरी कन्दीलो की भॉति दिखते है। रॉक धीरे-धीरे अधेरे मे विलुप्त होता जा रहा है। 'बीच' मे आसपास के चेहरे छुपते जा रहे हैं। कुछ देर पहले तक वहॉ सिर-ही-सिर दिखाई दे रहे थे, लेकिन अधेरा घिरने के साथ लोग कम होने लगते है। लाइट हाउस मे तेज रोशनी नाचने लगती है। समुद्र मे दूर खड़ी दो नावों में रोशनी जल रही है। यह रोशनी ही इस बात का परिचायक है कि वहॉ 'नावे' मौजूद हैं। रॉक के पास कई नावे चलती दिखाई दे रही है जो तट की ओर लौट रही है।

लहरो का गर्जन बढ गया है। अंधेरे मे समुद्र का पानी गहरा नीला नजर आ रहा है। उठने का मन नही कर रहा। हम दूर लहरो मे उठते सफेद फेन को देखते रहते है। हवा मे शीतलता बढ़ गई है। दो बालक, जिनकी उम्र आठ-दस वर्ष होगी...शंख की मालाऍ और नन्हें अविकसित विद्रूप शखों से बने चाबी के गुच्छे बेच रहे हैं। समय सात से ऊपर हो चुका है और वे बच्चे अभी तक वहॉ है। सोचकर मन को कष्ट होता है। सोचता हूँ, ये सुबह ही आ गए होंगे...दिनभर कितने को बेच पाए होंगे। एक को आवाज देता हूँ...निकट आता है। चाबी के छल्लो का गुच्छा पूछता हूँ, "छः का गुच्छा दस रुपए में।"

एक खरीद लेता हूँ।

"क्या मिला होगा इस बच्चे को?" बच्चे के जाने के बाद पत्नी से पूछता हूँ।

"दो-तीन रुपए।"

दो-तीन रुपयो के लिए इतना श्रम। घोटालो—चोर बाजारी, दलालो के इस देश में वह दिन क्या कभी आएगा जब सभी नन्हे हाथो मे चाबी के छल्ले, शख की मालाएँ नहीं कलम और कॉपी-किताबे होंगी। हम भले ही आजादी के पचास वर्ष मनाकर देश के अब तक के विकास से गर्वित हो लें...भले ही हमारे नेता धन्नासेठ इस अवसर पर करोड़ों रुपए खर्च कर जश्न मना लें लेकिन

क्या इन लोगों के पास इन नन्हें हाथो को दिनभर के इस अथक श्रम से बचाने की भी योजनाएं है. होंगी कभी... । योजनाओ की घोषणाएँ तो बहुत है .लेकिन वे सब कागजो पर है। यथार्थ में कुछ भी नही है। दरअसल वे ऐसा चाहते ही नही। वे सब नाटक करते है ..हकीकत में वे उन्हें अशिक्षित और गरीब ही रखना चाहते है, जिससे वे अपने अधिकारों के प्रति जागरूक न हो सके। यदि वे जागरूक हो गए तो उनकी कुर्सी हिलने लगेगी। हमारे सत्ताधीश अंग्रेजो की नीतियों का ही पालन कर रहे है। इसलिए अंग्रेजो का जाना एक प्रकार से सत्ता का हस्तांतरण था। बिहार की स्थितियाँ ताजा उदाहरण है। अरबो रुपए के घोटालो में फँसे लोग यह दावा करते घूम रहे है कि भ्रष्टाचार को देश से समूचा नष्ट करना उनका प्रथम उद्देश्य है और गरीबी समाप्त करने में वे देशवासियों . राज्यवासियों को सहायता की अपील करते है। लेकिन सामाजिक न्याय की गुहार लगाने वाली वह या अन्य राज्यो की सरकारो मे गरीबों की संख्या जिस गति से बढी है, अपराध जिस गति से पनपे हैं...वह इस बात को सिद्ध करता है इनके मंसूबे कितने क्रूर है।

बच्चे चाहे तमिलनाडु के हों, या बिहार के, कन्याकुमारी के हो या पटना के.. बच्चे ही होते है और खेलने-कूदने और पढने की आयु में वे दिनभर अथक श्रम क्यो करने को अभिशप्त है? क्यों वे गरीबी के कारण नवधनाढ्य गुण्डों और विदेशी पर्यटको के यौन शोषण का शिकार बनते है? 27 मई 1997 के 'टाइम्स ऑफ इण्डिया' का समाचार दिल दहला देने वाला था। पटना मे, जहाँ के मुख्यमंत्री सामाजिक न्याय और गरीबोत्थान की बातें करते थकते नही, एक ग्यारह वर्षीय बालक को छ युवक बलात पकडकर रोजगार कार्यालय बिल्डिंग मे ले गए। रात साढ़े दस बजे का वक्त था। साढ़े दस बजे रात उस बच्चे की भयकर चीत्कार को परिसर के छः सात मकानों ने मौन होकर सुना। एक व्यक्ति पुलिस तक जाना चाहता था, किन्तु उसकी हृदयहीना पत्नी गुण्डों के भय के कारण पति को रोक लेती है। शेष परिवार रात बारह वजे तक उस बच्चे की चीखे सुनते रहे, दम साधे और वे गुण्डे उस बच्चे के साथ कुकर्म करते रहे तब तक जब तक उस बालक ने दम नही तोड दिया। उसे मृत छोड़कर या गला दबाकर उसे मारकर वे किसी हीरो की भाँति मोटर साइकिलो पर सवार होकर चले गए थे। पुलिस को सुबह इस बात का पता चला और वे गुण्डे युवक पकडे नही गए। जहाँ हालात ऐसे हो चुके हो कि न केवल इन गरीब बच्चों के श्रम के बल पर धनाढ्यता अपना कद ऊँचा कर रही हो, बल्कि उनके श्रम शोषण के साथ उनका शारीरिक शोषण भी किया जा रहा हो वहाँ किसी भी मुख्यमंत्री या मंत्री के

सामाजिक न्याय की बात इन गरीबों के घावों में नमक ही छिडकता है।

समुद्र अभी भी नाच-कूद रहा था। दरअसल यह इसलिए है क्योंकि यहॉ अरब सागर, हिन्द महासागर और बगाल की खाडी एक दूसरे का आलिंगन करते है। तीनो के मिलने से ही समुद्र की लहरो मे तीव्र उत्तेजना प्रकट होती है।

घड़ी साढे सात बजा रही थी। हम पीछे देखते है। रेत पर सजी दुकानो मे गेस-बत्ती जल रही थी। हम चबूतरे की सीढ़ियॉ चढ ऊपर आते है और रेत पर पैर गडाते लौट लेते है। शख की दुकानो से आवाजे आती रहती है सामान खरीदने के लिए।

गैस-बत्तियो मे रग-बिरगी रेत अधिक चमकीली दिखती हे। इसके विषय मे एक किदवंती है। एक बार हिमालय के राजा की बेटी पार्वती ने शिव की वेदी पर खडे होकर विवाहोत्सव के बचे हुए भोजन मे लात मार दी थी। पार्वती ने क्रोधवश ऐसा किया और सारा भोजन समुद्र के पानी में जा गिरा। गिरते ही वह सतरंगी रेत में बदल गया। स्पष्ट है कि यह कथा मात्र किवदती है, किन्तु यहॉ की रग-बिरंगी रेत का रहस्य समझना कठिन अवश्य है।

एक परिवार कोने की दुकान मे मोल-तोल कर रहा था।

''हम भी कुछ देख ले।'' पत्नी इच्छा जाहिर करती है।

''देख लो।''

और एक दुकान, फिर दूसरी और अंत मे तीसरी दुकान से चार छोटे शख, तीन खूबसूरत कौड़ियॉ और एकाध दूसरा सामान खरीद लिया जाता है। हमे आश्रम लोटने की जल्दी है। क्योकि वहॉ कैण्टीन मे नौ बजे तक ही भोजन मिलता है। हम इस बार पैदल ही चल देते है।

सड़क के दोनों ओर अच्छा प्रकाश। कई अच्छे होटल.. सडक मे पर्याप्त आमद-रफ्त.. और हर दो मिनट में सड़क को रौंदती सरकारी बसें। बसो के मामलो मे जनता सुखी है, क्योंकि यहॉ कुछ टूरिस्ट बसो के अतिरिक्त बसो का निजीकरण नही है। बसो मे अधिक भीड भी नहीं होती क्योकि सेवा पर्याप्त है। दुर्घटनाऍ कम है। यदि दिल्ली की भॉति यहॉ भी नीली-लाल निजी बसे चलने लगे तो न केवल दुर्घटनाऍ वढ जाऍगी बल्कि असुविधा भी।

जब हम आश्रम की कैण्टीन मे पहुॅचे सवा आठ वजा था।

समुद्र की छाती से उठता लाल गोला

कन्याकुमारी का सूर्योदय देखना किसी स्वप्नलोक विचरण करने जैसा होता है। सुना और पढ़ा था इस विषय में, लेकिन प्रत्यक्ष देखने का अवसर अब मिलने वाला था।

रात भोजन के पश्चात सीधे बिस्तर पर जाना तय किया था। थकान तो थी ही, सुबह सुर्योदय देखने पहुँचने के लिए जल्दी निकलना भी था। लेटते ही नींद आ गई होगी।

सुबह साढ़े तीन बजे नींद खुल गई। पुनः सोने का औचित्य न था। चार बजे तक स्नान कर मैं बाहर खुले मे आ गया था। रात बारिश हुई थी। धरती गीली थी। आसमान में अभी भी बादल मौजूद थे। हवा मे शीतलता थी जो कि अच्छी लग रही थी। कमरे से बाहर खुला मैदान था, जिसमें आम, नीम आदि के पेड लगे थे। मै दो अप्रैल की उस सुबह का आनन्द लेता टहलने लगा। पन्द्रह मिनट के बाद एक बच्ची जिसकी आयु आठ वर्ष के आसपास थी वहाँ आ गई और मेरे साथ टहलने लगी। प्यारी-सी सुन्दर थी वह और फ्रॉक में सजी बार-बार मुझे आकर्षित कर रही थी। कुछ देर तक हम मौन टहलते रहे, लेकिन अन्ततः में अपने को रोक नही सका। पूछ लिया, "कहाँ से आई हो?"

"रुड़की से।"

"और वह बतलाने लगी कि वह तीसरी में पढती है कि उसकी एक बड़ी बहन भी है पापा के पास समय कम है और मम्मी की तबियत ठीक नहीं है

"अकल बहुत अच्छा, मजा आ गया।" कुछ रुकती है वह नन्ही बालिका फिर, उलटकर मुझसे प्रश्न करती है, "अंकल आप कहाँ से आए है?"

"दिल्ली से।"

"एक बार मैं भी दिल्ली गई थी। अच्छा नही लगा। वहॉ बहुत पौल्यूशन है।"

कितनी समझदार है बच्ची। मै सोचने लगा था तभी उसके मम्मी-पापा सीढ़ियो से उतरते दिखे।

"अच्छा अंकल चलते हैं...वॉय।"

और वह पन्द्रह मिनट की मेरी नन्ही मित्र अपनी मॉ के साथ बाते करती रिशेप्शन की ओर बढ गई। उसकी बहन और पिता पीछे सामान उठाए निकले। मेने उन्हें पहचान लिया था। रात कैण्टीन मे ये लोग मेरे पीछे की सीट पर बेठे थे और भोजन के बाद मुँह मीठा करने के उद्देश्य से वहॉ टुकड़ो मे सजी बर्फी ले आए थे और उसे टॉफी की भॉति खा रहे थे।

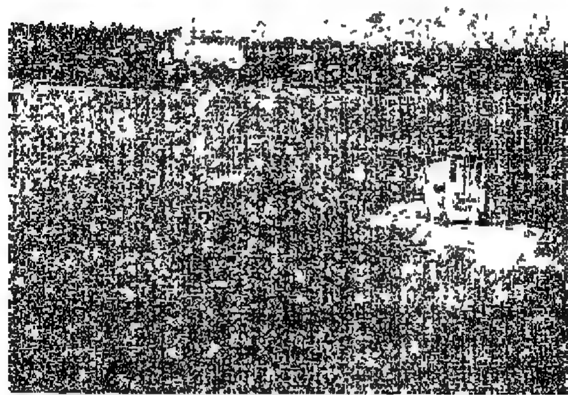
सुबह इतनी सुहावनी थी कि मन खुली सडक पर टहलने के लिए मचल रहा था। पौने पॉच बज चुके थे और कमरे में बच्चों के तैयार होने की आवाज आ रही थी। ठीक पॉच वजे हम 'बीच' के लिए निकले। रिशेप्सन की ओर देखा। रुडकी वाले परिवार को निपटाकर क्लर्क ऊँघने लगा था। 'बीच रोड' पहुँचे तो देखकर आश्चर्य हुआ, बड़ी मात्रा में लोग समुद्र की ओर जा रहे थे। मुझे लगा हम लेट हो गए हैं। सडक रोशनी में नहाई पड़ी थी।

"शायद ही कभी इसे विश्राम मिलता हो। रात भर लोग और वाहन—इसे अवश्य रौंदते रहते होंगे। एक होटल के सामने से गुजरता मै सोच रहा था। होटल ऊपर से नीचे तक रोशनी से जगमगा रहा था और बाहर खासी भीड एकत्रित थी।

हमारे पहुँचने तक खासी भीड़ हो चुकी थी, तट पर। किसी प्रकार दीवार पर जगह मिली। हम पूर्व की ओर नजरे गड़ाए समुद्र की छाती से जन्म लेते बाल रवि की प्रतीक्षा करने लगे। बादलो ने पूर्व की ओर पतला जाल बिछा रखा था। मानो वह बाल रवि को कैद करने के लिए सन्नद्ध हो।

सूर्योदय का समय सवा छः बजे के लगभग था और बादलों में छाई लाली इस बात को प्रमाणित कर रही थी कि सूर्य समुद्र फोड़ निकल चुका है, लेकिन वह नजर नहीं आ रहा था। हजारों ऑखे उसे बसा लेने के लिए विकल हो रही थी। कैमरे सन्नद्ध और वह छुपा हुआ था। हम कुछ ऊँचाई पर पहुँचे, क्योंकि लग रहा था कि कहीं वह विवेकानद रॉक के पीछे न उगे. लेकिन ऐसा नही हुआ।

है, जिसे कैद करना क्या सम्भव है? बादलों को उसके लिए स्थान
ओर बड़ी थाली की भाँति लाल गोला समुन्द्र से लगभग सात-आठ
झाँकता दिखाई दिया। सैकड़ों मुर्झाये चेहरे खिल उठे। कैमरों
ओर उस लाल गोले को कैद करना आरम्भ कर दिया। समुन्द्र से
गया और दस मिनट बाद ही उसकी किरणें चारों ओर फैल गईं।



कन्याकुमारी

ह गई कि हम लाल गोले को समुन्द्र की छाती पर रखा ओर
ऊपर उठता नहीं देख सके। आनन्द के उस चरम क्षण को हम
लेकिन जितना भी जिया वह कम न था।
शेर बहादुर सिंह की कविता याद आती है—
त नम था—बहुत नीला, शंख जैसे,
र का नभ,
ख से लीपा हुआ चौका,
भी नीला पड़ा है)
हुत काली सिल
ा से लाल केसर से,
जैसे धुल गई हो;
ट पर या लाल खड़िया चाक

मल दी हो किसी ने।
नील जल में या
किसी की गौर, झिलमिल देह जैसे,
हिल रही हो।
और. .
जादू टूटता है इस उषा का अव;
सूर्योदय हो रहा है।

स्नान करने के लिए दूसरी ओर घाट था। उस सुबह घाट मे पहुँचने वाले हम पहले सैलानी थे। कपडे उतार मै वच्चो के साथ पानी मे उतरा तो पीछे से कई लोग आते गए। बाद में भीड बढ गई थी। समुद्र मे स्नान का यह पहला अनुभव रोमाचकारी था। तीन समुन्दरों के मिलने से यहाँ लहरों की उत्तुगता तिरुअनंतपुरम के कोवलम 'बीच' से कम न थी। पछाडें खाती लहरे दौडती आती और सिर के ऊपर से गुजर लौटती तो स्नान करने वालों को दूर-दूर तक साथ घसीट ले जातीं। लेकिन कई साहसी ऐसे भी थे जो छाती तक की गहराई तक जाकर स्नान कर रहे थे। कपड़े बदलने के लिए तट के पास एक कोठरी है, विशेषकर महिलाओं के लिए, लेकिन उसमें ताला बन्द था। कपड़े बदल हम ऊपर चढे तो नन्हे बालक चाबियों के छल्लों के गुच्छे बेचते दिख गए। मन टीस कर रह गया।

कैमरा लटकाए दो युवक फोटो खीचने और एक घण्टे में दे देने के वायदे के साथ वहाँ घूम रहे थे।

रेत पर दुकाने सजने लगी थी। अभी सुवह के सात ही बजे थे। वहुत समय काटना था अभी। विवेकानद रॉक के खुलने मे आधा घण्टा शेष था। कन्याकुमारी मन्दिर तट पर ही है। हम उधर बढ गए।

कन्याकुमारी—कुछ मिथक

प्राचीन काल में कन्याकुमारी एक छोटा-सा गाँव था, जो तिरुविताकूर राज्य के दक्षिण भाग मे अवस्थित था। केरल की धरती से सम्बद्ध परशुराम की कथा के आधार पर जो चन्द्राकार धरती परशुराम के फेंके परशु के कारण वरुण देव (समुद्र) ने छोडी थी उसका एक सिरा कन्याकुमारी था। तमिल के कुछ प्राचीन ग्रन्थो ओर शिलालेखो से ज्ञात होता है कि कन्याकुमारी प्राचीन पाड्य राज्य का भाग था और देवी कुमारी पांड्य राजाओ की कुल देवी के रूप मे अधिष्ठित थी। अनेक पाश्चात्य इतिहासकारो और टोलमी जैसे यायावरो ने इसे तमिल प्रान्त का पुण्य तीर्थ स्वीकार किया है। भूगर्भ वेत्ताओं ने शोध के आधार पर पाया है कि वर्तमान कन्याकुमारी के दक्षिण में लमूरिया खंड नामक क्षेत्र था, जहाँ से 'परली' नामक नदी प्रवाहित होती थी। तमिल के प्राचीन ग्रन्थो मे भी इसका उल्लेख प्राप्त होता है।

कन्याकुमारी के विषय मे एक प्रचलित मिथक यह है कि सहस्रों वर्ष पहले इस देश में भरत नामक राजर्षि का शासन था। उनके एक पुत्री और आठ पुत्र थे। पुत्री का नाम कुमारी था। वृद्धावस्था मे राजा भरत ने अपनी सम्पत्ति समान रूप से अपनी सन्तानो मे बांट दी। कन्याकुमारी का वर्तमान क्षेत्र उनकी पुत्री कुमारी के हिस्से मे आया। तभी से इस स्थान का नाम कन्याकुमारी हो गया। पुराणों में कहा गया है कि देवी पराशक्ति ने यहाँ तपस्या की थी। कन्याकुमारी मन्दिर के शिलालेखों से पता चलता है कि पांड्य नरेशों ने मन्दिर का निर्माण करवाकर देवी की प्रतिमा को वहाँ स्थापित किया था।

कन्याकुमारी क विषय म एक अन्य किवदन्ती यहा सुनन का मिलती ह

हुई थी। देवगण परेशान थे। सब एकत्र हो विष्णु के पास गए। विष्णु ने कहा कि वे सब मिलकर देवी पराशक्ति को प्रसन्न करें। बाणासुर का वध केवल वही कर सकती है। देवों ने पराशक्ति को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ प्रारम्भ किया। अन्तत: देवी साक्षात् प्रकट हुई तो देवो ने अपनी समस्या उन्हे सुनाई। देवी ने बाणासुर वध का वचन उन्हे दिया और वहाँ से अन्तर्ध्यान हो गई। देवी कन्याकुमारी पहुँची और एक कन्या का रूप धारण कर घोर तपस्या मे लीन हो गई। बढते समय के साथ उनकी काया भी विकसित होती गई और उनमे यौवनोचित सौन्दर्य प्रस्फुटित होने लगा। देवी के सौन्दर्य के विषय मे सुचिन्द्रम के देवता शिव ने सुना तो उन्होने विवाह के लिए पराशक्ति के पास सदेश भेजा। देवी विवाह के लिए तैयार हो गई। विवाह शुभ दिन अर्ध-रात्रि के समय होने का निश्चय हुआ। यह बात जब नारद को ज्ञात हुई तो वह घबडाए। नारद को ज्ञात था कि यदि पराशक्ति का विवाह शिव के साथ सम्पन्न हो गया तो बाणासुर को मारने की उनकी क्षमता नष्ट हो जाएगी। बाणासुर को ब्रह्मा से यह वरदान प्राप्त था कि वह किसी कन्या के हाथों ही मृत्यु को प्राप्त करेगा।

निश्चित तिथि को शिव अपने दरबारियो के साथ कन्याकुमारी के साथ विवाह करने के लिए निकले। रात का समय, वे जब 'वलुक्कमपारै' नामक स्थान मे पहुँचे नारद ने मुर्गे के रूप में बांग दी। शिव ने सोचा सुबह हो गई। विवाह के शुभ मूहर्त का समय निकल गया। शिव सुचिन्द्रम वापस लौट गए। देवी पराशक्ति ने शिव की प्रतीक्षा व्याकुलता से की—लेकिन शुभ मूहर्त निकल जाने के बाद भी देर तक जब शिव न पहुँचे न उनका समाचार, तो देवी ने आजीवन कुआरी रहने का निर्णय किया और विवाह के लिए एकत्रित की गई वस्तुओ को लात मार कर बिखेर दिया। जो रग-विरगी बालू मे परिवर्तित हो गई। कहते हे तट में पाई जाने वाली बालुका उसी का परिणाम है।

देवी पराशक्ति पुन: घोर तपस्या मे डूब गई। उनकी सुन्दरता का समाचार बाणासुर तक पहुँचा। वह उन्हें देखने दौडा आया। देखते ही वह मुगध हो उठा। उसने उनसे पत्नी बनने का प्रस्ताव किया। देवी क्रोधित हो उठी। उन्हे क्रोधित देख बाणासुर भी क्रोधित हो गया। उसने तलवार निकाल ली, लेकिन देवी ने तपोबल से चक्रायुद्ध द्वारा उसका वध कर दिया।

कहते हैं इसी घटना की स्मृति मे प्रतिवर्ष भाद्र माह मे नवरात्रि का उत्सव मनाया जाता है। उत्सव के अन्तिम दिन मन्दिर से देवी की मूर्ति का जलूस निकाला जाता हे जिसे 'महादानपुर' नामक स्थान तक ले जाते है। जहाँ पराशक्ति और बाणासुर के युद्ध का दृश्य मन्दिर के पुजारियों द्वारा प्रस्तुत कर अधर्म पर धर्म

की जीत को दिखाया जाता है।

कन्याकुमारी मन्दिर की प्राचीनता महाभारत से भी प्रमाणित होती है। उसमें उल्लेख है कि बलराम और अर्जुन ने दर्शनार्थ मन्दिर तक की यात्रा की थी।

सीढ़ियाँ चढकर हम मन्दिर में प्रवेश के लिए पूर्वी द्वार पर पहुँचे। लेकिन यह विशाल द्वार बन्द था। बताया गया कि यह द्वार प्राय बन्द ही रहता है। पूछने पर हमें उत्तरी द्वार की ओर जाने का संकेत मिलता है। मन्दिर मे जाने वालों की भीड़ अपेक्षाकृत कम है। शायद सुबह का समय है, इसलिए। जूते-चप्पलें जमा करने के लिए हम रुकते है कि एक युवक घेर लेता है। वह साड़िया, घडियाँ, केमरा आदि खरीदने—देखने के लिए चिपकता है। प्राण बचाना कठिन है। खीझ होती है। लेकिन वह हटता नहीं। अन्ततः कहना पड़ता है कि मन्दिर से लौटने के बाद बात करेंगे। वह दूसरे ग्राहक को देखने लगता है।

मन्दिर के प्रवेश द्वार पर हमें रोक दिया जाता है। मुझे और कुणाल को शर्ट-बनियान उतार कर हाथ मे पकड़ना होता है। गुलाबजल की शीशी खरीदनी होती है और पक्तिबद्ध हो बंधे वासों के साथ आगे बढना होता है। हमें प्रवेश पूर्वी द्वार से ही करना होता है।

कुमारी देवी की मूर्ति गर्भ-गृह मे पूर्व दिशा की ओर प्रतिष्ठित है। मूर्ति के दाहिने हाथ में एक माला है और बायां हाथ नीचे को झुका जाघ से सटा हुआ है। नाक में जो फूल है वह अनूठे हीरे का है, जिसकी ज्योति आकर्षित करती है। गर्भ-गृह के चारो ओर विशेष देखने योग्य कुछ नही है। दीवारों पर खुदे भित्ति चित्र है लेकिन नीम अंधेरे में स्पष्ट देखना कठिन है। गर्भ-गृह मे मूर्ति देखकर, परिक्रमा कर हम वापस लौटते है। यहाँ हमें एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जो दक्षिण भारतीय मुद्रा में दाएँ हाथ से बाया कान और बाएँ हाथ से दाहिना कान पकड उठ-बैठ पूजा कर रहा हो। अधिकांश बाहरी पर्यटक है, जो केवल देवी-दर्शन करना चाहते है। हमें बताया गया कि भाद्र की नवरात्रि उत्सव के अतिरिक्त यहाँ वैशाख माह में भी नवरात्रि का उत्सव होता है। जिसमें नवे दिन रथोत्सव चलता है और दसवे दिन जलोत्सव सम्पन्न होता है।

हम बाहर निकलते हैं और देखकर आश्चर्यचकित रह जाते हैं कि मन्दिर ऊँची दीवारो के परकोटों से या यों कहे कि चारदीवारी से घिरा हुआ है। यह चारदीवारी कम-से-कम पच्चीस फीट ऊँची है।

मन्दिर के उत्तरी द्वार के मार्ग पर आगे बढते हैं। दोनो ओर बाजार है ..सजी दुकानें...लटकती मालाएँ...शंख की चूड़ियाँ व अन्य फैन्सी सामान...और दुकान के बाहर तैनात एक युवक... ग्राहको को साग्रह अन्दर बुलाता...कुछ ले लेने का

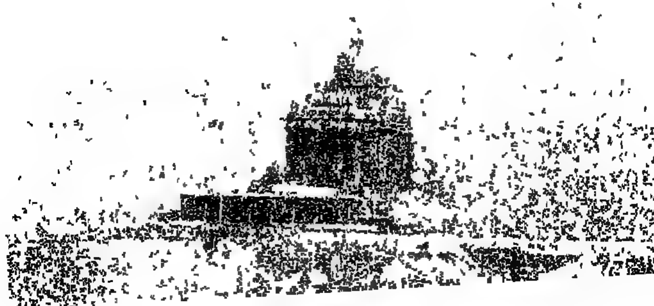
लालच देता। हल्की-सी चढ़ाई है। वहीं से पूर्व की ओर रास्ता.. यही रास्ता विवेकानद मेमोरियल के लिए जाने वाले गेट के लिए जाता है। आठ बज चुके है। टिकट ले हम लाइन में लग जाते हैं। सकरा.. केवल एक व्यक्ति ही खिसक सकता है। कोई पंक्ति तोड़ नहीं सकता। पहली खेप लौटने की प्रतीक्षा .पन्द्रह मिनट की प्रतीक्षा के बाद देखता हूँ कि लोग लौट रहे है। लाइन खिसकने लगती है धीरे-धीरे फिर तेज और आगे खुला मैदान...लोगों का धैर्य चुक जाता है। कुछ दौड़कर आगे हो लेते है। हमारे पीछे वाले परिवार की महिला अपने सात-आठ वर्ष के बच्चे के साथ दौड रही है। भारी शरीर. .उसे जल्दी है...बोट मे न चढ पाए.. वह पति को भी चीखकर दौडने का आग्रह करती है। पति तेज चल रहा है और हमे क्रॉस कर जाता है। उसे देख दूसरे भी दौड लेते है। परिणामतः हम पिछड जाते हैं। बोट भर चुकी है। मेरे बाद कुछ सवारियाँ और। हमे बैठने की जगह नहीं मिलती। बच्चे किसी प्रकार टेक लगा लेते है। हम खडे ही समुद्र का आनद लेते हैं। 'बोट' हॉर्न देती है और खुल जाती है। समुद्र की छाती को चीरती बोट विवेकानंद मेमोरियल की ओर बढ़ती है।

कन्याकुमारी अन्तरीप के पूर्व मे दो विशाल चट्टानें है। इनमे से एक चट्टान का क्षेत्रफल लगभग तीन एकड है। यह समुद्र तल से पचपन फीट ऊँची है। दूसरी चट्टान उसी के पास अवस्थित है और अपेक्षाकृत छोटी है। बडी चट्टान के विषय मे कहा जाता है कि कभी यह समुद्र तट पर थी और कुमारी का मन्दिर इसी पर बना हुआ था, बाद मे पाड्य नरेशो ने मूर्ति को वहाँ से हटाकर वर्तमान मन्दिर मे प्रतिस्थापित किया था।

इस बडी चट्टान पर जो मण्डप है उसमे एक पदचिह्न बना हुआ है इसलिए इसे 'पादमण्डप' कहते है। कहते है कि पराशक्ति कुमारी देवी ने अपने बाएँ पैर पर खडे होकर तपस्या की थी। वह पादचिह्न उनके उसी बाएँ पैर का निशान है। दिसम्बर 1892 मे स्वामी विवेकानद हिमालय से यात्रा करते कन्याकुमारी पहुँचे थे। उन्हे जब यह ज्ञात हुआ कि समुद्र के मध्य खड़ी चट्टान मे कुमारी देवी का पाद्चिह्न है तो वे अपनी उत्सुकता को रोक नहीं सके। समुद्र तैरकर वे उस विशाल चट्टान पर पहुँचे। पाद्चिह्न के दर्शन किए और वही बैठ गए। समुद्र के मध्य उस स्थान ने उन्हे मुग्ध कर दिया। सम्भवतः यह 26 दिसम्बर 1892 का दिन था। वहाँ का शान्त वातावरण सम्मोहक था। स्वामीजी साधनालीन हो गए और तीन दिन तक साधनारत रहे। तीसरे दिन उन्हे अलौकिक ज्ञान की प्राप्ति हुई। उसके बाद ही वे अमेरिका चले गए थे, जहाँ अपने भाषणो से उन्होंने पश्चिम को हतप्रभ कर दिया था।

62 में विवेकानद जी का जन्म-शताब्दी वर्ष मनाने का निर्णय लिया गय
ार पर यह भी निर्णय हुआ कि जिस चट्टान पर बैठकर स्वामी जी
ी थी वहाँ एक स्मारक बनवाया जाए। इसके लिए सम्पूर्ण देश से ब
लोगों ने दान दिया। इस स्मारक को बनवाने का भार श्री एकनाथ रा
माला। 85 लाख रुपए के खर्च से विवेकानंद मण्डप का निर्माण हुअ
ीट लम्बा और 38 फीट चौड़ा है। यह स्मारक भवन केवल लाल पत्
है और इतना भव्य है कि दूर से ही आकर्षित करता है। इसका मु
ता और एलोरा की गुफाओं का स्मरण दिलाता है। इसकी मेहराब
ी और बेलूर के रामकृष्ण मन्दिर की भाँति दिखाई देती है। इसी मेह
रिव्राजक की मुद्रा में स्वामी जी की सवा आठ फीट ऊँची कांस्य प्रति
है। प्रतिमा के चारों ओर लकड़ी का अवरोध है और एक व्यक्ति दिन
त रहता है, जिससे कोई प्रतिमा को क्षति न पहुँचा सके। इस भव्य स्मा
ाटन 2 सितम्बर 1970 को भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति वराह व्य
किया था।

ोट' किनारे लगते ही यात्री चट्टान पर कूदने लगते हैं। सीढ़ियाँ चढ़
टिकट खिड़की पर जाना पड़ता है। यहाँ भी टिकट है। ऊपर मण
से पूर्व जूते नीचे छोड़ने होते हैं। विवेकानद स्मारक में चौकीदार तै
सीढ़ियों के पास दो काले पत्थर के हाथी खड़े हैं चौकीदार हमें उ





विवेकानंद रॉक

जाने से रोकता है और पाद्चिह्न मण्डप की ओर जाने का इशारा कर
अभिप्राय है कि पहले वहाँ होकर विवेकानद स्मारक मे जाने क
'पादचिह्न' को सुन्दर ढग से सजाया गया है। ऐसा लग रहा
मणियाँ उँगलियो के नाखूनो और एडी में चिपका दी गई है। बीच
ग से भरा दिखता है। दूर से अद्भुत चमक दिखाई देती है। म
त्थर और ग्रेनाइट से बना हुआ है। एक पुजारी तैनात है। बाहर
अद्भुत शान्ति है वहाँ।

विवेकानद आश्रम ठीक उसके सामने पूरब में है। द्वार आमने
पर चोकीदार हमे नही रोकता। बाहर चौरस जगह मे भीड है। वि
छोटे बच्चे धमा-चौकड़ी कर रहे हैं। कुछ युवतियाँ और युवक किन
चलती लहरें देख रहे है। सीढ़ियाँ चढ ऊपर पहुँच हम समुद्र क
। अच्छा लगता है। लगता है वही टिक जाएँ। मन उस क्षण क
गे जाता है जब स्वामी जी वहाँ आए होगे और उनका मन भी व
के लिए मचल उठा होगा।

विवेकानद की कास्य प्रतिमा के दर्शन कर हम उस हॉल मे प
ध्यानागार कहा जाता है। प्रतिदिन सुबह-शाम वहाँ संध्या होती है
क्कर लगा हम मुख्य द्वार की ओर से सीढियाँ उतरना चाहते हैं, लेकि

मनाकर देता है। वह इशारा कर हमें उत्तर की ओर से जाने का संकेत करता है। देखता हूँ उधर से मार्ग है। मन मे उत्फुल्लता, किन्तु वहाँ अधिक न ठहर पाने का बोझ लिए हम एक बार फिर 'बोट' मे चढने के लिए लाइन मे लग जाते हैं।

'बोट' मे एक कर्मचारी से पूछता हूँ, पश्चिम मे कुछ दूरी पर पडी अपेक्षाकृत छोटी चट्टानों के विषय मे, "इसमें भी कुछ बना रहे हैं. ?" वहाँ कुछ निमाण कार्य चल रहा था और सीढियाँ काटी जा चुकी थी।

"जी हॉ, .।" वह तमिल मिश्रित अंग्रेजी में क्या कहता है, समझ नही पाता। केवल इतना ही पल्ले पडता है कि कुछ बन रहा है।

बाजार के मध्य से निकलते एक-दो वस्तुएँ खरीदते हम लौट लेते है ।

"अब तो उदयगिरि किला और सुचीन्द्रम का कार्यक्रम बनना कठिन है।"

"साढ़े नौ बज रहे है...अब कैसे जा सकते हैं...अभी तो यहीं बहुत कुछ देखना है।" पत्नी ने स्मरण दिलाया कि अभी गॉधी मण्डप, म्यूजियम और चर्च आदि देखने शेष है।

वह चौकीदार

गॉधी मण्डप सामने ही था। पीले रग की सुन-सान बिल्डिंग। हम उधर बढे। धूप कुछ तीक्ष्ण हो उठी थी और तट पर इक्का-दुक्का लोग दिख रहे थे। एक जोड़ा गॉधी मण्डप से निकलता और दूसरा अपेक्षाकृत अधिक युवा अन्दर दाखिल होता दिखा। सडक से सीढियॉ उतरकर जाना होता है।

मण्डप के गेट पर चौकीदार दिखा। अन्दर घुसते ही उसने मण्डप के विषय मे बताना शुरू कर दिया।

"यही वह स्थान है जहॉ समुद्र मे विसर्जित करने से पहले गॉधी जी की अस्थियो का कलश रखा गया था। आप ऊपर देख रहे हैं न.. एक छेद दिखाई दे रहा है। इसे वैज्ञानिकों ने बहुत जतन-सोच-विचार और खोज के बाद बनाया है...ठीक दो अक्टूबर को सूर्य की किरणे ठीक दोपहर इसी छेद से नीचे धरती को छूती है।" चौकीदार कुछ रुकता है।

"आप ताज्जुब करेंगे. .बाकी पूरे साल सूर्य की किरणें यहॉ नही पड़ती। है न आश्चर्य.. ठीक दो अक्टूबर के दिन।" टूटी-फूटी हिन्दी, आधे-अधूरे अंग्रेजी के कुछ शब्दो के बल पर वह उस विशेष चिह्न की कहानी बताता है और मण्डप के विषय में सूचना देता है।

"मुझे इसकी रखवाली के लिए रखा गया है।"

हम कुछ देर के लिए उस स्थान के पास बैठ जाते है जो घेर लिया गया है। उसी घिरे स्थान के अन्दर गॉधी जी का अस्थिकलश रखा गया था और उसी के ठीक ऊपर वह छेद था।

"इस मण्डप को इस तरह बनाया गया है कि इसमें मन्दिर, मस्जिद और गिरजा का प्रभाव दिखाई देता है।" वह छत की ओर संकेत कर तीनो की

प्रतीकात्मकता का परिचय देता है।

"गाँधी जी के लिए सभी जाति-धर्म समान थे...इसलिए।"

हम उत्तर नही देते। वहाँ की शीतलता अच्छी लग रही है। वह हमे बैठा देख हट जाता है। कोई पर्यटक प्रवेश करता है तो वह उसे भी वही सब बताने के लिए आगे बढ जाता है। हम उठ कर मण्डप में घूमते है। जगह-जगह गाँधी जी के उपदेश और उनके चित्र लगे हैं।

"ऊपर जाने का रास्ता...।" मैं चौकीदार से पूछता हूँ।

"सीढ़ियाँ बगल से है।"

हम ऊपर जाते हैं। खुला आसमान है। कुछ देर छत पर रुकते है। हमसे पहले आया जोड़ा बीच के भाग मे खडे बाते कर रहा है। छत से समुद्र का नजारा लेता हूँ। धूप मे तेजी बढ गई। दो युवक धडधड़ाते आते है और लकडी की सीढी से छत पर बनी गुमटी पर चढ जाते हैं। ऊपर से समुद्र देखना चाहते है। लेकिन जल्दी ही उतर कर नीचे चले जाते हैं। हमें 'गाँधी मंडप' का रख-रखाव उपेक्षापूर्ण लगता है। नीचे उतरते ही चौकीदार टकरा जाता है।

"देख लिया साब आपने।" वह हमारे चेहरे की ओर देखने लगता है। कोई उत्तर न पा बोलता है, "गाँधी जी 15 जनवरी 1937 को कन्याकुमारी आए थे और उन्हे इस स्थान ने मोह लिया था। उन्होंने इसकी अत्यन्त प्रशंसा की थी .इसलिए उनकी अस्थियाँ यहाँ विसर्जित की गई थी। उनकी 'चिता-भस्म' 12 फरवरी, 1948 को सागर को भेंट की गई थी।" वह एक-एक सूचना पूरी मुस्तैदी से दे रहा था। आश्चर्य यह कि इतना सब वह दूसरे पर्यटकों को नही बता रहा था।

चौकीदार सामान्य कद काठी का, सांवले रंग का व्यक्ति था। उसके कपडे खाकी थे और ऐसा लग रहा था कि महीने मे एकाध बार ही वह उन्हें धोता होगा। चेहरे पर विनम्रता, चाटुकारिता और दयनीयता के मिश्रित भाव थे। जब वह बोल रहा था तब ऐसा लग रहा था कि यह पर्यटको के लिए नियुक्त वहाँ का मुफ्त गाइड है, लेकिन ऐसा नही था।

"इस गाँधी मण्डप की नींव आचार्य कृपलानी ने 20 जनवरी 1954 को डाली थी। इसे बनवाने मे लगभग तीन लाख रुपए खर्च आया था। अक्टूबर 1956 मे यह मण्डप बनकर तैयार हो गया था। इसमे उडीसा शिल्प स्पष्ट है।"

"धन्यवाद . आपने बहुत महत्वपूर्ण सूचनाएँ दीं।" मै घडी देखता हूँ। साढे दस बज चुके हैं। चलने की हड़बडाहट।

"हीं ही साब कुछ मुझ गरीब का भी ख्याल आप जानते है कि हमे

जो तनख्वाह मिलती है .उतने मे . ।'' वह दयनीय हो जाता है।

मैं उसका चेहरा देखने लगता हूँ। उसे दस के दो नोट पकडाकर बाहर निकल आता हूँ। मेरे पास जूतेवाले को देने के लिए दो रुपए फुटकर नही है और इसके कारण जल्दी आश्रम पहुँचने का विचार अधर मे लटक जाता है। पचास का नोट तोड़वाने मे मोची को समय लगता है और तब तक हम धूप सेवन करते दुकान के बाहर खडे रहते हैं।

संग्रहालय की ओर

शाम चार बजे हम आश्रम से पुनः निकलते है। बस मिल जाती है। शेष बची जगहे देखना चाहते है। बाजार के पास ही राजकीय सग्रहालय है। सूनसान एकाकी जगह। जानकारी न हो तो पता भी न चले कि वहॉ कोई संग्रहालय भी होगा।

'बीच' पर पर्यटको का पहुँचना प्रारम्भ हो चुका है। संख्या कम नही है। लेकिन एक भी पर्यटक संग्रहालय की ओर नही मुडता। वास्तव में सग्रहालय का बोर्ड भी ऐसा कि सहजता से दृष्टि न जाए। देखने मे वह एक जीर्ण मकान का आभास देता था।

एक रुपए की टिकट। अन्दर केवल एक पखा...शायद आजादी के पहले का .इतना मन्द चलता हुआ कि उसके नीचे खड़ा होने पर भी हवा का पता नहीं। अधिकाश भग्न मूर्तियॉ। सूर्य, वरुण, नटराज, शक्ति, मीनाक्षी और विशेष यह कि बुद्ध की अनेक मूर्तियॉ। इसके अतिरिक्त अनेक शिलालेख। सहस्त्रो वर्ष पुराने प्रस्तार खण्ड और ऐतिहासिक महत्व की अनेक वस्तुएँ। कुछ ब्रिटिशकाल के अस्त्र-शस्त्र। एक कमरे मे हम प्रवेश करते है। न रोशनी ..न पंखा। पखे है ..लेकिन बन्द। कोई देखभाल करने वाला नहीं। गेट पर बैठा एक व्यक्ति ही एकमात्र कर्मचारी समझ मे आता है। साढ़े पॉच बजे म्यूजियम बन्द हो जाएगा।

पॉच बज रहे हैं। देख लेने की जल्दी। लेकिन क्या-क्या देखे। एक विशाल बुद्ध प्रतिमा। सामने सजी एक पालकी और एक रथ। किसी राजा का रहा होगा...वहॉ कोई सकेत—कोई उल्लेख नहीं है। रथ के अन्दर की खपच्चियाँ झांक रही हैं।

तो क्या यह भी खपच्चियों को जोड़कर बनाया जाता था . फिर मजबूती कैसे आती होगी युद्ध कैसे किए जाते होगे। मै सोचने लगता हूँ, लेकिन यह

तो बुद्ध का रथ लगता नहीं। इसमे केवल दो के ही बैठने की जगह है।

समय समाप्त होने की कगार पर है। गर्मी मे टिकना कठिन है। हम बाहर निकलते है। कुछ क्षण मुख्य द्वार के पास रखी बुद्ध और नटराज की मूर्तियॉ देखते है। और तभी एक व्यक्ति को टिकट ले अन्दर जाते देखता हूॅ। "एक अकेला -दस मिनट मे देख लेगा जो भी देख पाएगा।" सोचता मैं बाहर निकल आता हूॅ। बाहर बहुत इफरात जगह-खुले मैदान की भाँति—जहॉ अनेक खण्डित मूर्तियाँ पडी है।

"यदि विशेष ध्यान दिया जाए तो यह सग्रहालय कितना महत्वपूर्ण हो सकता है। सरकार को चाहिए कि इसे कन्याकुमारी के इतिहास से जोडे...न कि जो जहॉ मिला, अच्छा कहीं और, टूटा-फूटा यहॉ लाकर ठूॅस दिया...कितना उपेक्षित है यह स्थान उसी प्रकार स्टैण्ड की ओर जाने वाली सडक के किनारे बनी जगहे। सरकार यदि किंचित् ध्यान दे तो इस स्थान को और अधिक सुन्दर बनाया जा सकता है।

"बाजार देख लेते हैं। 'बीच' में अभी से जाकर क्या करेंगे?" पत्नी के प्रस्ताव को टाल नहीं पाता। और आखिर एक साड़ियो की दुकान में उसका दिल आ जाता है। दुकानदार साड़ियो को कन्याकुमारी का स्थानीय माल बताकर खरीदने के लिए तैयार कर लेता है और हमारे थैले में कन्याकुमारी की बनी तथाकथित दो साडियॉ आ जाती है। दुकान से निकलकर हम कन्याकुमारी गॉव मे घुस जाते हैं। वहॉ गॉव के उत्तर मे काशी-विश्वनाथ का मन्दिर देखते हैं। मन्दिर के पास, चक्रतीर्थ (तालाब) और श्मशान है। यही पर विवेकानंद ग्रन्थालय है जिसमे विवेकानन्द से सम्बन्धित सामग्री उपलब्ध है। गॉव के पूरब मे प्राचीन किले का भग्नावशेष है। यह गोलाकार (वट्टकोट्टै) किला रहा होगा। गॉव के मध्य एक क्रीम कलर की बिल्डिंग दूर से ही दिखाई देती है। यह यहाँ का गिरजाघर है। साफ-सुथरा, जिसमे शीशे का पर्याप्त काम किया गया है। वास्तव में बीच के लिए जाते हुए पर्यटकों को सहज रूप से अपनी ओर यदि कोई भवन आकर्षित करता है तो वह यह गिरजाघर ही है। कहते है इसे बनवाने में सेण्ट फ्रासिस जेवियर का विशेष योगदान था।

नीचे खिसकता आग का गोला

लगभग छः बजे हम 'बीच' में पहुँच गए। बादल अभी भी थे, किन्तु बहुत हल्के। पश्चिम की ओर वे कुछ अधिक थे और आशका थी कि हमें शायद ही सूर्यास्त दिखाई दे। पश्चिम मे आसमान में जैसे ही लाली फैलने लगी और सूर्य दिखाई नहीं दे रहा था, हमारी धारणा पुष्ट होती नजर आ रही थी। लेकिन हमारी धारणा को धता वताते सूर्य बादलों को चकमा देकर बाहर निकल आया...एक बड़ा-सा लाल वृत्त... और वह तीव्र गति से नीचे की ओर ऐसे धंसने लगा मानो आग का लाल गोला किसी अंधे कुएँ मे धीरे-धीरे खिसक रहा हो। हमारी नजरे ठहर गई। कोई पराशक्ति होती तो उसे वही रोक लेता। लेकिन कहाँ.. देखते-ही-देखते गोला नीचे समा गया। समुद्र मे तो डूबा होगा सूर्य, लेकिन हमें लगता रहा कि कन्याकुमारी के पश्चिमी भूखण्ड के पीछे समा गया है ऐसे जैसे आसमान से गिरी कोई वस्तु तेजी से आँखों से ओझल हो जाए।

कुछ देर बाद हम 'बीच' की यादो को समेटे लौट पडे थे। हम लौट तो लिए लेकिन मन मे एक अभिलाषा शेष थी...स्थाणु तीर्थ देखने की। बताया गया था कि 'बीच' से पश्चिम की ओर तट के किनारे एक किलोमीटर जाने पर एक चट्टान से निकलता एक ऐसा स्रोत मिलता है जिसका पानी अत्यन्त स्वच्छ है। इसे सुचीन्द्रम मन्दिर का अभिषेक-जल भी कहा जाता है। वह स्रोत कैसा है...देखने का अवसर नहीं निकाल पाए हम। लेकिन मन में सन्तोष था कि हम उस कन्याकुमारी घाट को देख सके जिसके विषय में तमिल के सुप्रसिद्ध मणि

उसे पुण्य लाभ होता है। महाभारत के 'वनपर्व' मे भी कहा गया है कि कन्याकुमारी के कन्या घाट में स्नान करने से मनुष्य को मोक्ष प्राप्त होता है। समुद्रतट पर सावित्री, गायत्री, सरस्वती, मातृ-पितृ आदि घाट मन्दिर के आस-पास ही है ओर धर्मालुओ के लिए इन सभी का महत्व है।

वृद्धावस्था बहाना नहीं

"वृद्धावस्था मे लोग बोझ हो जाते है अपने परिवार-परिजनों पर...।" सेन बाबू को देखकर इस कथन की विश्वसनीयता को धक्का लगता है। गेट से घुसते ही बाएँ हाथ पड़ी छोटी-सी मेज के साथ कुर्सी पर आसीन झुर्रियोंदार साँवले चेहरे वाले नाटे सज्जन हँसते हुए अपना नाम बताते है एस.के.सेन। मैं चौंकता हूँ, नाम बंगाली—काम दक्षिण भारत के उस अन्तिम छोर पर, जिसके आगे धरती नही दिखती, जहाँ तमिल और अंग्रेजी ही सम्पर्क भाषा है हमारी, वहाँ एक व्यक्ति विशुद्ध हिन्दी मे मुझसे मुखातिब है। धाराप्रवाह। "कहाँ से आए हैं?" पहला प्रश्न यही था उनका। और बातों का बढ़ता कारवाँ। विवेकानन्द आश्रम की आखिरी रात का भोजन कैण्टीन मे करके हम बाहर निकले तो देखा, अभी साढे आठ ही बजे थे। 'टहलना चाहिए...।" मैंने प्रस्ताव किया और टहलते "विवेकानद चित्र प्रदर्शनी" की ओर बढ़े। यह आश्रम की मुख्य सडक पर रिशेप्सन से कुछ दूरी पर एक भवय भवन में है।

"एक चीज देखनी रह गई।" मैंने बच्चों से कहा, "यह प्रदर्शनी।"

"अन्दर चले।"

और उस भवन में प्रविष्ट होते ही हम सेन साहब से टकराते है। वे ही उस भवन के प्रभारी हैं।

'अरे साहब! मैं भी कानपुर का रहने वाला हूँ। डी.ए.वी कॉलेज का छात्र रहा हूँ।" मेरे यह बताने पर कि मै मूलतः कानपुर का हूँ, सेन साहब बताते हे। "दरअसल रहनेवाला तो मै चौबीस परगना का हूँ। लेकिन मेरे पिता नौकरी के सिलसिले मे कानपुर आ गए थे। वहीं बचपन बीता। हाई-स्कूल किया तो दूसरा विश्वयुद्ध छिड गया था- मुझे नौकरी मिल गई वहाँ ऑर्डनेंस फैक्ट्री में। इच्छा

नही थी, लेकिन एक अंग्रेज अफसर डेविड ने मुझे बुलाकर कहा, ''यग मैन, नौकरी करते पढाई कर सकेगा.. वार हल्का होने पर।'' सेन साहव हॅसते है अपने अतीत की खाइयो मे उतरते हुए। उनके दॉत बदस्तूर मुझे सलामत दिखते है। हो सकता है वे नकली हो।

''डेविड की बात सच निकली। बाद में मुझे नौकरी करते हुए पढने का मोका मिला। डी.ए.वी मे ही इण्टर, फिर बी ए किया और वही से रिटायर हुआ।'' सेन साहव खड़े हुए तो कलफ लगी खादी की धोती पर कुर्ता-सदरी मे वे काफी स्वस्थ दिखे।

''आपका परिवार?''

''शादी नही की .।'' सेन साहव पुन· मुस्कराए, अफसोस का भाव नही। चेहरे पर सकल्प की आभा।

''तो आपने यहॉ स्वेच्छा से काम करना...।'' मैंने रिशेप्शन के पास एक बोर्ड मे पढा था, ''हमे अवकाश प्राप्त, किन्तु थके हुए नही (Retired not tired) लोगो की सेवा की आवश्यकता है।''

''नही बाबा, मै तो इस आश्रम के फाउण्डर मेम्वर्स मे से एक हूँ।'' सेन साहब एक बार पुनः अतीत मे डूबते है, ''देश की आजादी के वाद से ही मे आर.एस.एस. मै सक्रिय हो गया था। वाद मे जव इस आश्रम की योजना बनी तो गोलवलकर जी ने मुझे बुलाया और कहा इसके लिए चदा उगाहना है। मै दूसरे लोगो के साथ शहर-शहर भटका...चन्दा इकट्ठा हुआ और आश्रम बना। बाद मे अवकाशग्रहण कर मैं यहॉ आ गया ..तब से.. कुछ तो करना ही था. .।'' कुछ रुकते है सेन साहब, फिर पूछते है, ''कैसा लगा आपको आश्रम?''

''बेहद शान्त–स्वच्छ ..मन करता है कि यहीं रुक जाऊॅ।''

सेन साहब मुस्कराते हैं, ''परिवार की जिम्मेदारी से मुक्त हो जाएँ तब आ जाइएगा।''

मैं मुस्कराने लगता हॅू। वे चार टिकटें काटने लगते है।

''चार रुपए दीजिए।''

टिकटे मुझे थमा वे कहते है, ''जाइए देखिए प्रदर्शनी।'' और वे दो महिलाओ के साथ बाते करने लगते है। उन्हे कुछ समझाने लगते हैं।

वहॉ विवेकानद के बचपन से लेकर उनके शिकागो से भारत लौटने तक के चित्रो को प्रदर्शित किया गया है। लौटते हुए जब मै सेन साहब को प्रणाम करता हॅू तो वे पूछ लेते हैं, ''कल फिर मिलेगे?''

कल सुबह मैं मदुरै चला जाऊँगा

"ठीक है—ठीक है ..बच्चों के स्कूल भी तो खुलने वाले होंगे।"

"स्कूल तो कल खुल गए...लेकिन ..।"

"फिर पढाई . ।" सेन साहब चिन्तित-सा दिखते हैं।

"दस दिन की पढाई को वे लोग बाद में पूरा कर लेगे।"

"ठीक है...घूमे ..इन्हे घुमाएँ. .और फिर कभी इधर आएँ तो मिले. .।"

मै बाहर निकलते सोचता हूँ कि अस्सी की आयु को पार कर चुके वृद्ध-युवा, वे मेरी अगली यात्रा के समय होंगे भी। पता नही कितने वर्षो बाद आना हो . ।"

दोबारा यात्रा पर सेन साहब भले ही न मिलें लेकिन तीन अप्रैल को आश्रम से प्रस्थान करते समय जब मै रिसेप्शन में हिसाब कर रहा था, वे दूर आते दिखे। मन था कि उन्हें एक बार पुन: प्रणाम कर लूँ, लेकिन हिसाब हो चुका था और आश्रम की बस बस-स्टैण्ड जाने के लिए आ लगी थी। लोग बैठ चुके थे। मुझे भी बैठना पडा। सेन साहब को...उनकी कर्मठता को दूर से ही मैंने प्रणाम किया। आश्रम की शान्ति चारों ओर मडरा रही थी। मैं उसे मुट्ठी मे कैद कर लेना चाहता था, किन्तु आश्रम के गेट तक आकर वह कब और कैसे फिसल गई, मुझे पता नही चला। सन्तोष मन में रहा कि वह अभी भी सेन साहब के इर्द-गिर्द होगी और वहाँ जाने वाले हर पर्यटक को मोहिनी की भाँति आकर्षित करती रहेगी। काश! उसका कुछ अंश ही मैं मुट्ठी मे कैद कर सका होता।

बस में सात घण्टे

बस स्टैण्ड मे गिने-चुने लोग। बसें आकर रुकतीं और कुछ मिनट बाद ही चल देतीं खाली ही। स्टैण्ड के दक्षिणी कोने की चाय की दुकान मे खाकी वर्दी पहने तीन लोग चाय पी रहे हैं। पास ही दक्षिणात्य दो-तीन परिवार बैठे किसी बस की प्रतीक्षा में है। मैं बुकिग काउण्डर के पास सामान रख देता हूँ। चाय की दुकान के बगल में पानी का नल है। मयूर जग खाली है...भरना चाहता हूं किन्तु पत्नी केवल दो बोतले पर्याप्त मानती है। उसका तर्क है कि बादलों के कारण मौसम मे ठण्डापन है। और मेरा तर्क है कि छः घण्टे की यात्रा कम नही होती और अन्ततः मैं पानी भर लाता हूं तो, एक नेपाली युवती को अपने असबाब के पास खड़ी देखता हूँ। युवती सुन्दर है। उसके पास एक बैग है बडा-सा जिसे वह कुछ देर तक कंधे मे लटकाए खडी रहती है, फिर रख देती है। मैं किसी से पूछना चाहता हूँ चेन्नई की बस के विषय मे...बस रूट नम्बर दो सौ बयासी। सामने ही एक कमरे मे राज्य परिवहन निगम का एक कर्मचारी बैठा दिखता है। लपक कर अंग्रेजी मे बस का प्लेटफार्म पूछता हूँ। वह सकेत से पूछताछ काउण्डर की ओर ठेल देता है। मै बुकिग आफिस के बगल से दो-तीन लोगों से पूछता और बाद मे अपने को लानत भेजता पूछताछ काउण्टर पर पहुँचता हूं।

"बस आने वाली है।" क्लर्क बताता है!

"किस नम्बर प्लेटफार्म से जाएगी।"

"चार-पॉच से। जो भी खाली हुआ।" बाबू अंग्रेजी मे उत्तर देता है।

मुह लटकाए मैं घडी देखता हू दस बजने को हैं सवा दस की बस है

और तभी कुर्ता-पायजामा पहने दो युवक टकराते हैं। रोककर हिन्दी मे पूछते है. "आप कहॉ से आए है?"

"दिल्ली से।"

"देखा, मैंने कहा था न भाई साहब उत्तर भारतीय लग रहे हैं...।" अपने साथी की ओर उन्मुख हो अपनी विजय पर मुस्कराता हुआ वह कहता है।

"दिल्ली में कहॉ रहते है?" वह पुनः मुझसे पूछता है, जो मुझे अटपटा लगता है। मै उल्टा प्रश्न कर देता हूॅ, "आप कहॉ के रहने वाले है?"

"मेरठ.. ।" मध्यम कद का. .लगभग तीस-बत्तीस वर्ष का वह युवक कहता हे, "दरअसल मै कुरुक्षेत्र से विधायक हूॅ. निर्दलीय जीता था...वैसे हूॅ भाजपा से लेकिन पार्टी ने टिकट नहीं दिया तो निर्दलीय लड़ गया और जीत गया।" कितने वोटों से जीता था वह बताता है, किन्तु मैं इस पर ध्यान नहीं दे पाता।

विधायक महोदय काफी मस्ती मे दिख रहे थे और त्रिवेन्द्रम में सम्पन्न हुए भाजपा के राष्ट्रीय सम्मेलन, उसी के बहाने दक्षिण की यात्रा और कहॉ जाना है, आदि पर विस्तार से बता रहे थे। वह इतने से ही शान्त नहीं हुआ, वर्तमान राजनीति और भाजपा की भूमिका पर व्याख्यान देने लगा। कुछ देर सुनने के बाद मैंने विषयान्तर के लिए पूछा, "आप किस बस की प्रतीक्षा मे है?"

"रामेश्वरम की ..साढे सात बजे की होती है...सुनते है किसी कारण से रामेश्वरम का रास्ता बन्द है...बसे जा नही रही।"

"मुझे तो नहीं लगता।"

"कोई यात्री मदुरै से लौटा था.. वह बता रहा था, उसे जाना था रामेश्वरम, लेकिन नहीं जा पाया...।"

"इन्क्वारी वालों ने क्या बताया?"

"वह तो कह रहा है कि आएगी अवश्य।" विधायक का बॉडीगार्ड, जो घूमने निकल गया था, विधायक से एक अनजान को बात करते देख कंधे पर रायफल ठीक करता कुछ दूर पर आ खडा हुआ। यदि वह न होता तो मैं यह कभी स्वीकार नही करता कि पिद्दी-सा दिखने वाला, अनुभवहीन-सा वह युवक कही का विधायक भी हो सकता है। पता नही विधायक होने के लिए उसने अभी तक कितनी आवश्यक राजनैतिक शर्ते पूरी की होंगी।

नही की होगी तो जल्दी ही विधायिका के उस गुरुकुल मे अपने वरिष्ठो की छाया में रहकर सीख जाएगा और अपराध की सीढ़ियॉ चढता वह बड़ा नेता बन जाएगा। और अभी भी क्या पता कितनी सीढियॉ चढ़ चुका हो। आखिर विधायकी कोई खेल नहीं। आजकल ग्राम-पचायत की सदस्यता तो मिलती नही

सहजता से फिर ..।

"आप किस वस की प्रतीक्षा में है?" विधायक पूछता है।

"चेन्नई जाने वाली रूट नम्बर दो सौ बयासी की। वह भी लेट हो रही है।"

"चेन्नई की यात्रा सोलह घण्टे की है यहाँ से। वही बस जाएगी? हो सकता है शाम तक जाए।" विधायक मेरे मन मे भय और संशय पैदा कर देता है।

मैं पुनः पूछताछ की खिडकी की ओर लपकता हूँ।

"सर, क्या रूट नम्बर 282 वस जो चेन्नै से आएगी वही जाएगी।"

"नहीं, सेपरेट बस अभी डिपो से आएगी...अभी आती होगी।" क्लर्क मुझे आश्वस्त करता है।

क्लर्क को धन्यवाद दे विधायक से पुनः टकराहट को टाल मैं लौट आता हूँ। हर आने वाली बस को फटी नजरो से हम देखते है, लेकिन उनमें एक भी वह बस नहीं होती, जिसे मदुरै होकर चेन्नई जाना है।

और लगभग ग्यारह बजे बस आकर प्लेटफार्म नम्बर चार मे रुकती है। हडबडाकर हम दौड़ते है। कुछ ही यात्री है. वह नेपाली लडकी, एक बगाली परिवार और पाँच-छ. दाक्षिणात्य। फिर भी अधैर्य। हमारी अटैचियाँ लेकिर वस के पहियो के बीच बने खाली स्थान मे ठूँस दिया जाता है। कुली सामान की पर्ची थमा देते है। केवल मेरी अटैचियाँ है यह सोच कुछ चिन्ता होती है और तभी मै देखता हूँ कि कुली बगाली का बड़ा बैग भी उससे झपट लेता है और उसमें ठूँसकर बन्द कर देता है। मै सोचता हूँ, "सामान की चिन्ता मुझे ही नही इस बगाली को भी करनी होगी।"

और हम निश्चिन्त हो जाते हैं।

आसमान मे भूरे बादलो का समूह तैर रहा है और सूर्य उनके साथ लुकाछिपी कर रहा है।

एक बार फिर हरीतिमा के बीच हम दौड़ रहे थे। वही परिचित वृक्ष, कस्बे, कस्बो में सड़क के दोनो ओर दुकाने और दुकानों मे भीड। एक कस्बाई शहर मे वस रुकती है। बड़ा बस स्टैण्ड है—यात्री उतरने लगते हैं। मैं भी उतर लेता हूँ। दोपहर के साढे बारह बजे है। सोचता हूँ शायद ड्राइवर, कण्डक्टर लच करेंगे। देर होगी..। मैं दूर जाना चाहता हूँ। लेकिन ऐसा न हुआ तो? सोचता हूँ। पास ही फलो की दुकाने हैं। कुछ फल खरीदता हूँ। बस ओट में है। लौटता हूँ तो देखता हूँ ड्राईवर सीट पर जमा है। तेज कदम बढ़ाता हूँ।

बस फिर दौडने लगती है। बादल हट गए है और धूप निखर आई है

बगाली युवक पत्नी को संतरे छीलकर दे रहा है। उसकी माँ और बहन पीछे की सीट पर है। हम पुनः हरीतिमा की गोद मे अपने को पाते है।

कुछ देर के लिए हल्की-सी झपकी। तीन बजे होगे। बाहर देखता हूँ, दूर तक फैला मैदान...अनुपजाऊ खेत और कही एकाध फैक्ट्रीनुमा जगहे। दूर तक कोई बस्ती नही। आश्चर्य होता है। लेकिन सोचता हूँ क्या यह आवश्यक है कि सारी धरती एक जैसी हो ही। और मैं तमिलनाडु के विषय मे सोचने लगता हूँ, जिसे कभी दक्षिणापथ कहा जाता था। इस दक्षिणापथ के निवासी द्रविड़ के मूल निवासी हैं। लेकिन कुछ इतिहासकारों के अनुसार द्रविड़ मध्य एशिया से बिलोचिस्तान होते हुए दक्षिण भारत पहुँचे थे और वही स्थायी रूप से बस गए थे। लेकिन कुछ दूसरे विद्वानो के अनुसार द्रविड भूमध्य सागर के तटीय प्रदेशो अथवा असीरिया या एशिया माइनर के निवासी थे और आर्यो के भारत आगमन से पूर्व ही यहाँ आ बसे थे। और यह भी सम्भव है कि द्रविड बिलोचिस्तान के रास्ते पश्चिमोत्तर भारत मे बस गए हो, और उन्हीं से मोहनजोदडो और हड़प्पा सभ्यता विकसित हुई हो।

लेकिन प्रोफेसर बीन कुछ और ही बात कहते है। उनके अनुसार भूमध्य रेखा के दक्षिण मे एक बड़ा देश था जो पूर्व मे जावा से लेकर पश्चिम मे अफ्रीका तक फैला हुआ था इसका नाम था 'लेमोरियो'। यहीं द्रविड़ों का मूल निवास स्थान था। किन्तु प्रलय के कारण इसका अधिकाश भाग जलमग्न हो गया था। तमिल भाषा के पॉच महाकाव्यों में प्रथम महाकाव्य 'शिलप्पधिकारम' तथा 'मदुरास्थल-पुराण' मे दक्षिण मदुरा के जलमग्न होने का विवरण प्राप्त होता है। अतः यह भी सम्भव है कि मदुरा एक विशाल भू-भाग तक फैला रहा हो और प्रलयकाल मे उसका दक्षिणी भाग जलमग्न हो गया हो। प्रोफेसर बीन ने 'लेमोरियो' और मदुरा मे कोई सम्बन्ध था या नही यह स्पष्ट नही किया। लेकिन जिन विद्वानो का विचार हे कि द्रविड़ मध्य एशिया से यहाँ आए उनका अनुमान है कि वे ईशापूर्व तीन हजार से लेकर दो हजार के मध्य आए होगे। महाभारत मे आंध्र, पाड्य, चोल ओर चेर राजाओ का उल्लेख इस तर्क को खारिज कर देता है। इसका तात्पर्य यह कि द्रविड यदि बाहर से आए भी तो वे महाभारत काल से सैंकडो वर्ष पूर्व यहाँ आ चुके थे और महाभारत काल में इन्होने अनेक शक्तिशाली राज्यों की स्थापना कर ली थी।

लेकिन जब हम तमिल भाषाओं और बिलोचिस्तान की भाषा ब्राहुई की तुलना करते हैं तब दोनों में पर्याप्त साम्य पाते हैं। आकृति, रूप, रग और शारीरिक गठन मे भी द्रविड़ और उनमे समानता पाई जाती है। तमिलनाडु और बगदाद

की खुदाइयो से प्राप्त वस्तुओं से इन दो भिन्न जातियों के मृतक सस्कारों की समानता उद्घाटित होती है। लेकिन तमिल मे जितने भी प्राचीन ग्रन्थ है। उनमे तमिलनाडु को तमिलवासियों की भूमि कहा गया है। प्रागैतिहासिक काल मे तमिलो ने एक उच्चकोटि की सभ्यता का निर्माण किया था और उनका घनिष्ट सम्बन्ध पश्चिमी एशिया की जातियो और सभ्यताओं के साथ था। यही नही हजारो साल पूर्व की तमिल सभ्यता के मिले चिह्न यह सिद्ध करते हैं कि तमिल कही बाहर नही तमिलनाडु या दक्षिणापथ के मूल निवासी थे। वास्तव मे प्राचीनकाल मे समस्त दक्षिणापथ द्रविड़ देश कहलाता था। बाद मे आध्र प्रदेश व कर्नाटक उससे अलग हो गए। परिणाम यह हुआ कि उस प्रदेश की सीमा वर्तमान तमिलनाडु और केरल प्रान्त तक सीमित होकर रह गई। कुछ शताब्दियो बाद केरल का जब स्वतन्त्र अस्तित्व कायम हुआ, तब केवल तमिलनाडु ही द्रविड़ देश कहलाया। और उस देश की भाषा 'तमिल' कहलायी। आज तमिल, आन्ध्र, कर्नाटक और केरल के निवासी द्रविड़ जाति के वशज माने जाते है। और उनकी भाषाएँ तमिल, तेलुगु, कन्नड और मलयालम के अतिरिक्त तुलु, कूर्गी, कोडगु, गोंड, टोडा, कोहा आदि बोलियाँ और भाषाएँ भी है।

बस ने एक झटकेदार मोड लिया। मेरी विचार तन्द्रा टूटी। पता चला बस दूसरी सडक पर मुडी है। वहाँ खुदाई का काम किया गया था। लगभग एक किलोमीटर की यात्रा तय करने के बाद दाहिनी ओर बड़े आमों का बाग था। ठण्डी का झोका शरीर को थपथपा गया। मैं फिर तमिलनाडु मे खोने लगा। ऑखे बन्द कर लीं और सिर खिडकी के साथ टिका लिया।

द्रविड़ शब्द न केवल देश और जाति के लिए प्रयुक्त होता था, बल्कि वह भाषा के लिए भी प्रयोग मे आता था और उसी से भाषा, जाति और तमिलनाडु के नाम जुड गए। महाभारत के अतिरिक्त वेदों मे भी दक्षिण का उल्लेख हमे प्राप्त होता है। इससे यहाँ की सभ्यता और सस्कृति की प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है। जैसा कि रामायण मे कहा गया है, दक्षिण में एक ऐसी जाति का प्रभाव था, जिसे राक्षस कहा जाता था। लेकिन रावण की मृत्यु के पश्चात् उनकी शक्ति क्षीण हो गई और द्रविड़ो को स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के अवसर प्राप्त हुए। एक अनुमान के अनुसार ये ही पाड्य, चोल और चेर राज्य रहे होंगे। एक लोककथा के अनुसार पांड्य, चोल और चेर सगे भाई थे। उनकी राजधानी ताम्रपर्णी नदी के तट पर कोर्के मे थी। बाद मे तीनों भाइयो ने अपने अलग राज्य स्थापित किए। पाड्य वश ने मदुरा नगर को अपनी राजधानी बनाया, चोल वश ने उरैयूर यानी तिरुच्चिरापल्ली को तथा चेर वश ने केरल मे अपने राज्य

का विस्तार किया। कालान्तर मे इन राज्यो मे राज्य विस्तार की इच्छा प्रबल हुई, जिसके परिणामस्वरूप इनके आपसी सघर्ष भी बढते गए। लेकिन यह बहुत बाद मे हुआ होगा। प्रारम्भ मे तो तीनों राज्यो में मधुर सम्बन्ध रहे होगे क्योंकि उनमे आपसी व्यापार सम्बन्ध काफी था। इससे कला-कौशल, सभ्यता और सस्कृति को विकास मिला। महत्वपूर्ण साहित्य रचा गया। हालॉकि साहित्य के अनेक ग्रन्थ आज उपलब्ध नही है। या तो वे जलमग्न हो गए या काल के कराल गाल मे समा गए। जो भी मुख्य ग्रन्थ प्राप्त होते है उनमें 'तोलकप्पियम', 'तिरुक्कुरल', 'अहम' और 'पुरम', 'शिलप्पधिकारम' आदि उल्लेखनीय है। तोलकप्पियम इस भाषा का प्रथम व्याकरण ग्रथ है। इसके रचयिता 'तोलकप्पियम' महर्षि अगस्त्य के शिष्य थे। अगस्त्य ऋषि को तमिल लिपि का आविष्कारक माना जाता है। सस्कृति और साहित्य के विकास में महर्षि अगस्त्य का विशेष योगदान माना जाता हे। तोलकप्पियम ईसापूर्व की रचना है। इस ग्रंथ के तृतीय खण्ड में तत्कालीन सामाजिक रीति-नीति, प्रेम, विवाह, युद्ध आदि का वर्णन है। उससे स्पष्ट होता हे कि तब तक दक्षिण मे वर्णाश्रम व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। 'अहम' ओर 'परम' बाद की रचनाएँ हैं, जिनमे विभिन्न कवियो की कविताऍं सकलित है। इनमें, प्राकृतिक वर्णन, विवाह, राजाओं की वीरता और उनके भोग-विलास आदि के वर्णन है। 'तिरुक्कुरल' को तमिल भाषा का वेद माना जाता है। इसके रचनाकार थे सन्त 'तिरुवल्लुवर'। इस ग्रन्थ के तीन खण्ड है—धर्म, अर्थ और काम। बाद के ग्रन्थो में पच्च महाकाव्यो के नाम आते हैं। 'शिलप्पधिकारम' का नाम इसमे सर्वप्रथम है। दूसरे स्थान में है 'मणिमेखलै', जिसमें बौद्ध के धर्मतत्वों को प्रतिपादित किया गया है। इन दोनो महाकाव्यो में चोल राजाओ की राजधानी कावेरि-पूपट्टिणम अथवा पुहार नगर के वैभव से उस समय के वाणिज्य तथा जनता के सर्वतोन्मुखी विकास का परिचय दिया गया है। ये काव्य ग्रन्थ प्रथम या द्वितीय शताब्दियो मे लिखे गए होगे, ऐसा विद्वानों का अनुमान है। दूसरे महाकाव्य ग्रन्थ है 'जीवन चिन्तामणि', 'कुडलाकेशि' और 'वलयापति'। इनमें जैन दर्शन और धर्म को प्रतिपादित किया गया है।

अचानक बस रास्ता बदलती है और दाहिनी ओर एक डिपो के गेट पर जा लगती है। बस मे अनेक भाषाओं मे फुसफसाहट। दो बंगाली परिवार हे। मेरे सामने बैठा बंगाली युवक, पत्नी से कुछ बुदबदा रहा था। आगे एक वृद्ध बंगाली पत्नी से कुछ कह रहे थे। बिल्कुल आगे दो सज्जन अंग्रेजी में बस मे आई खराबी पर चर्चा कर रहे थे। और तमिलभाषी आपस में क्या कह रहे थे, समझना कठिन था।

कण्डक्टर डिपो के अन्दर चला गया था और वर्कशॉप से एक मैकेनिक के साथ लौट रहा था। मैकेनिक और ड्राइवर इजिन मे आई खराबी समझने का प्रयत्न कर रहे थे। लगभग पन्द्रह मिनट तक झुके रहने के बाद मैकेनिक ने बस को वर्कशॉप के अन्दर ले जाने के लिए सलाह दी।

"सभी यात्री नीचे उतर जाएँ।" कण्डक्टर, जो मध्यम कद, साँवले रग और सामान्य स्वास्थ्य का व्यक्ति था, कह रहा था। उसके छोटी मूँछे थीं और दूर से वह मुझे 1969-70 मे कानपुर होस्टल मे मेरे साथ रहने वाले करेलाइट युवक मथई सी.जे. की याद दिला रहा था। अन्तर केवल यह था कि मथई का रग कुछ अधिक ही गहरा था।

सवारियाँ उतरने की इच्छुक नहीं थी। कोई भी शायद अपना सामान छोड कर जाना नहीं चाहता। कण्डक्टर, ड्राइवर यात्रियों के इस भाव को समझ जाते हे। कुछ क्षण प्रतीक्षा कर दोनों यात्रियों को समझाते हुए कहते हैं, "आप फिक्र न करे। सामान बस में ही छोड़ दें। जस्ट फार हॉफ ऐन ऑवर...आधा घण्टा से अधिक समय न लगेगा।"

एक-एक कर यात्री उतरने लगते हैं। लेकिन चेहरे से ऐसा लग रहा था कि वे बेमन ही उतर रहे थे।

यात्री इधर-उधर बिखर जाते हैं।

आसमान में बादल घने हो चुके हैं। तेज बारिश होने के आसार है और बस के डिपो के अन्दर जाने के कुछ देर बाद ही बूँदे टपकने लगती हैं। हम गेट के पास बने शेड के नीचे शरण लेते हैं। अचानक देखते है कि वहाँ दुर्गा की मूर्ति स्थापित है। लेकिन बारिश ने लोगों के मन से देवी-देवता के प्रति श्रद्धाभाव तिरोहित कर दिया था। बूँदे पाँच मिनट से अधिक नहीं गिरती। थमते ही हम पास की चाय की दुकान मे जा पहुँचते हैं। चाय नहीं, कॉफी मिलती है।

लौटते हैं तो कंडक्टर गेट के पास खड़ा मिलता है। वृद्ध बंगाली भी खडे है और बार-बार घड़ी देख रहे हैं। मैं कडक्टर से पूछता हूँ, "कितना समय लगेगा मदुरै पहुँचने मे"

"डेढ घण्टा।"

वृद्ध बगली निकट आते है। मुझसे पूछते है, "क्या बोलता है?"

"बोलता है कि मदुरै पहुँचने में अभी डेढ घण्टा लगेगा।"

"ओह...गडबड़ हो जाएगी।" वे पत्नी की ओर मुड़कर बुदबुदाते है। कडक्टर डिपो के अन्दर चला गया है। मैं घड़ी देखता हूँ। पाँच बज रहे हैं।

"आपको किधर जाना है?" बंगाली स्टाइल में वृद्ध पूछते है।

"मदुरै और आपको?"

"मुझे तो मद्रास जाना है।"

"इसी बस से।"

"नहीं. रात आठ बजे की ट्रेन है। लेट हो जाएगी तो वडा मुश्किल हो जाएगी। गाडी छूट गई तो...।" कुछ रुककर वे पुन बोले, "कोई दूसरी बस ले ले ।"

"हाँ ऐसा कर सकते है।" मैं सामने देखता हूँ। सडक पर एक बस रुकती हे ओर नेपाली युवती कण्डक्टर से कुछ पूछती है और फिर वस मे चढ जाती हे। बस को उसीने हाथ के इशारे से रुकवाया था।

"आप भी इस बस से जा सकते थे।" मै नेपाली युवती की ओर इधारा करता कहता हूँ।

"कैसे जा सकता था? सामान तो बस मे है।"

तभी बगाली युवक उधर आ जाता है। मेरा उससे परिचय हो चुका था। मे वृद्ध को उसका परिचय देता हूँ। दोनो बगाली में एक दूसरे का विस्तृत परिचय पाने लगते हैं। मै खिसक कर वच्चों के पास आ जाता हूँ।

वे प्रेत छायाएँ

बस लगभग छः बजे मदुरै पहुँची। भीड़ भरा बस अड्डा। उतरते ही ठहरने की चिन्ता ने आ घेरा। यहाँ के विषय मे किसी से कोई जानकारी नहीं मिली थी। वृद्ध बगाली स्टेशन जाने के लिए परेशान थे। उनकी अंग्रेजी कोई कुली समझ नही रहा था। मैने किसी प्रकार हिन्दी-अग्रेजी के माध्यम से स्टेशन कितनी दूर है की जानकारी प्राप्त की। बंगाली युवक उन्हें रिक्शा में बैठा आया। जब तक वह लौटा हरी शर्ट पहने दो व्यक्तियों ने मुझ घेर लिया था। वे होटल या लॉज दिला देने का प्रस्ताव करने लगे। पहले तो मैंने समझा कि वे बस अड्डे के कुली है लेकिन बाद मे उन्हे एजेन्ट समझ स्वय देख लेने की बात कह मना कर दिया। उनमें से एक फिर भी पीछे लगा रहा। उसने दो होटलो के कार्ड दिखाकर बताया कि वे बस-अड्डे से निकट ही हैं और महगे नहीं हैं। तब तक बगाली युवक, जिसका नाम अनिल कुण्डू था, आ गया। मैने उसे प्रस्ताव किया कि क्योंकि न हम अपने परिवार वहीं बैठाकर कोई होटल या लॉज देख आएँ।

"तीन साल पहले मैं अकेले यहाँ आया था तब मीनाक्षी मन्दिर के पास एक लॉज मे ठहरा था।"

"कैसा था?"

"अच्छा था और मंहगा भी नही था।"

मेरी मध्यमवर्गीय मानसिकता सक्रिय हो उठी। तुरन्त बोला, "फिर क्यो न उसी को देख ले।"

"लेकिन इस समय याद नही आ रहा कि वह किधर था।"

हरी शर्ट वाला एक एजेन्ट हमे दुविधा मे देख निकट आ गया। उसने फिर अपना प्रस्ताव रखा। इस बार हमने उससे होटलों लॉजो के नाम जान लिए और

स्वय वहॉ जाकर देखने का निर्णय किया। कुन्डू को परिवार वही बेठे रहने का मेरा सुझाव समझ आ गया था। हम चलने को ही थे कि लाल शर्ट पहने वीस-बाइस की आयु के दो युवक आ गए। उन्हें देख हरी शर्ट वाला हट गया। लाल शर्ट वालो मे एक, जिसका रग गहरा सावला और चेहरा पतला था, बोला "घबराने का नहीं सर .हम दिलवाएगा आपको सस्ता और अच्छा लॉज।"

"नही, हम स्वय देख लेंगे।"

"आप मुझ पर यकीन करें सर। हम आपको मनमाफिक एकमोडेशन दिलवा देगा।"

"आप तशरीफ ले जाऍ...मुझे मेरे हाल पर छोड दे।"

लेकिन कैसे छोड देते वे। अनिल कुण्डू कमजोर पड़ रहा था। वे दोनों अब मुझसे बात न करके उससे बातें करने लगे थे और वह भी इतने मन्द स्वर मे कि पास चलता कुछ भी मेरे पल्ले नहीं पड़ा रहा था।

हम धीरे-धीरे खिसकने लगे। और वे दोनो युवक भी हमारे साथ चलते रहे। मैने उन्हे कई वार टोका भी, लेकिन मेरे टोकने से क्या होना। अनिल ने उनके साथ चलने का एक वार भी विरोध नहीं किया। यही नही वह उनके साथ तमिल मे बातें भी करने लगा।

"आपको तमिल आती है?" मैंने कुण्डु से पूछा।

"हॉ ..कुछ-कुछ...मै आजकल एर्नाकुलम मे तैनात हूं।"

अव मुझे पूरा विश्वास हो गया था कि वे युवक कुण्डु का पीछा नही छोडेंगे और साथ चलने का प्रस्ताव मेरा था इसलिए कुण्डु को मैं भी नहीं छोड सकता था।

एक होटल, दूसरा, फिर तीसरा लॉज और अन्त मे पतले चेहरे वाला बोला, "अब आपको 'एक्ससर्विसमैन लॉज' दिखाता हूँ।"

"इसका क्या मतलब?"

"मतलब यह कि आर्मी से रिटायर्ड लोग उसे चला रहे हैं।"

"ओह!"

दोनों हमें एक आफिस मे ले गए, जहॉ एक लम्बा-भरे बदन का आदमी फोन से चिपका था। कुछ देर बाद उसी पतले चेहरे वाले लाल शर्ट पहने युवक ने तमिल मे उससे बातें की। क्या मैं समझ नहीं पाया। शायद कुण्डु ने समझा हो। लेकिन वह एक चुप्पा इन्सान था और कई बार पूछने पर भी उत्तर नही देता था। उसने कुछ नहीं बताया।

पॉच मिनट बाद हम फिर सड़क पर थे

"कहाँ ले जा रहे हो भाई? आधा घण्टा से ऊपर हो चुका है।"

"अभिनव लॉज ओनली फाइव मिनट वॉक।"

हम घिसटते रहे। 'वेस्ट मैसी रोड' पर बाएँ हाथ छोटा-सा बोर्ड दिखा 'लॉज अभिनव'। उसके कमरे पसन्द आए और किराया भी। तय कर उनका कार्ड जेब मे डाल हम लौट पडे। उन दोनो लडको को धन्यवाद दिया। लेकिन धन्यवाद से उनका पेट भरने वाला न था। वे हमे रिक्शा मे छोड आने का प्रस्ताव करने लगे।

"नहीं हम रिक्शे मे नही.. पैदल ही जाएँगे। निकट है. .।"

वे अड गए। रिक्शा ले आए। उसे इन्कार किया तो ऑटो वाले को पकड ले आए।

"वेस्ट मैसी रोड" बस अड्डे से दस मिनट पैदल का रास्ता था। ऑटो मे हम जा सकते थे। लेकिन उतनी दूर के लिए वह पचास रुपए माँग रहा था। हम उत्तेजित-से पैदल ही चल पडे यह सोचकर कि पैदल चलना स्वास्थ्य के लिए लाभप्रद होता है।

लेकिन वे दोनों युवक हमारे पीछे थे। मुझे समझते देर नही लगी कि वे हमसे कुछ अपेक्षा कर रहे है लॉज दिलवाने के लिए।

लॉज के नौकर सामान ले जा चुके थे। मै और पत्नी चलने को ही थे कि वे दोनो लॉज में घुसे। कुण्डु भी सामान उठाए अपने परिवार के साथ चलने को था।

"हमारा पैसा देकर जाएँ।" वे हिन्दी, अंग्रेजी और तमिल के मिले-जुले स्वर मे बोले।

"कैसा पैसा?"

"लॉज दिलवाने का।"

"मैने तो मना किया था।"

"लेकिन लॉज मैंने ही दिलवाया है।"

"मैने मना किया...आप क्यों पीछे आए हमारे।"

कुण्डु बाबू चुप। युवकों का साहस बढ़ा। होटल मैनेजर मुँह के अन्दर मुस्कराता दिखा मुझे। क्रोध से मै पागल होने लगा। किसी प्रकार अपने को सयत कर बोला, "एक भी पैसा नही दूँगा ..आप चले जाइए।" फिर मैनेजर की ओर मुड़कर कहा, "आप इन असामाजिक लोगों को घुसने कैसे देते हैं?"

"हम कर भी क्या सकते है...वे किसी की बात नही मानते। वे किसी से नहीं डरते

मुझे आश्चर्य हुआ। होटल मैनेजर यह बात कह रहा है। यदि वह चाहे ता क्या उन लोगो को रोक नही सकना। लेकिन इसका भी निहित स्वार्थ हे। ये लडके ग्राहक लाते है। जिसके लिए उन्हे होटल से कमीशन मिलता है ओर ग्राहको से जो भी ऐठने को मिल जाये।

"आप हमारा पैसा देकर ही ऊपर जाऍगे।" लाल शर्ट वाले दोनो युवक एक स्वर में बोले।

"आपको लॉज के मैनेजर से लेना है न कि मुझसे। ग्राहक आपने उन्हे दिया है।"

"हमने आपको लॉज दिलवाया। हमे लॉज से कुछ नहीं मिलेगा. .आप देगे।"

"कितना देना है।" मैने सोचा दस रुपए देकर मुक्ति पा लूँ। दिनभर की यात्रा और पिचपिची गर्मी से शरीर बेजार हो रहा था।

"दो सौ रुपए...टू हण्ड्रेड।"

मै आसमान से टपका। लॉज का एक दिन का किराया जितना नही था उससे अधिक एजेण्ट का पैसा।

"आप यहाँ से चले जाएँ. वर्ना मुझे कुछ करना होगा। मै एक पैसा न दूँगा. .आप नहीं मानेगे तो तुम लोगो को सबक सिखाना भी मुझे आता है।" मे चीखा और मैनेजर से अंग्रेजी मे बोला, "आप अपने लॉज में इन गुण्डों को घुसने क्यों देते हैं ..निकालिए इन्हें धक्का देकर।"

लगा मैनेजर उस तमाशे का आनन्द ले रहा है। मेरी बात की कोई प्रतिक्रिया नही हुई उस पर। मैं हतप्रभ था। वे दोनों युवक भेड़ियो की शक्ल अख्तियार करते नजर आ रहे थे मुझे। विवाद कुछ और बढे इससे पहले मैं सीढ़ियो के रास्ते ऊपर जाने लगा। कमरा दूसरी मंजिल पर था।

"आप लॉज से बाहर निकलकर देखे.. यूनियन के दो सौ लोगों को लेकर आ रहा हूँ अभी।" पतले चेहरे वाले ने धमकी दी और जाने के लिए मुड़ गया।

कुण्डु बाबू, जो अब तक तमाशा देख रहे थे, निशब्द लिफ्ट की प्रतीक्षा करने लगे।

नहाकर बैठा ही था कि दरवाजे पर ठक-ठक हुई।

दरवाजा खोला। होटल के दो नौकर थे।

"कब से घण्टी बजा रहा हूँ...पीने के लिए पानी चाहिए था...।"

"अभी भरवा देते हैं साब।" उनमें से साफ सॉवले चेहरे का सामान्य कद काठी वाला लडका बोलकर चुप हो गया। कुछ देर बाद वह बोला "साब नीचे वे दोनो फिर आया है

"किसलिए?"

"कुछ पैसे दे दीजिए साब। गरीब लोग है। आप तो बडा आदमी है उनका तो धन्धा यही है।"

"तो अपने मैनेजर से बोलो उन्हे कमीशन दे। मै किसलिए दूँ पैसे?"

कुण्डु साहब भी निकल आए थे। उसकी पत्नी भी साथ थी। पत्नी मेगी भी आ गई।

होटल के लड़को ने मुझे समझाना चाहा तो मैं अधिक उत्तेजित हो गया। अनुचित का विरोध करने के लिए अन्दर का लेखक जाग गया था।

"कितना रुपया चाहिए। दस तो मैं दे चुका हूँ।" कुण्डु बाबू बोले।

"बगाली बाबू ने दस रुपए कब दे दिए!" मै आश्चर्यचकित था। लेकिन कुछ बोला नही। सोचा कुण्डु बाबू डर गए है।

"आप भी कुछ दे दे और आप भी।"

मैंने जेब में हाथ डाला। जितने रुपए थे, (जानता था कि अधिक न होंगे) निकालकर नौकर को दे दिए। केवल सात रुपए थे।

"यह तो बहुत कम है साब!"

"शुक्र करो कि यह दे रहा हूँ.. वर्ना अभी सौ नम्बर डॉयल कर पुलिस को बुलाकर उन गुण्डो को पुलिस के हवाले करवा सकता हूँ। क्यो तुम लोग इस पवित्र नगर को बदनाम करने पर तुले हो! कुछ रुका मैं, "जाइए इससे अधिक न दूँगा। किस अधिकार से वे रुपए माँग रहे है?"

"आप ही कुछ दे दे।" वे दोनों अब कुण्डु से कह रहे थे। उसने पाँच का नोट निकालकर उनके हवाले कर दिया। उन दोनों कर्मचारियो को वही खडा छोडकर मैं कमरे मे चला गया। वे कब गए, जानना नहीं चाहा।

आठ बजे के लगभग हम घूमने निकले। बाजार मे ही कहीं भोजन करने का विचार था। सोचा था कि अगले दिन अर्थात् चार अप्रैल को कोडाईकनाल निकल जाऊँगा। आते समय बस अड्डे के निकट 'होटल तमिलनाडु' दिखाई दिया था और दिल्ली के तमिलनाडु सूचनाकेन्द्र के अनुसार मदुरै के 'होटल तमिलनाडु' मे 'टूरिज्म' का कार्यालय था।

तमिलनाडु में चेन्नै के पश्चात् मदुरै महत्वपूर्ण शहर है। दो लाख से ऊपर आबादी (वर्ष 1991 की जनगणना के अनुसार 1, 093, 702) वाला यह शहर दक्षिण का प्रमुख व्यवसायिक केन्द्र है, जहाँ धूल भरे फुटपाथ और किसी भी अव्यवस्थित शहर की छाप देखी जा सकती है। कुछ सड़कें ही स्वच्छ और सुन्दर ह लॉज से बाहर निकलते ही अजीब लगा अब तक जिस शान्त

से होकर हम आए थे, यहाँ वह लाखों कोस दूर था। 'मैसी रोड' में चलना कठिन था और बस अड्डे के पास मुख्य मार्ग पर वाहनों की भीड़ दिल्ली से होड़ लेती दिख रही थी। लेकिन वह क्षेत्र रोशनी में नहाया हुआ था।

हमें कहीं मुड़ना नहीं था। 'होटल तमिलनाडु' में जवाब मिला कि वे ऐसा कोई टूर कंडक्टर नहीं करते। एक पुरुष स्वर था।

"लेकिन आपके दिल्ली सूचना केन्द्र ने. .उन्होंने जो ब्रोशर दिया था उसमें भी . ।"

"वह बहुत पहले का होगा। उन लोगों ने जो सूचना दी, वह गलत है। माफ कीजिए. .अब ऐसा कोई टूर हम नहीं कंडक्ट करते।" वही पुरुष स्वर, जो हमसे निजात पाना चाहता था, रिसेप्शन के कप-बर्ड में झुके ही उत्तर दे रहा था। उसका रंग गोरा था और उसने सफेद शर्ट पर टाई कस रखी थी। सिर उसका अर्ध-खल्वाट था।

उस खल्वाट सिर व्यक्ति के उत्तर से मैं हताश-सा हो रहा था। लेकिन 'कोडाईकनाल' जाने के विषय में कुछ सूचना भी लेने का मोह था। हम खड़े रहे कुछ देर, फिर धीमे स्वर में बोला, "कोई और व्यवस्था है यहाँ से...यानी प्राईवेट टुअर्स . ।"

"प्राइवेट वालों के कारण ही तो हमें 'टूर' बन्द करना पड़ा। इन लोगों ने इतनी अव्यवस्था फैलाई कि हम बदनाम होने लगे।" उस खल्वाट सिर के पास ही एक अधेड़ और मोटी-सी महिला बैठी थी। वह बोली, "आपको 'बेटर' सलाह देती हूँ. .आप प्राइवेट वालों के चक्कर में न पड़ें। वे 'चीट' करते हैं। आप यहाँ से तमिलनाडु राज्य परिवहन की बस ले लें। चार घण्टे की यात्रा है कोडाईकनाल की। वहाँ बस अड्डे से टूरिस्ट बस या टैक्सी ले सकते हैं। घूमकर रात लौट भी सकते हैं। लेकिन ध्यान रखें...प्राईवेट वालों के चक्कर में न पड़ें।"

"यहाँ और क्या देखा जा सकता है?" मुझे वह महिला काफी भली लगी। कम-से-कम उस खल्वाट व्यक्ति की अपेक्षा तो भली ही थी।

"यहाँ मीनाक्षी मन्दिर, कूडल अजगर मन्दिर, तिस-मलाई नायक महल, गाँधी म्यूजियम... ।" वह कुछ रुकी, फिर समझाने की दृष्टि से बोली, "मीनाक्षी मन्दिर यहाँ से दो किलोमीटर और उससे एक किलोमीटर में है नायक महल।"

"और अजगर मन्दिर... ।"

"वह थोड़ा दूर है... आप ऑटो ले सकते हैं या यहाँ से चार नम्बर बस जाएगी... । और भी हैं देखने योग्य...यहाँ, चार किलोमीटर पर 'पझामुधीरसोलाई' मन्दिर है... ।"

मैने उसे धन्यवाद दिया और होटल से बाहर आ गया। अभी सीढ़ियॉ उतर ही रहा था कि दो लोगो ने घेर लिया, "सर कोडाईकनाल. एक सो साठ रुपए मे घुमाना, ब्रेकफॉस्ट और लच ..सुवह सात बजे की वस. ।"

"नो थैक्स।"

"आप अभी बुकिग करवा ले...आप जहॉ ठहरे होगे बस आपको वहॉ से पिकअप कर लेगी ..डीलक्स बसे है सर. ।"

हमने उत्तर नही दिया। वे सडक पार करने तक हमारे पीछे चलते रहे छायाओ की भॉति। सडक पार कर कुछ कदम वढे ही थे कि एक व्यक्ति, हॉफ शर्ट के ऊपर लुगी लपेटे पीछे चल पडा, "सर कही ठहरना मॉगता ..अच्छा होटल हे सर कोडाईकनाल, रामेश्वरम . सव अरैन्जमेण्ट है साब...।"

'नो थैक्स।"

"आप चिन्ता नही करने का साव .। बहुत अच्छा अरैन्जमेण्ट है...सुवह ब्रेकफॉस्ट, लंच. .शाम को वापस...।"

"आप कोई उत्तर नही देगे...जिननी वार उत्तर देंगे...इसका हौसला वढता जाएगा। यह पीछा नही छोडेगा।" पत्नी ने सलाह दी।

हम एक ऐसे भोजनालय की तलाश में थे जहॉ चावल-चपाती मिल सके। लेकिन कहीं कुछ दिख नही रहा था।

हम उहापोह मे आगे वढते रहे। और हर दो मिनट बाद कोई-न-कोई टकराता रहा जो या तो कही घुमाने का प्रस्ताव देता, दो चार मिनट हमारे पीछे चलता या होटल तक छोड देने या होटल दिला देने की वात करता। रिक्शेवाले साथ चलते और मोटे किराए से कम करते दो-चार रुपए तक आ जाते। लेकिन हमने तय कर लिया था कि किसी को भी उत्तर नहीं देना। वे वोर होकर चले जाएँगे। ओर होता यही रहा। एक जाता तो दूसरा आ टपकता। सड़क मे कही तीखी रोशनी थी तो कही हल्की और कहीं नीम अधेरा...। खासकर होटल तमिलनाडु से बस अड्डा तक और तब वे हमे अपने पीछे चलती प्रेत छायाओ की भॉति दिख रहे थे। मन मे आशका होती, कही ये हल्के अधेरे का लाभ उठा हम पर झपट न पडे। अजनबी शहर—जब तक हम शोर मचाएँगे और लोग समझेंगे ये कुछ भी कर सकते हैं। उनमें से अधिकाश काले और बेढगे से थे। हालॉकि एक भी ऐसा नहीं मिला, जिससे मै अकेले जूझने का साहस न रखता, लेकिन फिर भी हम अजनबी शहर में थे।

दरअसल ये होटल 'तमिलनाडु' से लौटते समय ही हमारे पीछे न पडे थे। 'अभिनव लॉज' से निकलते ही मिलने शुरू हो गए थे। ऐसा लग रहा था जेसे

अधेरा होने तक वे कही बिलो मे धसे रहे थे और अब शिकार की टोह मे निकल आए थे।

अब हमे चिन्ता थी कि किसी प्रकार किसी रेस्तरा मे पेट मे कुछ डाल लॉज मे पहुँचू और अगले दिन का कार्यक्रम तय करूँ।

बस अड्डे के पास पहुँच हम रास्ता भटक गए। फिर लौटे और सही रास्ते पर पहुँचे। सामने 'होटल अशोक' दिखा। देखा सभ्रान्त लोग भोजन कर रहे है।

वहाँ चावल-सांबर का स्वाद ले हम जब लॉज मे पहुँचे साढे नौ से ऊपर हो चुका था। पडोसी बंगाली साढे सात बजे ही निकल गए थे और लौटे न थे। सोचा, उसे पाँच अप्रैल को दफ्तर पहुँचना है। वह मीनाक्षी मन्दिर गया होगा।

पत्नी ने घोषणा कर दी कि मीनाक्षी मन्दिर और नायक महल देखने के बाद हम रामेश्वरम प्रस्थान कर देंगे। कोडाईकनाल नही जाएँगे।

रातभर मैसी रोड जागती रही। वाहनो का कर्णकर्कश शोर बार-बार जगाता रहा।

आठ बजे हम मीनाक्षी मन्दिर के लिए निकल पडे पैदल ही। पडोसी कुण्डु के कमरे मे ताला बन्द देख अनुमान लगाया कि वह जा चुका है। और नीचे उतरते ही मैनेजर ने बताया, "आपके साथी तो सुबह सात बजे ही 'चेक आउट' कर गए।"

"कहाँ गए?"

"कुछ बताया नहीं।"

"चिन्ता न करो मै भी लौटकर चल दूँगा। इतने खराब शहर मे कौन रह सकता है। जहाँ लोग प्रेतो की भाँति पीछा करते रहते है।" मैने मन-ही-मन सोचा और सडक पर उतर गया।

चौराहे पर मैसी रोड से दाहिने मुडते ही मीनाक्षी मन्दिर दिख रहा था। एक रिक्शावाला पीछे पड गया। दस रुपए माँगने लगा मन्दिर तक के जाने के। मन्दिर सामने दिख रहा है और दस रुपए माँग रहा था। मुझे हँसी आई। इन्कार किया, लेकिन वह लगभग एक फर्लांग से भी अधिक साथ चलता रहा और अन्तत बोला, "सुबो का समय है... आप दो रुपए ही दे दीजिए।"

मुझे इसके मूल मे गरीबी दिखी। चार सवारियो को, वह भी छोटी नही, थोडी दूर ही सही ले जाने की विवशता.. वह भी दो रुपए मे। क्या होते है दो रुपए! लेकिन गरीबी..बेरोजगारी ..।

"लगता है इस शहर मे बेकारी कुछ अधिक ही है।" मै बोला।

"इसीलिए ये लोग पीछे पड जाते हैं. कुछ तो यह भी कि टूरिस्ट है उनसे

कमाई भी अच्छी हो जाएगी...।" पत्नी बोली।

सड़क में भीड़ अधिक नहीं थी। अधिकांश लोग पैदल या रिक्शा में थे। हवा में ताजगी थी, जो कल शाम से पहली बार मिली थी। स्वच्छ और ताजी हवा को, जिसे एक घण्टे बाद ही प्रदूषित हो जाना था, मैं फेफड़ों में भर लेना चाहता था।

मन्दिर का, भव्य आकाश से बातें करता दक्षिणी गोपुरम हमारे सामने था और हम चित्रखचित से निर्निमेष उसे निहार रहे थे।

मधुरापुरी बनी मदुरै

मदुरे के मध्यभाग मे स्थित है मीनाक्षी मन्दिर जिसे दक्षिण भारत का गौरव कहा जाए तो अनुचित न होगा। दक्षिण के शिल्प, चित्र, मूर्ति और वास्तुकला का अद्‌भुत सौन्दर्य इस मन्दिर मे विद्यमान है।

मीनाक्षी मन्दिर के विषय में एक लोककथा प्रचलित है। कहते हैं लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व, जहाँ आज 'लोटस पाण्ड' है, उसके चारो ओर घना जगल हुआ करता था। 'लोटस पाण्ड' के स्थान पर इन्द्रदेव ने शिव के स्वयभूलिगम स्वरूप की घोर तपस्या की। यह स्थान पोला हो गया। बाद में पाण्ड्य नरेश 'कुलशेखर' ने वहाँ पर एक मन्दिर का निर्माण करवाया, जगल को साफ करवाया और मन्दिर के चारो ओर कमल के 'शेप' मे नगर बसाया। जिस दिन नगर का नामकरण किया जाना था, एक समारोह का आयोजन किया गया। इस अवसर पर भगवान शिव वहाँ साक्षात् उपस्थित हुए। वहाँ की जनता और धरती मगल के लिए शिव ने अपनी जटाओं से मधुर (अमृत) वर्षा की। परिणामस्वरूप उस नगर का नाम मधुरापुरी रखा गया, जो कालान्तर में मदुरै हो गया। अतः कहा जा सकता है यह दक्षिण भारत के प्राचीनतम नगरो में से एक है। रामायण और कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे प्राप्त उल्लेखों से इस नगर की प्राचीनता का अनुमान लगाया जा सकता है। 302 ईसवी पूर्व में भारत आए यात्री मेगस्थनीज ने भी इसका उल्लेख किया है। ईसवी सन् 77 में प्लिय (pliay) और 140 ईसवीं सन् मे आए यात्री पोलेमी (polemy) ने मदुरै के विषय में अपने यात्रा संस्मरणों मे स्पष्ट उल्लेख किया है। 293 ईसवीं सन् में मार्को पोलो ने मदुरै की यात्रा की थी और बतूता, जो 1333 ईसवी में भारत आया था, ने भी मदुरै का उल्लेख किया है।



मीनाक्षी मदिर

प्राचीन काल मे मदुरा पाड्य राजाओ की राजधानी रहा
राजनीति का यह प्रमुख केन्द्र था। लगभग बारह लाख की आ
जनगणना के अनुसार) 1,093,702 वाला यह नगर आज भी शि
उद्याग का कन्द्र है। चेन्न के बाद दक्षिण भारत का यह दूसरा
जो बेगई नदी के तट पर वसा हुआ है। आज यह नगर नदी के दो
। मन्दिर और पुराना शहर नदी क दक्षिणी छोर पर ओर आधु
उत्तरी किनारे पर है, जहाँ अनेक टेक्सटाइल मिले, ओर इजीनिय

मीनाक्षी मन्दिर के दक्षिण द्वार के सामने एक छोटा-सा हनुमान मन्दिर है, जिसके द्वार पर जूते रखने की व्यवस्था है। जूते-चप्पले वहीं छोड़ हम मन्दिर में प्रविष्ट होते हैं। अन्दर की भव्यता हमें मुग्ध करती है। श्रद्धालुओं की भीड़ है। मीनाक्षी मन्दिर के एक भाग में देवी मीनाक्षी है और दूसरे भाग में सुन्दरेश्वर (शिव) का मन्दिर है। यह भारत के विख्यात शक्ति मन्दिरों में से एक है। कई शताब्दियों तक यह मन्दिर साहित्य, कला, और नृत्य का मुख्य केन्द्र रहा। किंवदन्तियों के अनुसार जब तीसरी और अन्तिम 'कलासंगम' (तमिल साहित्य अकादमी) की मदुरै में बैठक हुई, तमिल का सम्पूर्ण साहित्यिक कार्य मन्दिर के कुएं में फेंक दिया गया। दैवी शक्ति के परिणामस्वरूप उल्लेखनीय कार्य ऊपर तैरने लगा और महत्वहीन पानी की सतह में बैठ गया।

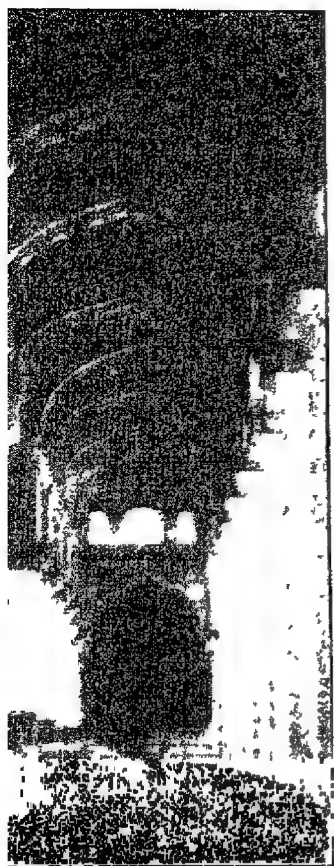
मीनाक्षी मन्दिर का निर्माण भले ही पांड्य नरेश कुलशेखर ने करवाया था, लेकिन इसे विस्तार दिया नायकवंशी राजा तिरुमलै ने। इस मन्दिर के विषय में कहा जाता है कि मीनाक्षी देवी किसी पाण्ड्य नरेश की कन्या थी, जिन्होंने अपनी भक्ति और तपस्या के बल पर शिव का वरण किया था। पांड्य और नायकवंशीय राजाओं के बाद भी इस मन्दिर के विस्तार और सज्जा का कार्य किया जाता रहा। आज यह अपने आधुनिक स्वरूप में, जिसका क्षेत्रफल है 65,000 स्क्वॉयर फीट, त्रिकोणात्मक आकार में बने इस मन्दिर की लम्बाई है 847 फीट और चौड़ाई है 792 फीट। मन्दिर के चारों ओर चार गौरवपूर्ण गोपुर हैं, जिनमें उत्तरी और दक्षिणी गगनचुम्बी गोपुरों की भव्यता बेमिसाल है। पूर्वी और पश्चिमी गोपुर अपेक्षाकृत छोटे हैं। दक्षिणी गोपुर की ऊँचाई है 160 फीट और इसका निर्माण सोलहवीं शताब्दी में करवाया गया था। इस गोपुर के शीर्षस्थ स्थान से चित्रलिखित-सी मदुरै का दृश्य अद्भुत दिखाई देता है। मन्दिर के अन्य ग्यारह गोपुर भी इससे देखे जा सकते हैं। दक्षिणी गोपुर को 1500 बहुरंगीय चित्रों से सजाया गया है और यह दक्षिण भारत के मन्दिरों की विशेषता है। सबसे पुराना गोपुर है पूरब का, जो सुन्दरेश्वर मन्दिर के सामने है और जिसका निर्माण तेरहवीं शताब्दी में जातवर्मन सुन्दर पाण्ड्य नरेश ने करवाया था। मुख्य मन्दिर में प्रवेश के लिए छोटा-सा द्वार है और गोल्डन टेम्पल टैंक उसकी बाईं ओर है। उसके उत्तरी ओर शिवगंगा जमींदार द्वारा मन्दिर को भेंट दिया गया उत्कृष्ट कोटि का पीतल का द्वार है, जहाँ से सुन्दरेश्वर मन्दिर के लिए प्रविष्ट होते हैं, जो लंबे चौड़े बरामदों (कारीडॉर्स) से घिरा हुआ है जिनमें पंक्तिबद्ध स्तम्भ हैं। इन स्तम्भों में विशिष्ट मदुरा शैली के दर्शन होते हैं। मीनाक्षी मन्दिर की अद्भुत निर्मिति है, 'अइरम्कल मण्डपम', जिसे हजार स्तम्भों वाला मण्डप भी कहा जाता है। इस मण्डप में 985

स्तम्भ हैं, जिनपर कला का अद्भुत कार्य दृष्टव्य है। प्रत्येक स्तम्भ पर उच्चकोटि का कलात्मक और अलंकारिक कार्य किया गया है, जो आज भी जीवन्त है। एक विशेष कोण से देखने पर स्तम्भ एक ही पक्ति मे दिखाई देते है और शिल्पकला का उत्कृष्ट नमूना है। बाहरी 'कारीडार' में भिन्न प्रकार के सगीतयुक्त पत्थरो की मूर्तियो से सज्जित स्तम्भ हैं, जिन्हे थपथपाने से मधुरसंगीत ध्वनि प्राप्त होती हे। मुझे बताया गया कि जनवरी-फरवरी में यहाँ 'राजा तिसमलै नायक' का जन्मोत्सव मनाया जाता है। इस अवसर पर मीनाक्षी और सुन्दरेश्वर की मूर्तियो को मदुरा से पॉच किलोमीटर दूर मरियम्मन तेप्पाक्कुलम तालाब मे जलावतरण करवाया जाता है। इस अवसर पर नाव में सैकड़ा दीपक जलाए जाते हैं और लोग-संगीत की धुने बजाई जाती हैं। इस तालाब के उत्तर की ओर मरियम्मन का प्रसिद्ध मन्दिर है, जो तमिलनाडु की ग्राम्य देवी कही जाती है।

मीनाक्षी मन्दिर और सुन्दरेश्वर के दर्शनार्थ श्रद्धालुओं की अच्छी-खासी भीड थी। लोग झुण्ड मे चल रहे थे और एक-एक दृश्य को ऑखों मे समेट लेना चाहते थे। इससे कुछ आगे एक युवती और चार विदेशी पर्यटक थे। हर मूर्ति के समक्ष रुककर युवती उन्हें उसके विषय मे विस्तार से बताती और उन्हें कुछ देर रुकने के लिए कह स्वयं पूजार्थ आगे बढ जाती। स्लिम, गोरी, कुर्ता-पायजामा में सजी वह आकर्षक लग रही थी और प्रारम्भ में मुझे लगा था की शायद वह उन विदेशियो के साथ है। लेकिन वास्तव में वह उनकी गाइड थी।

समय हमारे पास कम था। हम अपिरक्कल मण्डपम के सामने थे कि भीड देखकर रुक गए। लोग हाथी के चारों ओर एकत्रित थे। महावत हाथी के पास खडा था। बच्चे हाथी की सूंड पर पैसे रखते, वह सूड उठाकर बच्चे के सिर पर उसे आशीर्वाद देता, फिर पैसे महावत की ओर बढ़ा, स्थिर हो जाता। माशा और कुणाल ने भी आशीर्वाद लिया। हम स्तम्भों को देखते, उन पर चित्रित कला पर मोहते उत्तरी गोपुर की ओर गए। कुणाल ने उस गोपुर को कैमरे मे कैद करने का असफल प्रयत्न किया। हम पश्चिमी गोपुर की ओर से घूम बाहर आ गए। चलते-चलते हनुमान मन्दिर भी देख लेना चाहते थे। यह एक अति-साधारण और छोटा मन्दिर है।

हम तिरुमल्लै नायक महल देखना चाहते थे। बताया गया एक किलोमीटर दूर है। रिक्शा लेना चाहते थे, किन्तु पैदल चलने से शहर देखने के भी अवसर थे। हम पैदल ही चले पूछते हुए। यह महल भारतीय-अरबी शैली का उत्कृष्ट नमूना है। चूने के महीन कार्य से निर्मित इसके गुम्बद और मेहराब प्रभावशाली है। शिल्पकला का एक अन्य भव्य उदाहरण है 'स्वर्ग विलासम' जो ईंटों और



चूना-गारा से बिना किसी वल्ली या शहतीर के सहारे खडा है। महल के सफेद चार मीटर गोलाकार और 20 मीटर ऊँचे स्तम्भ भी पर्यटको को आकर्षित करते हैं। महल के अन्य स्थानो मे काली पालिश किए भिन्न आकार मे स्तम्भ है। यह एक छोटा महल है, जिसे दस मिनट में देखा जा सकता है।

''साइट और साउण्ड कार्यक्रम'' यहाँ प्रतिदिन होता है, जिसमे तिरुमल्लै काल का वर्णन होता है। वहाँ बिछी कुर्सियों में हम कुछ देर बैठकर स्वस्थ होते है। कॉरीडॉर मे बायी ओर मरम्मत का कार्य हो रहा है। सामने भी, जहाँ कभी राजा
रबार लगता रहा होगा, मरम्मत और रगाई कार्य चल रहा है।
से बरामदे में चढ़ते हैं। छत मे ईटें झॉक रही हैं। विशाल हॉल
लै का चित्र है और पास ही उसकी वह कुर्सी जिसपर राजदरबार
गा। सामने म्युजियिम है। हम प्रविष्ट होते है। कोई टिकट नहीं।
प्राचीन मूर्तियाँ और अति-प्राचीन पत्थर, अस्त्र-शस्त्र आदि दर्शनीय
र हमारे साथ घूमने लगता है और प्रत्येक मूर्ति के विषय मे बताता
भी संग्रहालयों की परम्परा का निर्वाह यहाँ भी किया गया है और
लाओं के समक्ष परिचय और वर्ष का उल्लेख है।

बाहर निकल रहे होते है, किसी टूरिस्ट बस के यात्री महल मे
होते हैं बाहर एक व्यक्ति मट्ठा बेच रहा है एक रुपए में एक

छोटा गिलास। दही और मट्ठा दक्षिण भारत में सहज उपलब्ध है। हम पीते हे। वहॉ खडा एक युवक भी पीता है। बातचीत होती है। पता चलता है अन्दर गए दल के साथ है और बगलौर से आया है। मट्ठा पी हम सामने की सडक पर उतर जाते है। साडियो की दो 'कोआपरेटिव' दुकाने दिखती है। वास्तव में बाहर केवल बोर्ड लगे हैं। साडियो की दुकान अन्दर है। ग्राहको को आकर्षित करने के लिए दोनों के बाहर एक-एक व्यक्ति तैनात है। पत्नी आकर्षित है। वह मदुरा की कोई स्मृति ले जाना चाहती है। और साडी से अच्छी वस्तु क्या हो सकती है। एक व्यक्ति के बुलाने पर हम पहली दुकान मे जाते हैं। यह एक घर है। किसी भी साधारण घर की भॉति। हम घर के अन्दर धॅसते हैं। बडा कमरा 16×20 का होगा। चारो ओर साडियॉ। चटाईयॉ बिछी है। हम बैठते है। दुकान में तीन लोग बैठे है। साडियॉ दिखाई जाती है। सभी मदुरा सिल्क। लेकिन हम आकर्षित नही होते। कन्याकुमारी जैसी दिखने वाली साड़ियों की कीमत उनसे डेढ़ गुना। हम उठ जाते हैं। दुकानदार हमें आश्वस्त करता है, "ये प्यारे सिल्क...मदुरा सिल्क...कन्याकुमारी के माल से बेहतर ..।"

लेकिन हम रुकते नहीं।

"चौराहे पर पहुॅच ऑटो पूछते हैं "न्यू मैसी रोड"। कोई जाने को तैयार नहीं है। रिक्शा पचास रुपए से बीस रुपए तक मॉग रहे हैं।

हम पैदल ही लॉज पहुॅचते है। थोडी देर बाद लॉज के दो नौकर सामान लेने आ जाते है। एक ऑटो लेने चला जाता है। हमें रामेश्वरम की बस पकडने के लिए 'अन्ना बसअड्डा' जाना है। और यह पहला व्यक्ति मिलता है जो वाजिब किराया लेता है...बीस रुपए। हिसाब कर और नौकरों को बख्शीश दे हम लॉज को अलविदा करते है।

"अन्ना बस स्टैण्ड" दूर है। व्यवस्था अच्छी है। 'वालण्टियर्स' घूम रहे थे खाकी वर्दी में। एक से रामेश्वरम की बस के विषय मे पूछता हूँ। बस तैयार है। एक परिवार बैठा है उसमें। वालण्टियर हमें उसमे बैठा देता है। पहले से बैठा परिवार हिन्दी भाषी है। मॉं-बाप और बेटा। चेन्नई से आए हैं। बेटा चेन्नई मे नौकरी करता है और गॉव (बदायूॅ) से आए मॉं-बाप को मदुरा और रामेश्वरम घुमाने निकला है।

"कन्याकुमारी हो आए?" मैं पूछता हूँ।

"छुट्टियॉ कम है। रामेश्वरम घुमाकर लौट जाएॅगे।"

तभी बगल में रामेश्वरम की एक बस और आ लगती है। उसका कोई परिचित आवाज देता है- 'तिवारी जी यह बस जा रही है उतर लो-- इससे

चलते है।''

और तिवारी जी मॉ-बाप को सँभाले बैग लटका उतर जाते है। वस मे कोई और सवारी नही है। पौने वारह बजे हैं। सामने वाली बस जा चुकी है। अब एक-एक सवारियॉ आने लगी है। वस से नीचे खीरे विक रहे है...सस्ते है।

ठीक बारह बजे वस छूटी। पन्द्रह मिनट मे, कुछ सीटे ही खाली थीं, जो कि रास्ते में भर गई थी। धूप तेज थी, किन्तु हवा मे ठण्डापन था। रास्ता साफ था और सड़क के दोनों ओर खडे वृक्ष झूम रहे थे।

वस लगभग तीन बजे रामनाथ पुरम पहुँची। वहॉ पके कटहल के कोये देख मन ललचा उठा। बचपन की याद ताजा हो आयी। मामा इन्द्रजीत सिह के बाग मे सीजन में एक-दो कटहल पके उतरते। मामा उन्हें विशेप रूप से पकने के लिए छोड देते थे। घर पहुँचते तो हम नानी के इर्द-गिर्द मडराने लगते। कटहल बॉटने का काम नानी के जिम्मे होता। नानी कटोरे मे कोये देती तो मुझे शिकायत रहती, कम देने की। लेकिन नानी किसी के साथ भेदभाव नहीं करती थीं। उन्हे तो सभी का ख्याल रखना होता था। अन्नपूर्णा जो थीं। चदन देवी, जो वताती कि उनके मायके मे लोग उन्हे चंदनिया बुइया कहकर बुलाते थे।

वस पॉच मिनट ही रुकी थी वहाँ। एक घण्टा बाद समुद्र दिखने लगा। पुल पर से गुजरती वस से समुद्र का दृश्य मोहक था। जब हम रामेश्वरम पहुँचे साय के चार बजे थे।

छोटे से द्वीप में

समुद्र पर बना पुल पार होते ही मछुआरों की वस्ती। रास्ता ऊबड-खावड, जंगल, छोटी--बस्तियाँ और फिर रामेश्वरम बस स्टैण्ड। यह है मन्नार की खाडी पर वसा भारत का छोटा-सा द्वीप रामेश्वरम, जिसे हिन्दुओ का पवित्रतम स्थान कहा जाता है। कहते है श्रीलका पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् उसी स्थान पर पहुँचकर राम ने शिव के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट की थी। लगभग चालीस हजार की आवादी वाला यह द्वीप अपनी प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए भी आकर्षक है।

वस स्टैण्ड से वस्ती और मन्दिर लगभग डेढ किलोमीटर दूर है। ऑटो का निश्चित किराया है। जवकि बस मात्र एक रुपए लेती है। ऑटो वाले को गुजराती भवन चलने के लिए कहता हूँ। दस मिनट मे वह हमे भवन के गेट पर उतार देता है। यह मन्दिर के दक्षिण और समुद्र तट के अग्नितीर्थ और मन्दिर के मध्य वना एक अच्छा गेस्ट-हाउस है। कमरा सहजता से उपलब्ध हो जाता है पहली मजिल मे, जिससे दक्षिण की ओर समुद्र और उत्तर की खिड़की से मन्दिर का दक्षिणी गोपुर स्पष्ट दिखाई देते हैं।

हम बेहद थके है। गुजरात भवन की कैण्टीन से चाय मंगवाता हूँ। शाम धीरे-धीरे मन्दिर के गोपुर से नीचे उतर रही है। स्नान कर बाहर निकलते है। दस कदम पर अग्नितीर्थ है।

गुजराती भवन के सामने 'राजस्थानी भोजनालय' और उसके बगल मे 'विवेकानन्द वाचनालय' है। गुजराती भवन के पड़ोस में भी एक गेस्ट हाउस है जो बिवेकानन्द संस्थान से सम्बद्ध है। हम सीधे सागर तट पर पहुँचते हैं। समुद्र यहाँ स्थिर है। लहरों में कोई उत्तेजना नहीं है। वे थकी-थकी...मथर गति से तट की ओर आती है जहाँ खासा सेवार एकत्रित है। यही है अग्नितीर्थ तट जहाँ



ुण्य लाभ पाना चाहते हैं। कहते है ईश्वर में आस्था रखने वाला र यहाँ अवश्य आने का स्वप्न सजोये रहता है। मेरा ऐसा कोई घूमने-देखने की इच्छा है। तट पर पड़ी नावों में से एक में हम ये घुटनों तक समुद्र में घुस जाते है। पानी मे खेलने के लिए नहीं है। एक अधेड व्यक्ति काफी गहराई तक जाकर पानी में , नगे वदन। पानी यहाँ निर्मल है, जिससे तलहटी मे पड़ी वस्तु ही है। जहाँ हम बैठे है, वह स्थान अग्नितीर्थ तट से दस कदम र गन्दगी का साम्राज्य है, सूअरो की टट्टी और कूडा पडा है। द चार अप्रैल 1997 की वह सध्या खूबसूरत थी। क्षितिज का मछली पकड़कर लौटती नावे और ठीक सामने क्षितिज पर स्थिर ा बोट आकर्षित कर रहे थे। हमारे पास ही कुछ मछुआरे नई ग्स्थ थे।

रहे पप्पू अकल'" बेटा बहन पर पानी उछालता हमें इशारे से छे मुडकर देखते हैं। सपरिवार. .केरल एक्सप्रेस वाले उन सज्जन प्पू अकल' नाम से अभिहित करने लगे थे, देखकर आश्चर्यचकित गो ने या तो हमें देखा नही था या देखकर अनदेखा कर रहे ठेन था। वे सब तट पर टहलते है, फिर पानी मे छः इंच के चित्र खिंचवाने लगते है। अग्नितीर्थम की एक स्मृति और प्रमाण

को कैमरे में सुरक्षित रखना चाहते है। अंधेरा होने से पहले ही वे लौट लेते है। लेकिन वे एक मात्र धर्मालु नहीं जो बिना स्नान मात्र पानी मे उतरकर फोटो खिचवाते हैं। दूसरे दो परिवार भी वहाँ पहुँचते हैं और वे भी ऐसा ही करते है। आश्चर्य होता है। सोचता हूँ समय के अभाव ने आस्थाओ को सकुचित कर दिया है या लोगों मे आस्थाएँ छीजती जा रही हैं। फिर क्या विवशता है यह सब करने की?"

हम सड़क पर टहलना चाहते है, जो होटल तमिलनाडु की ओर जाती है। सडक खाली-सी है। होटल निर्जन स्थान मे, लेकिन प्राकृतिक सौन्दर्य प्रदान करने का भरपूर प्रयास किया गया है। हालाँकि मत्स्यगंध के कारण वहाँ से गुजरते हमे नाक पर कपडा रखना पड़ा था। सोचता हूँ, "यहाँ लोग टहरते कैसे होंगे?"

होटल तमिलनाडु से पूर्व 'बिरला गेस्ट हाउस' है जो सड़के के किनारे है, लेकिन वहाँ रात मे सियारो का अड्डा ही जमता होगा। सारे कमरे बन्द पडे थे। केवल नौकरानी वहाँ टहलती दिखी थी। वास्तव मे उसका कुछ सम्बन्ध उस गेस्ट हाउस से था भी या वह बस्ती की कोई महिला थी, सोचना कठिन था।

हम दूर तक चले जाते है इस आशा में कि मछली पकड़कर लौटीं नावो को देख सकेंगे, लेकिन वे जितना निकट दिख रही थी, वास्तव में उतना ही दूर थीं और शायद वे समुद्र पुल पार करने के बाद पडने वाली मछुआरों की उस बस्ती के सामने कही जा टिकी होंगी, ऐसा अनुभव कर हम लौट पडे। उस समय अंधेरा गहराने लगा था और दूर समुद्र की छाती पर पड़ी नौकाओ पर रोशनी जलती दिखाई देने लगी थी। लेकिन लोग अभी भी घाट मे स्नान कर रहे थे।

मै सोच रहा था कि वहाँ से श्रीलंका मात्र पचहत्तर किलोमीटर ही दूर है। राम के गुप्तचर भी कितने प्रवीण रहे होंगे, जिन्होने इस स्थान की खोज की थी। राम द्वारा श्रीलका तक जिस कथित पुल के निर्माण की बात की जाती है वह धनुषकोटि नामक स्थान वहाँ से अठारह किलोमीटर दूर है। 1964 मे यहाँ आए भयानक समुद्री तूफान मे न केवल धनुषकोटि नष्ट हो गया था, बल्कि उन अवशेषो को भी समुद्र समेट ले गया था, जिन पत्थरों पर राम अंकित था। वहाँ कोदडराम स्वामी का मन्दिर ही बचा है, जिसमें राम-सीता-लक्ष्मण-हनुमान और विभीषण की मूर्तियाँ स्थापित है।

हम मन्दिर के सामने सजी दुकानों मे शख-सीपियों से बनी वस्तुएँ देखते किसी रेस्तरां की तलाश में भटकते है। अन्ततः हम दक्षिण भारतीय रेस्तरां मे साबर-भात से पेटभर कर गुजराती भवन लौट लेने है। मन्दिर मे श्रद्धालुओ की भीड आ-जा रही है। शंख-ध्वनि हो रही है और सस्कृत-मन्त्रोच्चारण चल रहा है।

अगले दिन सुबह हम आराम से तैयार होते हैं। हमारा वापसी का आरक्षण चेन्ने के लिए 'सेतु एक्सप्रेस' से सात अप्रैल के लिए है। रात मन्दिर के पास हमें एक ताँगे वाला मिल गया था। वहाँ अब गिने-चुने ताँगे बचे है और रिक्शा एक भी दिखाई नही पड़ा। उनका स्थान ऑटो ने ले लिया है। बडी सख्या मे ऑटो मन्दिर के पास के बस स्टैण्ड पर खडे दिखते है।

तागेवाले से अगले दिन द्वीप के प्रमुख पर्यटन स्थलो, यथा गंधमादन पर्वत, धनुषकोटि, आदि घूमने की बात करता हूँ। धनुषकोटि के विषय में वही नही, दूसरे लोगो ने भी बताया था कि अब वहाँ दर्शनीय कुछ भी नही है। तांगेवाला गधमादन पर्वत के अतिरिक्त रामेश्वरम में ही आठ स्थानों में घुमाने की बात करता है। हमें आश्चर्य होता है, लेकिन देख लेने की उत्सुकता भी है। सुबह नौ बजे गुजराती भवन पहुँचने के लिए कह देता हूँ। और जब नौ बजे मैं बाहर झाँककर देखता हूँ तो गेट पर तांगेवाले को मौजूद पाता हूँ। उत्साह मे हम नीचे पहुँचते है, लेकिन तागा और घोडा की दशा देख उसे लौटा देने की इच्छा होती हे। दरअसल रात अधेरे मे हम तागे की स्थिति देख न सके थे।

ताँगा चलता है तो सोचता हूँ कि इससे अच्छा तो पैदल चलना होगा। चढाई होने पर घोड़ा रुक जाता है। लेकिन खींच-खांचकर वह हमे 'गंधमादन पर्वत' पर पहुँचा देता है। यहाँ पर्वत जैसा कुछ नही है। समुद्र के किनारे काफी ऊँचाई पर एक मन्दिर अवस्थित है, लेकिन रामचरितमानस में इसका उल्लेख मिलने के कारण इसका महत्व है। इसे स्थानीय लोग रामझरोखा भी कहते है। उनके मतानुसार रामेश्वरम पहुँचकर उसी स्थान पर खड़े होकर राम-लक्ष्मण ने यह अनुमान लगाने का प्रयत्न किया था और सीता किधर गई होगी। यहाँ एक अति-साधारण मन्दिर हे उपेक्षित-सा। लेकिन उसके ऊपर से रामेश्वरम का दृश्य अत्यन्त मनोरम दिख रहा था।

लौटते हुए स्थानीय लोगों द्वारा बनवाए दो छोटे मन्दिर तांगेवाला हमे दिखाता है। सड़क के किनारे मछुआरो की छोटी-सी बस्ती है। ताँगवाला अच्छी हिन्दी बोल लेता है। वह बताता है कि वहाँ कुछ पैदा नहीं होता। मछली पकड़ना ओर मजदूरी कर पेट पालना स्थानीय लोगो की विवशता है। इसकी छाप हमें बस्ती के लोगो मे देखने को मिलती है। शिक्षा की कोई बेहतर व्यवस्था नही है।

रास्ते में इमली का बाग दिखता है। बच्चे इमली खाना चाहते है। पेड़ पर लगी इमली तोडने का सुख उन्हे आकर्षित करता है। हम प्रस्ताव करते है तो वह तांगा रोक देता है। हम सकुचाते हैं तो वह कहता है "आप अन्दर जाएँ बाबू। बाग का मालिक अपना ही आदमी है।" और तभी उसे बाग का मालिक

आता दिख जाता है। वह उसे आवाज देकर अपनी भाषा मे उससे कुछ कहता है। फिर मुझसे कहता है, "जाइए साव मैने उसे बोल दिया है।"

मै और बेटा अन्दर जाते है। डालो पर लटकती पकी इमली के कई गुच्छे तोड लेते है। लौटते है तो हाथ मे थोड़ी-सी इमली देख तागे वाला कहता है, "अरे इतनी के लिए आप उतरे थे...जाइए और तोड़ लाइए। वह कुछ नहीं कहेगा।" उसका अभिप्राय बाग के मालिक से है, "वह हमारी बिरादरी का ही है।"

हम पुन. इमली तोडने पहुँचते है। इस बार बाग के मालिक की पत्नी झोपडी से निकल आती है और इमली तोड़ने में हमारी मदद करती है। "एक अपरिचित के लिए इतना कष्ट.. इसानियत शेष है दुनिया में...।" मै सोचता हू और उसकी तोडी ढेर-सी इमली पालिथिन के लिफाफे में समेट लौटता हूँ।

तागा चल पडता है खिचिड़-खिचिड। लेकिन अब तांगेवाला मुझे अच्छा लगने लगता है। तागे पर बिछी गन्दी कथरी बुरी नहीं लगती। और हम उससे द्वीप के विषय मे, वहाँ के लोगों के विषय मे ढेर सारी जानकारी पाना चाहते है। वह बताता है कि वहाँ अधिकांश लोग मछली व्यापार मे लगे है। "लेकिन इससे पूरा नही पड़ता साब। बिचौलिए ऐजण्टों की जेब मे ही मेहनत का बड़ा भाग चला जाता है।"

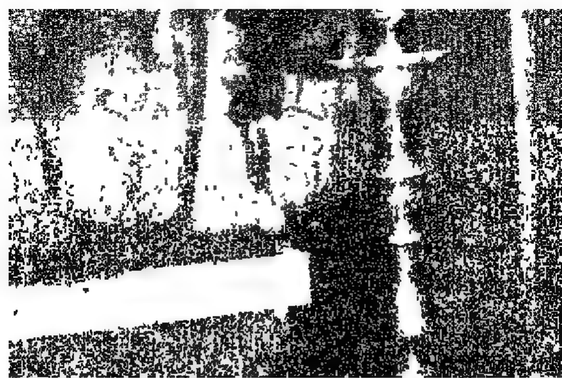
ताँगेवाले के कथन मे छुपे कष्ट को अन्दर तक महसूस करता हूँ। मुझे तकषि शिवशकर पिल्लै के उपन्यास की याद हो आती है, जिसमे मछुआरो के जीवन का मार्मिक वर्णन किया गया है।

तागा लौटकर बस्ती में आ जाता है और एक स्थान पर खडा कर तांगेवाला बोलता है, "यहाँ है लक्ष्मण तालाब।"

हम रेत मिली धूल मझाकर लक्ष्मण तालाब देखने जाते है। टिकट हे। छोटा-सा तालाब है, जिसके मध्य में मण्डप है। पानी स्वच्छ है। चारों ओर सीढियाँ बनी है। एक विक्षिप्त-सा दिखता आदमी स्नान कर रहा है। तालाब मे सैकडो छोटी मछलियाँ है। हम मुरमुरे खरीदते है। पानी मे मुरमुरे फेकते ही हड़कप मच जाता है। तल पर बैठी मछलियाँ तेज आवाज के साथ ऊपर दौड आती हैं ओर सेकेण्ड्स मे मुरमुरे खा लौट जाती हैं। यह प्रक्रिया दोहराई जाती है। तालाब मे स्नान करने वाला व्यक्ति मण्डप मे चला गया है और अपनी 'अण्डरवियर' को निचोड़ने से निकले पानी से मण्डप में रखी मूर्ति को स्नान करवा रहा है।

लौटते हुए एक स्थानीय देवता के मन्दिर मे जाते है, जिसके विषय मे मान्यता हे कि वहाँ पुत्र की कामना से जाने वाले व्यक्ति की कामना पूर्ण होती हे।

तागेवाला वहाँ से कुछ कदम पर बने राम तालाब ले जाता है जो इतना



रामेश्वरम का एक राम मदिर

वहॉ खडा होना कठिन था। देखने की टिकट नहीं, लेकिन कर वसू
हम सामने बने मन्दिर में प्रविष्ट होते हैं। खाली है। कोई पुज
क्ष्मण और सीता की मूर्तियॉ है काले पत्थरों की। किसी के अ
न्हे केमरे मे कैद कर लेते हैं। पास ही एक टूटे मकान में 'धनुपको
ाया एक पत्थर पानी में तैरता दिखाला गया है। पुजारी घर के अ
ग्राकर फिर उस पत्थर को दिखाता है कि उस जैसे पानी मे तै
से ही राम ने लंका जाने के लिए सेतु बनाया था। पुजारी गोरख
ार मन्दिर का वह पत्थर ही उसकी जीविका का साधन। उस ब
श्रद्धालु जो दे जाते है उसी से उसका कार्य चलता है।
खण्डहर हुए एक परिसर मे तांगेवाला, जो हमारा गाइड भी था, म
हे, लेकिन बाहर इतना मल-मूत्र पड़ा था कि जाने की इच्छा न
बजे के लगभग वह हमें मन्दिर के बाहर छोड़ देता है। उसी
न्दिर देखते हैं, जिसके लिए सम्पूर्ण भारत से ही नहीं दूसरे देशो
दौड आते है। इसे रामनाथ स्वामी मन्दिर भी कहा जाता है।
ाब्दी मे अलग-अलग शासकों द्वारा बनवाया गया था। द्वीप
सागर तट पर यह मन्दिर द्रविड वास्तुकला का बेजोड़ नमूना
के सभी मन्दिरो से बडा गलियारा है। यह पूर्व से पशिचम तक 1

मीटर तथा उत्तर से दक्षिण तक 133 मीटर लम्बा है। गलियारे की चौडाई 6 मीटर तथा ऊँचाई 9 मीटर है। करीब 6 हेक्टेयर में बने हुए मन्दिर में 22 कुएँ है। मन्दिर के प्रवेश द्वार पर 38 4 मीटर ऊँचा गोपुरम है। मन्दिर मे प्रवेश करते समय पण्डो से साक्षात् होता है, जो बाल्टियॉ लिए खडे है। वे श्रद्धालुओ को बाइस कुओ मे स्नान करवाते हैं और जितना अधिक सम्भव हुआ उनकी जेब खाली करते हैं। दो पण्डों ने मुझसे पूछा, लेकिन कोई उत्तर न पा वे चुप रहे। मन्दिर के अन्दर प्रविष्ट होते ही चारो ओर पानी-ही-पानी दिखाई देता है। गलियारे मे कीचड और फैले पानी से आती मत्स्य-गध से उबकाई आती है। फिर भी हम मन्दिर की कलात्मकता देखने के मोह का सवरण नही कर पाते।

पानी में लथपथ भक्तो और उनको अपने पीछे दौडाता पण्डा विद्रूप दृश्य प्रस्तुत कर रहे थे। पण्डा जिस मशीनी गति से छोटी बाल्टी मे पानी खीच लोगो के सिरों पर डाल रहा था वह आश्चर्यचकित कर रहा था।

मन्दिर के अन्दर घूमकर हम गलियारे से गुजरते है। अनेक विशाल स्तम्भो को इधर-उधर धराशायी देख सोचता हूँ कि ये अपनी जडो से विलग हुए है या अतिरिक्त है। पश्चिमी गलियारा नीम अधेरे में डूबा है और पानी और कीचड के कारण सॅभलकर चलना पड रहा है। सड़ांध के कारण चलना कठिन है। हम तेजी से बाहर आ जाते हैं।

शाम फिर समुद्र तट पर बीतती है और रात मन्दिर के आसपास सजी दुकानो को देखने मे। रामेश्वरम एक ऐसा स्थान है जहॉ भक्तों की भीड बाढ की भॉति आती और जाती है। रात बारह बजे तक मन्दिर जागता रहता है और भक्तो द्वारा 'रामेश्वरम' की जय के नारे गूँजते रहते है। रात तीन बजे से भक्त अग्नितीर्थम् मे स्नान के लिए जाना प्रारम्भ कर देते है। एक प्रकार से अहर्निशि जागती रहती है रामेश्वरम की दुनिया।

छः अप्रैल की सुबह काफी अलस भरी थी। आराम से जगे। कोई योजना मन में न थी। आठ बजे तक यही निश्चित किया था कि नौ बजे के लगभग हम स्टेशन की ओर निकल जाएँगे। किसी ने बताया था कि उधर शंख की वस्तुओ का अच्छा बाजार है। वहॉ से मित्रों के लिए कुछ वस्तुएँ खरीदने का विचार था।

"लेकिन इसमे दो-तीन घण्टे ही लगेंगे ..शेष समय... ।" पत्नी ने प्रश्न किया।

मैं सोच में पड गया। मदुरै के लिए निश्चित एक दिन हमे रामेश्वरम मे खर्च करना पड़ रहा था। यदि पहले से ऐसी योजना होती तो कन्याकुमारी की रमणीकता का एक दिन अधिक आनन्द उठा सकता था।

"क्यो न हम तिरुपलानि मन्दिर देखने चले।"

"कैसे जाएँगे?"

"किसी से पूछते है।"

गुजराती भवन के प्रबन्धक से पूछता हूँ, वह अनभिज्ञता प्रदर्शित करता है।

चाय पीने की प्रबल इच्छा थी। मन्दिर के पास एक ढाबानुमा चाय की दुकान मे हम जाते है। आलू की सब्जी और पूरी का नाश्ता तैयार था। लेकिन हम सादा डोसा मॉगते है नाश्ते में। ढाबा, जिसके बाहर होटल लिखा था, के मालिक से तिरुपलानि पहुँचने का मार्ग पूछता हूँ। वह एक अन्य व्यक्ति की ओर इशारा कर तमिल मे उससे कुछ कहता है। दूसरा व्यक्ति दुबला-पतला अधेड़ है। वह पास बैठ जाता है और हिन्दी मे बताता है कि रामेश्वरम से बस लेकर हमे रामनाथपुरम जाना है, वहाँ से दूसरी बस लेकर तिरुपलानी। तिरुपलानि में प्रसिद्ध विष्णु मन्दिर है।

"कितने किलोमीटर होगा यहाँ से रामनाथपुरम?"

"पचास...जस्ट फिफ्टी।"

मै उसे धन्यवाद देता हूँ, ढाबानुमा होटल का बिल अदा करता हूँ और मन्दिर के पास बस के लिए पहुँचता हूँ। बस तैयार है। रामेश्वरम बस स्टेण्ड तक का टिकट मात्र एक रुपया।

बस स्टैण्ड मे भी रामनाथपुरम की बस तैयार मिलती है। मेरे पास जो थैला था, उसमें सूखे बेर थे। मैं बेर खाने लगता हूँ। मेरे पड़ोस मे दो युवक बैठे थे। मुझे अजीब-सा फल, वह भी सूखा खाते देख वे आपस में तमिल मे बातें करते है। मै समझ नही पाता, लेकिन उनके हावभाव बता रहे थे कि वे उस फल के विषय में जानना चाहते थे। अन्ततः उनमें से एक ने पूछ ही लिया संकेत मे। मैने अंग्रेजी मे उसे बताते हुए कि इसे बेर कहते हैं। कुछ बेर उसकी ओर बढा दिए और खाकर देखने का आग्रह किया। लेकिन जैसा कि मैने समझा, वे मेरी बात समझ नही पाए। सम्भवतः उन्हे अंग्रेजी नहीं आती थी। लेकिन उन्होने खाकर देखा और फिर आपस मे तमिल मे बात करने लगे। थोडी देर बाद दोनो ठहाका लगाकर हँसे और बचे बेर सड़क पर फेंक दिए। उनके ठहाका लगाकर हँसने पर मै भी हँसा, लेकिन फिर सोचा कि मै क्यो हँसा था।

ग्यारह बजे के लगभग हम रामनाथपुरम पहुँच गए। पके कटहल देख मन ललचा गया। थोडे-से कोये खरीदे और बेटा और मैने खाए। रामनाथपुरम अत्यन्त प्राचीन नगर है, जहाँ राजा सेतुपति शासन करता था। सेतुपति के समय मे वहाँ कला और संस्कृति का पर्याप्त विकास हुआ था। यहाँ जिले का मुख्यालय है और

रामेश्वरम इसी जिले का हिस्सा है।

तिरुपलानि जाने के लिए बस की जानकारी ली। बस तैयार थी, लेकिन भीड इतनी कि साहस न हुआ। ऑटो वाले से बात की और अन्ततः एक सीधा-सा युवक रामनाथपुरम घुमाने और तिरुपलानि ले जाने के लिए तैयार हो गया।

तिरुपलानि रामनाथपुरम से चौदह किलोमीटर दूर है। रास्ते में सड़क के किनारे बस्ती का नाम नहीं मिला। खेत थे और दूर कहीं दो-चार पेड़ दिख रहे थे। बहुत दूर कही कोई गाँव पेडो की झुरमुट की ओट में झाँकता दिख रहा था। रास्ता खाली पाकर ऑटोवाला तेज रफ्तार गाड़ी दौड़ता रहा। समय का पता ही नही चला और जब तक हम बोलते ऑटो मुख्य मार्ग से नीचे उतर एक पतली सडक पर दौडने लगा था। दूर एक भव्य मन्दिर और बाईं ओर गाँव दिख रहा था। समझ गया कि वही तिरुपलानि होगा।

तिरुपलानि का वह विष्णु मन्दिर सलेटी रग के पत्थरो से निर्मित है और अपनी सादगी और भव्यता के कारण दूर से ही मुग्ध कर रहा था। इस मन्दिर को 'दर्भशयनम' के नाम से भी जाना जाता है। यहाँ विष्णु की शयन करती एक विशाल मूर्ति है। यह आदि जगन्नाथ पेरुमाल को समर्पित है।

अन्दर पहुँचते ही एक वृद्ध साथ हो लेते हैं। वे टूटी-फूटी हिन्दी में मन्दिर के देवताओ और स्थानों के विषय में बताते हुए हमें पूरा मन्दिर दिखाते है। बारह बजे शयन करते विष्णु मन्दिर के, कपाट बन्द होने का समय हो रहा था। वे हमें पहले उधर ही ले जाते है। फिर दूसरे देवी-देवताओं तक। हम जहाँ भी पहुँचते है, वहाँ के पुजारियो की व्यस्तता बढ़ जाती थी। आरती के लिए थाली सजा वे पूजा करने लगते। ऐसा शायद वे आनेवाले से आरती में कुछ प्राप्त करने के भाव से करते होंगे। लेकिन मुझसे उन्हें निराश ही होना पड़ा था। मन्दिर से बाहर निकलने से पूर्व विष्णु का शोभायात्रा निकालने वाला रथ दिखाया मेरे वृद्ध गाइड ने। वहाँ से हटकर एक साफ जगह बैठकर वह बोला, अब बस।"

मै उनके चेहरे की ओर देखने लगा। थकान स्पष्ट थी।

कुछ देर बाद वृद्ध बोले—"कुछ भात...।"

वृद्ध गाइड का अभिप्राय था कि मैं उन्हें भोजनार्थ कुछ दूँ। मैने पचीस रुपए दिए तो वह प्रसन्न हो गए। चेहरा खिल गया। शायद मैं उस दिन का पहला पर्यटक था। वहाँ न के बराबर पर्यटक जाते हैं। दिनभर में दो-चार। मन्दिर मे इतनी शान्ति थी कि कुछ देर ठहरने की इच्छा थी। लेकिन घड़ी अनुमति नही दे रही थी।

ऑटोवाला हमें सीधे रामनाथपुरम के 'रामलिंग विलासम' महल ले गया।

रविवार का दिन था। महल वन्द था। हमने महल के अन्दर जाकर कुछ चीजे देखी। लेकिन वहाँ सुरक्षित कलाकृतियाँ नही देख सका। ऑटो-ड्राईवर ने बताया कि वह महल महारानी के लिए बनवाया गया था। लौटते समय लोहे के सीखचो मे कैद पूर्ण आकार की शेर की स्वर्ण प्रतिमा दिखी, जिसके विषय मे ड्राईवर ने बताया कि वह विशुद्ध स्वर्ण-निर्मित है। आश्चर्य कि स्वर्ण की उतनी बडी प्रतिमा उतनी असुरक्षित। पता नही कितने किलोग्राम सोना होगा उस पर। एक भी चौकीदार-दरबान नहीं था वहाँ। तो क्या दक्षिण भारत का वह क्षेत्र डकैती, बटमारो, चोर-लुटेरों से रहित है। बिहार, उत्तरप्रदेश या दिल्ली होता तो--क्या छोटे-से ताले में कैद वह खुली स्वर्ण प्रतिमा उस तरह सुरक्षित रह पाती। और जैसा कि हमने परखा वह वास्तव में ही सोना था। इस बात ने मुझे प्रभावित किया और सोचने के लिए विवश भी कि दक्षिण आज भी उत्तर से बेहतर है।

हमने 'थयुमान स्वामी' की समाधि देखने की इच्छा जाहिर की। थयुमान स्वामी तमिलनाडु के महान दार्शनिक थे। जब हम वहाँ पहुँचे, तो वहाँ के प्रभारी पुजारी उस समय भक्तों के मध्य प्रवचन कर रहे थे। लगभग पच्चीस भक्त थे। उनके सहयोगी ने हमे समाधि-स्थल दिखाया और वह संग्रहालय भी जहाँ अनेक साधु-सन्तो और महात्माओ के चित्र थे और जिनके नीचे परिचय मात्र तमिल मे लिखा गया था। मैंने एक सुझाव भी दिया कि यदि उन महापुरुषो का परिचय हिन्दी और अंग्रेजी में भी हो तो किसी को बताने की आवश्यकता न होगी। दर्शनार्थी पढकर जान सकेगा। पुजारी मेरे सुझाव से सहमत हुए। चलने से पूर्व उन्होंने प्रसादस्वरूप मीठा पेय दिया, जो स्वादिष्ट था। उन पुजारी को इस बात से आश्चर्य हो रहा था कि उत्तर भारत का कोई पर्यटक 'थयुमन स्वामी' की समाधि देखने आया। वे बहुत प्रसन्न थे।

ऑटो-ड्राईवर ने जब हमे बस स्टैण्ड मे छोडा, दोपहर के दो बजे थे। वहाँ की कैण्टीन मे भात-सांबर खाकर हमने रामेश्वरम की बस पकड ली। कमरे मे दो घण्टे विश्राम कर हम शांय समय समुद्र तट पर गए और अंधेरा गहराने तक बेठे रहे थे।

अगले दिन तो हमें चल ही देना था।

सात अप्रैल को तीन पन्द्रह पर चेन्नै के लिए 'सेतु एक्सप्रेस' पकडनी थी। हम दो बजे ही स्टेशन पहुँच गए। छोटा-सा स्टेशन छोटी गाडी। सेतु प्लेटफार्म पर लगी हुई थी। चलने से आधा घण्टा पर्व डिब्बों में चार्ट लगाया गया। अधिकाश डिब्बे आगे के स्टेशनो से आरक्षित थे और द्वितीय श्रेणी के अधिकाश यात्री परेशान थे, क्योंकि उनका आरक्षण प्रतीक्षा श्रेणी में था।

सेतु आठ को सुबह सात बजे चेन्नै (एग्मोर) पहुँचती थी। प्रसिद्ध तमिल और हिन्दी लेखक डॉक्टर शौरी राजन ने दिल्ली से चलने से पूर्व मुझे लिखकर बताया था कि 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' त्यागराज नगर जाने के लिए हमे माम्बलम स्टेशन पर उतरना चाहिए। वहाँ से थ्यागराज नगर अर्थात् टी नगर निकट है। मेरे एक अन्य मित्र ने बताया था कि माम्बलम से पूर्व ताम्ब्रभम आएगा और वहाँ से गाडी लगभग आधा घण्टा चलेगी माम्बलम के लिए। रातभर की सुखद यात्रा के बाद सुबह छः बजे के लगभग ताम्ब्रभम स्टेशन आया। एक सहयात्री ने बताया कि वहाँ से चेन्नै की सरहद प्रारम्भ हो जाती है। हालाँकि अच्छी कालोनियाँ ओर साफ सडकें हमे पहले से ही दिखने लगी थी।

गाडी समय से माम्बलम पहुँची। डॉक्टर शौरी राजन ने मुझे कुछ और भी सूचनाएँ दी थी उसमे यह भी था कि टी नगर तक के लिए ऑटो वाला कितने पैसे लेगा या मुझे कितने देना चाहिए और उनका निर्देशन काम आया था। सवा सात बजे हम 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' भवन मे गेस्ट हाउस के सामने थे। प्रचार सभा के गेस्ट हाउस में तीन विस्तरों के कमरे के लिए मार्च के प्रारम्भ म मैने वहाँ की प्रशासनिक प्रभारी और निर्देशिका सुश्री एम.के बसंता से अनुरोध किया था। मुझे यह बताया गया था कि वसता जी साहित्यकारों का विशेष सम्मान करती है और यथासम्भव सुविधा प्रदान करती हैं। चेन्नै मे होटल महगे होंगे ऐसा आभास मित्रो ने दिया था। वरिष्ठ कथाकार डॉक्टर शिवप्रसाद सिह ने कार्यक्रम जानने के बाद सलाह दी थी कि मै डॉक्टर शौरी राजन से बात करूँ। डॉक्टर शौरी राजन का फोन नम्बर भी उन्होने दिया था। डॉक्टर शौरी राजन "दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा" मे हिन्दी प्रोफेसर रह चुके थे और वहाँ उनका आज भी प्रभाव है, ऐसा 'नीला चॉद' के लेखक ने कहा था।

एक दिन मैंने डॉक्टर शौरी राजन के घर चेन्नै फोन मिला दिया। फोन उनकी पत्नी ने उठाया। वे तमिल बोल रही थीं और मै अंग्रेजी। अन्ततः फोन डॉक्टर शौरी राजन के हाथ मे गया तो मैंने अपना परिचय देते कहा, "आप मुझे तो नहीं जानते होगे। परिचय इतना ही कि में हिन्दी का एक अदना लेखक हूँ।"

"अरे साहब, आप कैसे कहते है कि आपको नही जानता। मैने आपका उपन्यास 'रमला बहू' पढा है...बहुत अच्छा...रोचक उपन्यास है...मै उसे भूला नही...भूल भी नहीं सकता.. फिर आपको कैसे नही जानता।" डॉक्टर शौरी राजन विना रुके बोले थे।

मैं चौंका था, मेरा उपन्यास—'रमला बहू' एक तमिलभाषी हिन्दी प्रेमी के पास। मैं गद्‌गद था। हिन्दी में आलोचको और मेरे कुछ मित्रो ने योजनाबद्ध ढग

से जिस प्रकार उसकी उपेक्षा का प्रयास किया था, उससे मै आहत था। लेकिन चेन्ने के उस बुजुर्ग रचनाकार ने जब उपन्यास की प्रशसा की तो मुझे लगा कि कोई कितना ही किसी कृति को दवाने का प्रयत्न करे, रचना को उचित स्थान प्राप्त करने से कोई रोक नही सकता। विलम्ब भले हो।

डॉक्टर शौरी राजन ने ही मुझे सुझाव दिया कि मै सुश्री वसताजी से बात करूँ। वे भी कह देंगे।

उसी दिन सुश्री बसता जी से मेरी बात हुई थी और उन्होंने मुझे आश्वस्त किया था। उसी आश्वासन की डोर थामे मै सवा सात वजे गेस्ट हाउस के सामने सामान सहित उपस्थित था (ऑटो जा चुका था)। कोई व्यक्ति दिख नहीं रहा था, जिससे सुश्री बसता जी के विषय में पूछता। यह सूचना थी कि वे गेस्ट हाउस मे ही एक कमरे मे रहती है।

कुछ देर बाद माली दिखा। दरअसल गेस्ट हाउस के सामने सचिव ओर अध्यक्ष के मकान हैं। मैंने माली को अपना परिचय दिया और पूछा कि गेस्ट हाउस का कोई चौकीदार हो तो उसे बुला दे। डॉक्टर शौरी राजन ने कहा था कि चौकीदार ही सारी व्यवस्था देखता है। लेकिन ऐसा चौकीदार न था। जव मैने बसता जी के विषय में पूछा तो उसने कमरा नम्बर चार की ओर इशारा कर दिया। कमरा नम्बर चार पहली मजिल में था। बसता जी पाँच नम्बर कमरे म रहती थीं। एक महिला ने आवाज सुन ली थी। मै जैसे ही ऊपर पहुँचा उन्होने कहा, “बसता जी स्नान कर रही हैं...अभी आती है।”

थोडी देर बाद वही महिला एक लड़के को लेकर वापस लौटीं और बोली, “यह आपको कमरा दे देगा.. मै बाद में मिलती हूँ।” और वह तेजी से पॉच नम्बर कमरे में जा घुसी। सब कुछ रहस्यमय लगा था।

बाद मे ज्ञात हुआ वही सुश्री बसंता जी थी। उस दिन तमिल का नया वर्ष का दिन था। तमिलनाडु मे अवकाश था। लोगों ने अपने दरवाजे अल्पनाएँ वनाई थी। बसता जी ने भी कमरे के बाहर अल्पना वना रखी थी।

लड़के ने हमारे लिए चार नम्बर कमरा खोल दिया। दो पलंग, अस्पतालों वाले और गद्दो के ऊपर चादरें भी नही थी। कमरा गर्म और दम घोंटू। लेकिन आश्चर्यजनक रूप से उसका बाथरूम और टायलेट बडे थे।

होटल में जाने का समय नही था। “रात मे सोना ही तो है” सोचकर हम नहाने की तैयारी करने लगे।

“वन मोर बेड” सकेत मे उस लडके से कहा। दस बजे हमारे घूमने के लिए निकलने तक उसने वेड की व्यवस्था नही की। हॉ, बसता जी के निर्देश

पर पीने का पानी अवश्य भर गया था। कमरो मे धूल थी और चारो ओर जाले लगे थे। मैं काफी अजीब महसूस कर रहा था और त्रिवेन्द्रम मे "केरल हिन्दी प्रचार सभा" के लोगों और चेन्नै के "दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा" के लोगों की मन-ही-मन तुलना कर रहा था। इसमें सन्देह नही था कि वसता जी एक नेक अधिकारी हैं, लेकिन 'प्रचार सभा' के कर्मचारियो पर उनकी पकड़ मजबूत नही है। चेन्नई के महत्वपूर्ण स्थलों को देखने जाने से पूर्व वे मेरे पास आई और लगभग आधा घण्टा तक विभिन्न विषयों मे बातें करती रहीं। मधुर भाषिणी, दुबली-पतली वसता जी चेन्नई आने से पूर्व केरल में एर्नाकुलम में थी और केरल के लोगों के प्रति उनके मन मे काफी क्षोभ था। सम्भवतः उन्हें वहाँ पर्याप्त उन्नति का अवसर नहीं मिला था। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि विश्वविद्यालय का दर्जा पा जाने के कारण 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' मे अव्यवस्था हो गई है।

"मै कहॉ जाने के लिए तैयार हूँ?" बसंता जी ने पूछा।

"चेन्नै साइट सीन्स के लिए।" कुछ रुककर बोला, "शायद स्टेशन के पास कहीं टी.टी.डी.सी. का कार्यालय है।"

"आप वहाँ तक क्यों जाते है.. अन्ना सलाई मे भी एक कार्यालय है पाण्डी बाजार से चार-पाँच किलोमीटर है अन्ना सलाई...हम लोग तो पैदल चले जाते है।"

"पॉण्डी बाजार...।"

"अरे पास मे ही है. .प्रचार सभा के सामने की सडक पर सीधे चले जाइए...पॉच मिनट.. वहॉ से बस भी मिल जाएगी...अन्ना सलाई को माउण्ड रोड भी कहते है।" सामने से 'प्रचार सभा' के कोई सहयोगी सज्जन आते दिखे। उन्हें सम्बोधित कर बोलीं, "आप अब आ रहे है...कब से पूजा के लिए प्रतीक्षा कर रही हूँ। और लोग कहाँ है.. ?" और जैसे ही उनकी दृष्टि जीना चढते दूसरे लोगों, जिनमें कुछ छात्र-छात्राऍं भी थे, पडी, बसन्ता जी किलक उठीं और हाथ जोड मुझसे बोली, "चलूँ आज नए वर्ष की पूजा करनी है . फिर शाम को मिलेंगे।" ओर वे आगतों के साथ अपने कमरे की ओर लपक गई।

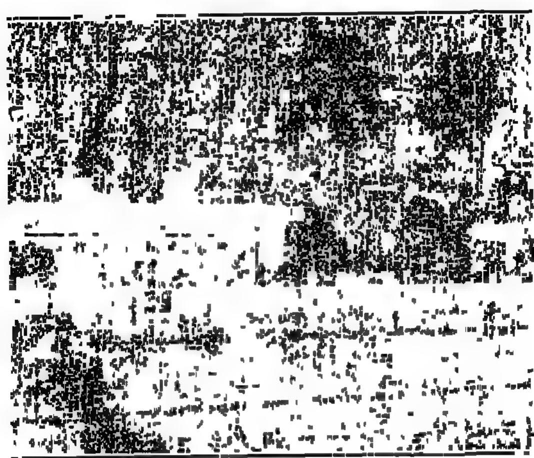
चेन्नपट्टणम बना चेन्नै

तमिलनाडु की अपनी कुछ विशेषताएँ है और शायद उन्ही के कारण आज भी वहाँ की सस्कृति अक्षुण्ण हैं। इसे अन्ध-विश्वास ही कहा जाएगा, लेकिन इसी सबने उनका तमिलपन बचाया हुआ है। वहाँ साडी खरीदने, मकान बदलने, जन्म, विवाह अर्थात् जीवन के लगभग हर क्षेत्र के कार्यो को आज भी मुहूर्त देख, पूजा-पाठ, कर्मकाण्ड के पश्चात् ही सम्पन्न किया जाता है।

भाषागत आधार पर कर्नाटक, आध्र प्रदेश, केरल और तमिलनाडु के बटवारे से पूर्व दक्षिण भारत के इस पूरे क्षेत्र को मद्रास नाम से जाना जाता था और अन्य प्रातों में यहाँ के सभी भाषा-भाषियो को मद्रासी ही कहा जाता था। और मद्रास ही इसकी राजधानी थी।

कहते हैं पहले यह मछुआरो की छोटी-सी बस्ती थी। पुर्तगालियो ने मैलापुर मोहल्ले के समुद्रतट पर शांयोग में अपना केन्द्र स्थापित किया था। उस समय इसका नाम चेन्नपट्टणम था। उस समय वह छोटे-छोटे गाँवो का समूह और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का केन्द्र था। 1639 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रधान फ्रासिस डे ने यह क्षेत्र हंपी के अन्तिम विजयनगर शासक चन्द्रगिरि से 'लीज' पर लिया था। 1640 मे नगर के उत्तर में उसने एक किले का निर्माण करवाया, जिसे "सेन्ट जार्ज किला" कहा गया। पहले यह किला अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का केन्द्र रहा, किन्तु बाद मे अगले सौ वर्षो तक यह दक्षिण भारत के इतिहास का साक्षी बना। यही से दक्षिण भारत पर ब्रिटिश हुकूमत की जाती रही। आज यह शहर भारत का चौथा प्रमुख नगर है और दूसरे महानगरो की भाँति तीव्र गति से इसके क्षेत्रफल और आबादी का विस्तार हो रहा है। यह बंगाल की खाडी के तट पर मीलो दूर तक फला हुआ ह समुद्र के किनारे सुन्दर चौडी सडक बनी हुइ ह वह साफ

सुथरी और पेड़-पौधो से सजी सडक है। कूउम नदी इस श
निकलती है और आरपार नदी दक्षिणी भाग को दो भागों



है। ऐनिहासिक 'बकिंघम कैनाल' (नहर) समुद्री तट के स
शहर से लम्बाई मे होकर गुजरती है। यकीनन इस शहर
स्थल देखने के लिए पर्याप्त समय की आवश्यकता थी।
था कि तमिलनाडु टूरिज्म डेवलपमेण्ट कार्पोरेशन की बसे लग
देती हैं। वाहरी पर्यटक को इससे अधिक सुविधा क्या हो स
से निकलकर हम पूछते पॉण्डी बाजार के बस स्टैण्ड पर
का वह दिन काफी गर्म था। धूप तीखी थी और मौसम

ग्यारह नम्बर बस लेकर हम माउण्ट रोड पहुँचे।

पुल के पास उतरकर हमने सडक क्रॉस की और टी
के पास पहुँचे। मै वहाँ बैठे दरबान से पूछने ही वाला था
"अन्दर आइए सर,...टी.टी.डी.सी का दफ्तर अन्दर है।"

"आपको कैसे मालूम कि मुझे वहीं जाना है?"

"हम जान जाते हैं सर कि कौन टूरिस्ट है...आपको
है .अन्दर आइए।"

हम अन्दर जाते हैं। छोटा-सा दफ्तर-वातानुकूलित। म
लुगी पर हाफ शर्ट पहने लम्बे-चौडे शरीर का व्यक्ति एक
रग काला चेहरा गोल चौडा हँसता तो श्वेत दाँत चमक

ाक दिख रहा था। उम्र होगी कोई चालीस के लगभग। मेरे साम
एक युवती बैठे थे। उनके सामने सोफा था, जिस पर हम बैठे
यहाँ बैठना अच्छा लग रहा था।
शीशे के केबिन मे प्रबन्धकनुमा वह काला व्यक्ति दो व्यक्तियों
येक बातें करता दिख रहा था।
जाना है सर?" सामने बैठे युवक ने अंग्रेजी मे पूछा।
दोपहर बाद स्थानीय और कल के लिए महाबलीपुरम यानी मम्मालपु
ाहिए।
कहीं फोन मिलाता है। मै अनुमान करता हूँ कि वह टी. टी. इ
स्टल कार्यालय बात कर रहा है। मुख्य कार्यालय वहीं है। वह दो
वहाँ से बुकिंग तय करता है, सीट नम्बर लेता है और हमारी टिक
है। मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि वह टी. टी. डी. सी.

देता वह कहता है, "आप एक बजे यहीं आ जाएँ....बस यहाँ
े चलेगी।"
कल कितने बजे और कहाँ पहुंचना होगा महाबलीपुरम की बस

सुबह पाँच बजकर चालीस मिनट पर यहाँ आ जाइए या छ ब



सेण्ट्रल रेलवे स्टेशन के सामने ''यूथ होस्टल'' पहुँचिए। छ- बीस पर चली जाएगी।''

''पॉच चालीस या छ मै मन-ही-मन उलझन में पडता हूँ, फिर सोचता हूँ ''घूमना है तो पहुँचना ही होगा।''

बाहर निकलकर चौकीदार से पूछता हूँ पास किसी होटल-रेस्तरॉ के विषय मे जहॉ भोजन कर सकूँ। वह गली मे एक होटल बताता है। फिर कहता है ''सामने चले जाइए वहॉ ''प्लॉजा'' मे.. . अच्छा होटल है फुल्ली एयरकडीसण्ड।''

हम सीधे सडक पर चल देते है। ''प्लाजा'' का विचार नहीं हैं। केवल बैठने के पैसे देने की इच्छा नहीं है। वह तो पूँजीपतियो और भ्रष्ट-कमाईवालो के लिए हे। हम चलते जाते है. अंतहीन दिख रही यात्रा ..आसपास कही होटल नही दिखता। एक-दो राहगीरो से पूछता हू, वे और आगे जाने का इशारा करते हे। ओर लगभग पचीस मिनट चलने के बाद हमे एक होटल दिखता है। चावल-सॉभर मिलता है, वह भी इतना खराब कि खाना कठिन है। भोजन कर निकलते हे तो बारह बीस बजे थे। टी. टी. डी. सी. कार्यालय के कुछ पूर्व एक दुकान दिखती हे, आइसक्रीम मिल्क की। कुछ बैठने की इच्छा और कुछ खा-पी लेने का भाव . हम अन्दर दाखिल होते हैं। वातानुकूलित हैं। अच्छा लगता है। बच्चे आइसक्रीम खाते है और हम बटर-मिल्क लेते हैं यानी मट्टा। एक बजे उठकर टी. टी. डी. सी कार्यालय। एक दम्पति छोटे बच्चे के साथ बैठा दिखता है।

बस मे दो विदेशी युवतियाँ पहले से ही मौजूद थी। एक की उम्र लगभग पेतीस, शरीर ढीला, सामान्य और दूसरी लगभग बीस-बाइस, रग ताम्बई... (लग रहा था कि वह भारतीय है), बदन इकहरा, स्वभाव से चुलबुली और हॅसमुख। सात-आठ मिनट की ड्राइव के बाद गाड़ी यूथ होस्टल के बाहर जा लगती है। वहॉ लगभग तीस-पैंतीस लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं।

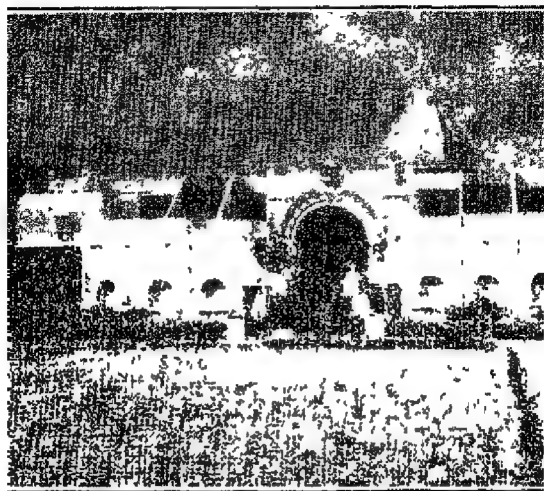
गाइड हमें उन स्थानों की जानकारी देता है, जिन्हे उसे दिखाना है। सबसे पहले वह हमे सेन्ट जार्ज फोर्ट ले जाता है। इस किले को 1640 ईसवी में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने बनवाया था। लगभग 150 वर्षो तक यह किला दक्षिण भारत की राजनैतिक उथल-पुथल का केन्द्र रहा। अनेक राजनैतिक षडयन्त्र यहॉ रचे गए और अनेक युद्धों का वह गवाह बना। उसके बाद यह ब्रिटिश और फ्रांसीसियो के अधिकार में रहा। 1749 में इस किले में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए थे। छः मीटर ऊँची दीवारों वाले इस किले पर 1701 में औरगजेब के जनरल दाउद खान ने हमला किया था। मराठों ने 1741 में और हैदर अली ने कई बार इस पर आक्रमण किए थे। फ्रांसीसी एडमिरल ला बोर्डोनोइस के हमले से घबराकर 1746 में अंग्रेजों को दो वर्षो के लिए इस किले से अलग रहना पडा था। आज

इसमें तमिलनाडु के विधानसभा, विधान-परिषद तथा राज्य सचिवालय के कार्यालय हैं।

इस किले के इतिहास के साथ एक दिलचस्प बात यह है कि प्रारम्भ में रावर्ट क्लाइव यहाँ ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया साम्राज्य का संस्थापक और गर्वनर बना था। किले में बने संग्रहालय में प्रवेश करते ही सीढ़ियों के पास लार्ड क्लाइव की आदमकद प्रतिमा के दर्शन होते हैं, जो इस बात का प्रमाण है कि हमारे शासक अब भी मानसिक रूप से अंग्रेज और अंग्रेजियत की गुलामी से मुक्त नहीं हो पाए। दरअसल किले के जिस भवन में संग्रहालय बनाया गया है वह लार्ड क्लाइव का निवास था। किले के अंदर पुरानी सैनिक छावनी, अधिकारियों के मकान और ऐतिहासिक महत्त्व की अनेक इमारतें हैं। यहीं "सेण्ट मेरी" का गिरजाघर भी है, जिसका निर्माण 1680 में किया गया था। इसे अंग्रेजों द्वारा निर्मित इस उपमहाद्वीप का सबसे पुराना गिरजाघर कहा जाता है।

संग्रहालय में ईस्ट इण्डिया कम्पनी और भारत में ब्रिटिश राज्य सम्बन्धी अनेक वस्तुएँ सुरक्षित रखी हुई हैं। यहाँ कार्नवालिस से लेकर जार्ज पंचम, उनकी पत्नी आदि के पोर्ट्रेट हैं। वहाँ कहीं भी हैदरअली, मराठा वीरों या दूसरे भारतीय वीरों के चित्र देखने को नहीं मिले। एक दो स्थानीय मुसलमान बादशाहों के चित्रों को छोड़ पूरा संग्रहालय ब्रिटिश हुक्मरानों के चित्रों, उनके परिधानों, अस्त्र-शस्त्रों को ही प्रदर्शित कर रहा है। कितना दुर्भाग्यपूर्ण है यह सब।

टूरिस्ट बसों में घूमने जाने में समय का संकट रहता है। निश्चित समय में सेण्ट जार्ज फोर्ट देखकर हम पैंथियन कॉम्पलैक्स की ओर बढ़ रहे थे। यह पैंथियन रोड पर स्थित है कॉम्पलैक्स में दक्षिण भारतीय वस्तुओं का संग्रहालय, राष्ट्रीय कला दीर्घा तथा "कोन्नीमारा पब्लिक लाइब्रेरी" है। कला दीर्घा में नई व पुरानी चित्रकलाओं का अच्छा संग्रह है। यहाँ राजपूत, मुगल और दक्षिण भारतीय शैली की कुछ दुर्लभ चित्रकलाएँ दर्शनीय हैं। यह गैलरी विक्टोरिया काल से गोथिल भवन में है। संग्रहालय में भिन्न विभाग हैं। पुरातात्विक विभाग में तीन हजार वर्ष ईसापूर्व तक से लेकर आज तक की सैकड़ों महत्त्वपूर्ण मूर्तियों, वस्तुओं और शिलालेखों को प्रदर्शित किया गया है। सूर्य, कार्तिकेय, गणेश, मीनाक्षी बुद्ध की अनेकानेक मूर्तियाँ हैं। यह संग्रहालय सौ वर्ष पुराना है। इसमें सर्वाधिक प्रभावित करनेवाली वस्तुओं में अमरावती के बौद्ध स्तूप से मिले दूसरी शताब्दी के मूर्तिशिल्प हैं। इसके अतिरिक्त पल्लव, चोल और पांड्य राजाओं के समय की कलाकृतियों के दुर्लभ नमूने भी यहाँ हैं। यही नहीं ज्योलोजिकल [illegible] आदि विभागों का देखने समझने के लिए लगभग आधा दिन का समय चाहिए मात्र डेढ़ घण्टे



वैल्लूअरकोट्टम

मे आधी-अधूरी चीजे ही देखी जा सकती हैं। वहाँ आश्चर्यच
डायनासोर का ककाल छत से इस प्रकार लटकाया गया हे ि
हे कि वह कभी भी चल देगा। पास ही एक विशालकाय ह
ढॉचा खडा है। शेर, चीता, हिरण, पक्षियो से लेकर बिल्ली, ल
सुरक्षित रखा गया है कि वे बोलते से प्रतीत होते है। शेर
अनुभूति होती कि वह अभी दहाड उठेगा।

चीजे अभी बहुत देखनी है, लेकिन समय है कि कम
निकलते-निकलते हम संग्रहालय के उस हिस्से को भी देख ले
ब्रिटिशकाल के सिक्के पदक, बर्तन, परिधान और तलवारें-
वहुत कुछ देखने से रह जाता है, क्योकि हमे वेल्लुवर को

दक्षिण भारत और पश्चिमी बगाल इस देश के उन
अपने राजनेताओं को सिर-माथे पर बैठाने मे आगे
कलाकारो-साहित्यकारो को भी सम्मान देते हैं।

थिरुवेल्लुवर एक प्रसिद्ध तमिल कवि और सत थे। उन
तेतीस मीटर लबे रथ में रखी है। यह रथ थिरुवर के प्रसि
मे बनाया गया है, जो 1976 मे बनकर तैयार हुआ था। रथ
से हमे कोणार्क के सूर्य मदिर की याद भी आ जाती हे।
में पवित्र ''थिरुक्कुरल'' ग्रंथ के एक सौ तैंतीस अध्यायो क
चित्रित किया गया है यहाँ का जिसे 'वेल्लु

कहा जाता है और बकौल हमारे गाइड यह एशिया का सबसे बडा प्रेक्षागृह है। प्रेक्षागृह का कार्य अभी चल रहा है और अनुमानत एक वर्ष से ऊपर समय लगने की सम्भावना है। मुख्य द्वार से प्रवेश करते ही खूबसूरत लॉन पर से होकर गुजरना सुखद अनुभव है। प्रेक्षागृह के ऊपर सीढियों पर बैठ कर ठण्डी हवा का आनद लेने की प्रबल इच्छा को दबाना पडता है। मन गदगद है। "थिरुवल्लुवर" के समक्ष सिर झुकाता हूँ। मुझे जनकवि सुब्रमण्यम भारती और नागार्जुन की याद आती है और मन में बाबा की "अकाल और उसके बाद" कविता गूँजने लगती है।

"कई दिनो तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनो तक काली कुतिया सोई उनके पास
कई दिनो तक लगी भीत पर छिपकलियो की गश्त
कई दिनो तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त
दाने आए घर के अन्दर कई दिनो के बाद
धुऑ उठा ऑगन के ऊपर कई दिनो के बाद
चमक उठीं घर-भर की ऑखे कई दिनो के बाद
कौए ने खुजलाई पॉखे कई दिनो के बाद

बस तिरुवैलिकेरी स्थित पार्थसारथी मंदिर की ओर जा रही है। गाइड बताता है कि पार्थसारथी मंदिर का निर्माण आठवीं शताब्दी मे एक पल्लव राजा ने करवाया था। बाद मे चोल, पाड्य और विजयनगर के राजाओं ने इस मन्दिर की समुचित देखभाल और सुरक्षा की थी। मन्दिर की दीवारो पर आकर्षक शिल्पकारी है। मंदिर से कुछ दूर एक शोरूम के सामने बस खड़ी हो जाती है। गाइड बताता है कि वह सरकारी मान्यता प्राप्त शोरूम है और वहॉ खरीददारी की जा सकती है। सैलानी शोरूम के अन्दर। मद्रासी सिल्क और कॉटन की साडियॉ...यात्रियो मे बिहार से आए बरनवाल नवविवाहिता पत्नी और मॉं-बाप के साथ है। वह मध्यम कद का गदबदे बदन का लगभग तीस वर्षीय युवक अपने पिता के सामने पत्नी की कमर में हाथ डाल अन्दर ले जाता है और साड़ियॉ देखने मे झुक जाता है। उसका पिता धोती-कुर्त्ता मे दुबला-पतला पैसट के आसपास का व्यक्ति, जिसके अधिकॉश दॉत गिर चुके हैं। मात्र दो दॉंत हैं जो हँसते समय बाहर झांकने लगते है। मॉ साठ के आसपास और काफी चैतन्य। सबकुछ भरपूर देख लेने की ललक और अधिकाधिक जानकारी समेट लेने की इच्छुक। जहॉ भी ऐसा अवसर होता बरनवाल परिवार आगे...। बेटा-पत्नी को लिए साड़ी देखने पहुँचता है तो पिता-मॉ पीछे पहुंच जाते है। बेटा ध्यान नहीं देता। वह पत्नी को प्रसन्न करने मे व्यस्त है विदेशी युवतियॉ सकुचित शोरूम के अदर टहल रही हैं वहॉं साडिया अच्छी

कम मँहगी अधिक है। कुछ पंजाबी सूट भी टँगे है। दुकानदार उनकी ओर आकर्पित करता है। लेकिन जब उसे ज्ञात होता है कि हम दिल्ली से आए हैं वह सकुचा जाता है। जब हम शोरूम से बाहर निकलते हैं, अधिकाश सैलानी खाली हाथ होते है। बरनवाल की भाँति दो-तीन के हाथों मे ही पैकेट होते है

"पार्थसारथी मदिर" विष्णु को समर्पित है। हमें बस से मदिर तक नगे पॉव जाना होता है। सडक से बाएँ हाथ अपेक्षाकृत कम चौडी सडक पर मन्दिर था। कुछ फल वाले सडक के किनारे बैठे थे, लेकिन वे मँहगे थे। मन्दिर देखने मे हमे बीस मिनट लगते है। गर्मी का प्रभाव कम नहीं। कुछ ठण्डा खाने की इच्छा। हम बाहर निकलते है तो मुख्य द्वार पर खीरा बेचते एक युवती दिखती है। खीरा खरीद लेता हूँ। शायं पॉच से ऊपर का समय हो रहा है। मुझे यह बात सदैव पीड़ित करती रही कि विदेशियों को मन्दिर के गर्भगृह मे प्रवेश करने से गाइड यह कह रोक देता है, "मैम ओनली हिन्दूज आर एलाउड।" बसुधेव कुटम्बकम का पाठ पढाने वाला सर्व-धर्म समभाव की मान्यता को प्रचारित करने वाला यह देश आज भी इतना असहिष्णु क्यो है कि वह मानव को देसी-विदेशी, हिन्दू-मसलमान, सिख-ईसाई आदि मे बॉटकर देखता है। कहीं मन्दिर में स्त्रियो को प्रवेश से रोका जाता हे तो कही अहिन्दुओं को। लम्बा इतिहास है इस बात का कि इसी देश मे दलितो को अस्पृश्य मानकर मन्दिरो मे प्रवेश से रोका जाता रहा। कुओं से पानी लेने, तालाबो के निकट फटकने से रोककर हमने जो क्रूरताएँ दलितों के प्रति कीं, क्या विदेशी सैलानियों को मन्दिर के अन्दर जाने या गर्भ-गृह प्रवेश करने से रोककर नहीं कर रहे। फिर हम किस आधार पर विदेशी पर्यटकों को आकर्पित करने की बात करते है। क्या वे मन्दिर का मात्र बाह्य देखने के लिए हजारों किलोमीटर की यात्रा कर वहॉ आएँगे। उन विदेशी युवतियो को रोके जाने से मन में जो पीडा हुई शायद वही कारण बना होगा कि मैं भी अन्दर नहीं गया। पत्नी बच्चो ने देखा। जिस समय गाइड उन दोनो युवतियो को मना कर रहा था, उनका चेहरा देखने योग्य था। मैंने उन पर से नजरें हटा ली थी।

हमारा अन्तिम पडाव था "मैरीना बीच"। यह विश्व का दूसरा सबसे लम्बा बीच है। इसके एक ओर शानदार इमारते हैं। "बीच" के साथ-साथ चौडी साफ-सुथरी सडक है। सड़क और रेतीले क्षेत्र के मध्य हरियाली पट्टी और गाडियॉ पार्क करने के लिए पतली सड़क है। टी. टी. डी. सी. की गाडी सडक के एक ओर खड़ी कर गाइड हमें वहॉ रुकने के लिए एक घण्टे का समय देता है। अर्थात् उसे साढे छः बजे चल देना है।

समुद्र तट तक पहुँचने के लिए दो सौ गज रेत पर चल कर जाना होता

है। विश्व का इतना लम्बा "बीच", इतना प्रसिद्ध और आश्चर्य वहाँ लोगों की संख्या अत्यन्त क्षीण। मुझे बताया गया कि वहाँ शार्क मछलियो का आधिक्य है। इसलिए समुद्र मे स्नान करना खतरनाक है और इसीलिए सैलानी वहाँ प्राय कम ही टिकते है। मै कोवलम "बीच" जैसा दृश्य ढूँढता हूँ, किन्तु न तो "बीच" मे वह सौन्दर्य है और न ही समुद्र मे वह उद्वेलन। लहरें आ तो रही हैं तीव्रगति से लेकिन तट तक आते-आते वे हॉफ उठती हैं।

विदेशी महिलाएँ तट पर ही खड़ी रह जाती हैं। कुणाल-मालविका पानी मे भीगना चाहते है। चले जाते हैं। बरनवाल परिवार पानी में उतर गया है। बेटा, माँ-पिता और पत्नी के चित्र ले रहा है। वह किसी व्यक्ति को पकड़कर उससे फोटो खींच देने का आग्रह कर रहा है। व्यक्ति तैयार हो गया है। बरनवाल पत्नी के कंधे पकड़ खड़ा हो जाता है। माँ-पिता हँस रहे है। और अपरिचित उन्हे उनके केमरे में कैद कर देता है। बरनवाल विदेशी युवतियो से अनुरोध करता है कि वह उनके साथ चित्र खिंचवाएँ और वे हँसती-खिलखिलाती तैयार हो जाती है।

दोनों विदेशी महिलाएँ लौट आती हैं। मेरे निकट खड़ी हैं। मैं ताम्बई रगवाली युवती से पूछता हूँ...."आपने "कोवलम बीच" देखा है?"

"ओह कोवलम ... !" युवती खिलखिला उठती है। मुझे उसका खिलखिलाना, उसकी निर्छद्म अल्हड़ता अच्छी लगती है। वह अपनी मित्र से कोवलम के विषय मे बताती है और सिर हिलाकर स्वीकारती है कि उसने कोवलम बीच देखा है।

हम लौट जाते है रेतीली जमीन पर पैर धँसाते। 'बीच' के सामने "मद्रास विश्वविद्यालय", "चीपाक पैलेस", "आइस हाउस" तथा "पुलिस मुख्यालय" भवन है। कुछ दूर पर स्वीमिंग पूल और मछली घर बने है। एक शानदार उद्यान है। इसी उद्यान मे अन्नादुराई की समाधि है। एम. जी. आर. अर्थात् लोकप्रिय मुख्यमन्त्री एम. जी. रामचन्द्रन की समाधि भी अन्नादुराई की समाधि के निकट ही है।

शाम विश्वविद्यालय से नीचे उतर रही है। सडक पर वाहनों का आगमन बढ़ गया है। "बीच" के निकट की पतली सडक पर एक युवती "हीरो होण्डा" सीख रही है। उसका पिता उसे गाइड कर रहा है। शाम के नीचे उतरने के साथ ही "बीच" मे चहल-पहल बढने लगी है। रेत में अनेक रग-बिरगी छतरियाँ उतर आई है। आइसक्रीम वाले तेजी से ठेले घसीटते उस ओर बढ रहे हैं। जिधर लोग परिवार के साथ बैठे है। दोनों विदेशी युवतियाँ हरी घास पर जा बैठी है। गाइड और ड्राइवर का पता नहीं है। बरनवाल का पिता और माँ आइसक्रीम खा रहे है और वह पत्नी की कमर मे हाथ डाले भुट्टा भुनवा रहा है। उसे देख दो ओर

यात्री भी बच्चो के साथ भुट्टा लेने दौड़ जाते है।

हम घास पर बैठकर बस चलने की प्रतीक्षा करने लगते है। थकान है। नहाने की इच्छा है। बस हमें यूथ होस्टल से काफी पहले उतार देती है। हम निर्णय नही कर पाते कि टी. नगर कैसे जाएं। पहले बस की प्रतीक्षा करते है। लेकिन ऊबकर ऑटो लेते हैं। ऑटोवाला घुमाता रहता है और कई बार ऐसे सुनसान जगहो से गुजरता है कि हमे उसकी नीयत मे खोट नजर आने लगती है। आठ बज चुके है। यदि वह कही सुनसान जगह ऑटो रोककर अपने दो-तीन साथियों को ले आए तो.. । दिल्ली मे प्राय. ऐसा होता है। मैं परेशान हूँ। एक बार वह टी. नगर मे प्रवेश करता है। हम उससे आग्रह करते है कि यदि उसे "दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा" नहीं मालूम तो रोककर किसी से पूछ ले, लेकिन वह दौडाता रहता है। वह पाण्डी बाजार से निकलता है और आश्चर्य की बात कि वह "प्रचार सभा" के पास से निकल जाता है। आधा घण्टा से ऊपर हो चुका है, जबकि स्टेशन से बमुश्किल पन्द्रह मिनट की दूरी पर है। दो तीन बार टोकने के बाद वह जब "प्रचार सभा" पहुँचता है, रात साढे आठ बज चुका होता है।

मन्दिरों के नगर में

रात ढाई बजे नींद खुल गई। सुबह छ वजे "यूथ होस्टल" पहुँचने की चिन्ता है। सोने का प्रयत्न करता हूँ, लेकिन नींद गायव है। जागता रहता हूँ। चार बजे स्नानकर पत्नी बच्चों को जगा देता हूँ। और सवा पॉच वजे हम "प्रचार सभा" क गेट पर होते है। चौकीदार हमे पहचान गया है। उसे वताता हूँ कि हम महाबलीपुरम जा रहे है। ऑटो लेकर पॉच बजकर चालीस मिनट पर टी. टी. डी. सी. के "यूथ होस्टल" पहुँच जाता हूँ। पत्नी को जल्दी पहुँच जाने की शिकायत है। हम पास की दुकान पर चाय पीते है। बच्चो के लिए विस्कुट आदि खरीद लेता हूँ।

बस जब कॉचीपुरम के लिए चली तब तक चेन्नै शहर पूरी तरह जाग चुका था। सडक पर दौड़ते वाहन और पैदल चलते लोगों की सख्या यह बता रही थी कि शहर दिल्ली से होड़ लेने में पीछे नही है।

शहर को चीरती कउम नदी के ऊपर से गुजरते मुझे यमुना का स्मरण हो आया। लेकिन आज दुर्भाग्य है इस नदी का कि यह बडी नहर मात्र होकर रह गई है, जिसमे फैक्ट्रियों का गन्दा पानी वहता रहता है। नदी के आर-पार बसी कालोनियाँ भी दिल्ली की याद दिलाती हैं। चेन्नै से बीस-बाइस किलोमीटर दूर कॉची के मार्ग म वह गॉव है जहॉ इक्कीस मार्च 1991 को राजीव गांधी किसी अन्तर्राष्ट्रीय षडयन्त्र का शिकार बने थे। दूर से ही बस के गाइड श्री वेणु गोपाल ने बताया कि "कुछ ही देर में हम पेरम्बदूर पहुँचने वाले हैं।" सड़क किनारे खुले मैदान मे राजीव गांधी के लिए मच तैयार किया गया था। उसके ठीक सामने सडक के दूसरी ओर श्रीमती इंदिरा गांधी की आदमकद प्रतिमा स्थापित है। जिस स्थान पर राजीव गांधी की हत्या हुई थी वहॉ उनकी समाधि बनाई जा रही थी काम जारों पर चल रहा था पत्थरा को जमाया जा रहा था और मेरा अनुमान

को दिए जाने का प्रयास किया जा रहा था।

बस पाँच मिनट रुकी। हम सबने बस मे बैठे ही उस स्थान को देखा। मन बोझिल हो उठा।

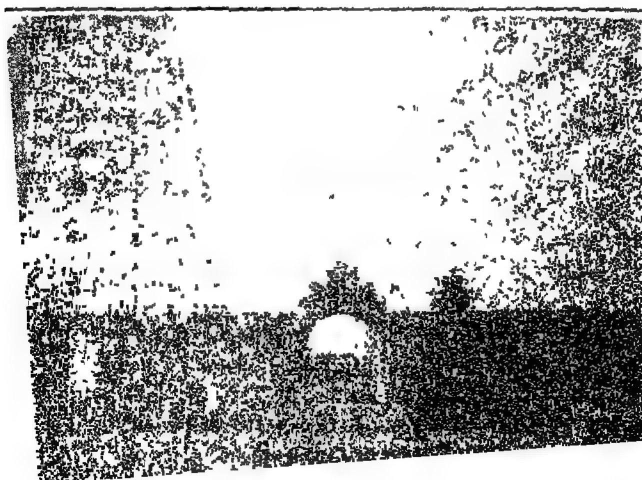
आठ बजे के लगभग बस काँचीपुरम के निकट पहुँची। दूर से ही श्वेत सगमरमर के कई मन्दिर दिखने लगे थे। लेकिन वेणुगोपाल ने स्पष्ट कर दिया, "कांची से हमें महाबलीपुरम भी जाना है ..समय को ध्यान मे रखते हुए मैं आपको तीन प्रमुख मन्दिर दिखाऊँगा।"

यात्री वेणुगोपाल के चेहरे की ओर देखने लगे। इस यात्रा मे वरनवाल परिवार भी था। वह सीट से उचक गया और कुछ प्रश्न करने की भगिमा बनाने लगा। लेकिन इस बात का अवसर न दे वेणुगोपाल बोला, "शिव काँची, शक्ति काँची और विष्णु काँची। ये तीन मन्दिर यहाँ की विशेषता हैं। इनका शिल्प और कलात्मक सौन्दर्य मुग्ध करने वाला है।" कुछ रुककर वह आगे बोला, "पहले हम शिव काँची चलेंगे. यह मन्दिर शिव को समर्पित है।"

काँचीपुरम भारत की सप्त-पुरियों—अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काँची, अवन्ती और द्वारका मे से एक है। चेन्नै से इकहत्तर किलोमीटर दक्षिण-पश्चिमी मे यह नगर कई शताब्दियो तक पल्लव राजाओं की राजधानी रहा। छठवीं और सातवी शताब्दी में पल्लव नरेशों ने यहाँ अनेक मन्दिर बनवाए। आज यहाँ के एक सौ पचीस मन्दिर इस नगर की ऐतिहासिक विशिष्टता को सिद्ध करते है और धर्म और सस्कृति की समृद्धतम परम्परा को द्योतित करते है। कहते है कभी यहाँ एक हजार आठ शिव मन्दिर और एक सौ आठ (108) वैष्णव मन्दिर थे।

काँचीपुरम का प्राचीन नाम "काचनपुरम" (कनकपुरी) था। पुराने सस्कृत ग्रन्थों मे इस नाम का उल्लेख प्राप्त होता है। कालान्तर मे कांचनपुर काँचीपुरम हो गया। यह नगर छठवीं शतावदी से आठवीं शताब्दी तक पल्लव राजाओं की वैभवपूर्ण राजधानी के रूप मे स्थापित रहा। महेन्द्रवर्मन पल्लव और मामल्ल नरसिंह वर्मन के शासनकाल मे काँचीपुरम को असीमित ख्याति प्राप्त हुई। इसी मामल्ल वर्मन को महाबलीपुरम का संस्थापक माना जाता है। काँचीपुरम की विशिष्टता केवल मन्दिरों के लिए ही नही है, वह सदियों मे कला और ज्ञान का केन्द्र भी रहा है। शकराचार्य, रामानुजाचार्य, अप्पर, महान बौद्ध भिक्षु बोधि-धर्म आदि महान दार्शनिकों की यह कर्मभूमि रही है। कुछ विद्वानों के अनुसार दिङ्गनाग, वेदान्त देशिकन और चाणक्य (कौटिल्य) का जन्म काँचीपुरम में ही हुआ था। हालाँकि कौटिल्य के जन्म के प्रमाणस्वरूप कोई ठोस तर्क या आधारभूत सामग्री उपलब्ध नही है। और एक जैन जातक के अनुसार उन्हे तक्षशिला का बताया गया है जबकि अनेक विद्वान कौटिल्य को पाटलिपुत्र का ही मानते है...अस्तु काँचीपुरम

: के विषय मे सन्देह ही उत्पन्न होता है।
म के निर्माण के विषय मे दो कथाएँ प्रचलित है। एक पौराणि
ार ब्रह्मा ने वहाँ अश्वमेध यज्ञ किया था। उस यज्ञ में योगेश्व
ोक्ता थे। ब्रह्मा के यज्ञ के कारण वेगवती नदी सूख गई थी। ब्रह
। कि शिव के प्रत्यर्थी भगवान् विष्णु—वरदराज पेरुमाल के आशीवां
। वह उठेगी...अत विष्णु को कॉची मे विराजमान होना पडा अ
ज्ञ भूमि कॉचीपुरम का निर्माण किया। ऐतिहासिक कथा के अनुस
ार्य जब कॉची मे लबी अवधि तक ठहरे तो उन्होने तत्कालीन रा
ुझाव दिया कि "श्रीचक्र" की आकृति मे वह कॉची का निर्मा
ान गलियो के मध्य देवी कामाक्षी का मन्दिर स्थापित करे। व
करने वाली देवी होगी।
कॉचीपुरम की आबादी लगभग पौने दो लाख के आसपास होगी
: में हम शिव कॉची के सम्मुख खड़े थे। कहते हैं राजा राजसे
मंदिर निर्माण के पश्चात शिव कॉची और विष्णु कॉची मन्दिर बनवा
ॉची मन्दिर पल्लव वास्तुकला का सुन्दर नमूना है। बारहवी शता
ह अपने ढग का अनोखा मन्दिर है। यह शिव को समर्पित है
ची देखने में हमें नौ बजे से अधिक का समय हो गया। वेणुगोपाल ए
और उन्होने शिव मन्दिर से जुड़े एक-एक प्रसंग को जिस गम्भीरता
काधिक बार बताया, वह उनकी योग्यता को प्रदर्शित कर रहा था



साढ़े तीन हजार वर्ष पुराना वृक्ष

एकाम्बरनाथ मन्दिर के विषय मे वेणुगोपाल ने बताया वह अत्यन्त
है, जिसको पल्लव, चोल और बाद मे विजयनगर के राजाओं ने पुनर्नि

इस मन्दिर का गोपुर दक्षिण भारत मे सबसे ऊँचा है। इसमें दस मन्जिले है और ऊँचाई एक सौ नब्बे फीट है। गोपुर का शिल्प दक्षिणी कला का उत्कृष्ट नमूना है। विजयनगर के राजा कृष्ण देव राय ने इस मन्दिर के सरक्षण मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। गोपुर उन्होंने ही वनवाया था। यहाँ पर पृथ्वी लिंग स्थापित है। इस मन्दिर के दो महत्त्वपूर्ण आकर्षण है। यहाँ 3500 वर्ष पुराना आम का पेड है, जिसमे चारो वेदो का सार समाया हुआ है लोगों की ऐसी मान्यता है। उसके नीचे गणेश का छोटा-सा मन्दिर है। वेणुगोपाल ने बताया कि ऐसी मान्यता है कि गणेश से भक्त जो भी कामना करता है, वह पूर्ण होती है। हमारे दल के पहुँचने के समय पुजारी वहाँ उपस्थित था। सभी ने



एकाम्बरनाथ मदिर मे
पुराना आम का

मन्दिर की प्रदक्षिणा की। यात्रियो ने इच्छित कामनाएँ की। मेरे बच्चो ने भी शायद सिर झुका कर कोई कामना की। लेकिन मेरे आकर्षण का केन्द्र था पुराना आम का पेड। उसे मै कैमरे मे कैद करना चाहता था। गाइड ने पूछने पर अनुमति दे दी। कैमरा अन्दर ले जाने की टिकट हम पहले ही ले चुके थे। गोपुर में प्रवेश करते ही गाइड ने टिकट लेने की सलाह दी थी और टिकट देने वालो की नजरो मे केमरा छुपाकर ले जाना किसी के लिए भी कठिन था। इसी मन्दिर मे वेणुगोपाल ने दीवारों पर खुदे चित्रों के अद्‌भुत नमूने दिखाए। स्तम्भो पर खुदे चित्र मोहक थे। स्थान-स्थान पर पार्वती को उकेरा गया था, जिसमें वे शिव को प्रसन्न करने के लिए तपस्या करती दिखाई गई थी। उसके अतिरिक्त अन्य देवताओं के साथ सैनिकों, दरबारियों आदि को भी उकेरा गया है। वेणुगोपाल ने बताया, "इन्ही चित्रों को रेशम के व्यापारी ले जाते है और साडियो मे वे प्रिंट दिखाते हैं। कॉचीपुरम साड़ियो में विशेषरूप से इसी मन्दिर की चित्रकारी को कारीगर उकेरते है।"

आश्चर्य हो रहा था उस वृद्ध वृक्ष को देखकर, जिसकी एक मोटी शाखा कटी हुई थी, कही से भी यह अनुमान लगाना कठिन था कि वह साढ़े तीन हजार वर्ष पुराना होगा। उसमे कच्चे आम देखकर प्रकृति को नमन करने से अपने को नहीं रोक सका। कच्चे आम एक—दो नहीं अनेक थे। मैंने कैमरा सम्भाला ओर पाजीशन लेने लगा। मुझे देख बरनवाल भी आगे आ गया। उसने मॉ-पिता ओर पत्नी को मन्दिर मे पूजाभाव में खडा किया और पुजारी से आशीर्वाद लेते उनकी ओर पेड़ को फोटो ले ली। उसके व्यवधान के बाद मैने जो चित्र कैद किया वह खूबसूरत था। इसी मन्दिर मे एक हजार स्तम्भो का हाल है, जिसका प्रत्येक स्तम्भ अपने कलात्मक शिल्प के लिए बॉधे रखने मे सक्षम है।

मन्दिर के मुख्य प्रवेश-द्वार पर नदी की विशालमूर्ति है। वेणुगोपाल ने बताया कि दक्षिण-शैली की यह विशेषता है कि मुख्य द्वार मे पूर्व की ओर मुँह किए मुख्य देवता के वाहन को स्थापित किया जाता है।

सवा नौ बजे से ऊपर हो चुके थे। पर्यटको के नाश्ता और लच की व्यवस्था टी टी. डी. सी. को ही करना था. जिसका भुगतान हम टिकट के साथ कर चुके थे। बाहर निकलते ही वेणुगोपाल ने कहा, "अब हम नाश्ता के लिए टी टी डी सी के होटल में जाएँगे, उसके पश्चात् कामाक्षी मन्दिर अर्थात् शक्ति कॉची और वैकुण्ठ पेरुमल मन्दिर अर्थात् विष्णु कॉची देखने जाएँगे।"

साफ-सुथरा होटल था टी. टी डी सी. का। इडली सॉभर का नाश्ता तैयार था। बाद मे चाय या कॉफी। बेयरो मे सुरुचिता और शालीनता थी। एक बडे हाल मे, जो कि वातानुकूलित था, व्यवस्था थी। थ्री-स्टार होटल की-सी व्यवस्था।

बाहर धूप तीखी होने लगी थी। अन्दर पहुँचकर राहत मिली। हालाँकि काँचीपुरम का तापमान शायद ही कभी 37 डिग्री सेल्सियस से अधिक जाता हो। फिर तो वह नौ अप्रैल का दिन था और चेन्नै को छोड़कर गर्मी का अधिक प्रभाव कहीं नहीं अनुभव हुआ था। फिर भी जाड़े को जीते शरीर आगत गर्मी को सहने में हिचकिचा रहा था और किञ्चित धूप की तेजी से प्रभावित हो जाता।

नाश्ता करके जब हम बाहर निकले दस से ऊपर का समय हो रहा था। अब हमें कामाक्षी मन्दिर जाना था।

कामाक्षी मन्दिर, जिसे शक्ति काँची भी कहा जाता है, बड़ी गलियों के मध्य स्थित है। मान्यता है कि कामाक्षी देवी इस नगर की रक्षक देवी है। भारत में तीन प्रसिद्ध कामाक्षी मन्दिर हैं। काँचीपुरम, मदुरै और वाराणसी। काँचीपुरम का यह मन्दिर अत्यन्त प्राचीन है, लेकिन आज वह जिस रूप में है वह चोल राजाओं द्वारा चौदहवीं शताब्दी में बनवाया गया था। मन्दिर के गर्भगृह के बाहर द्वारपालों की प्रस्तर मूर्तियाँ दर्शनीय है। वैसे भी इसकी शिल्प-कला मुग्धकारी और प्रशंसनीय है। यहाँ एक हजार शिवलिंगों की एकल मूर्ति पर्यटकों के विशेष आकर्षण का केन्द्र है। उसके विषय में वेणुगोपाल ने बताया कि उसके दो हजार वर्ष पुराना होने का अनुमान है।

ग्यारह बजे के लगभग हम विष्णु काँची मन्दिर में थे, जिसे "वैकुण्ठनाथ पेरुमल मन्दिर" भी कहा जाता है। यह अपने ढंग का अद्वितीय मन्दिर है। नंदि वर्मन द्वितीय द्वारा सातवीं शताब्दी में निर्मित यह विष्णु मन्दिर पल्लव शिल्प व वास्तुकला का अद्‌भुत उदाहरण है। इसके भित्ति-चित्रों का रंग आज भी ताजा दिखता है। मन्दिर में पाए जाने वाले अनेकों शिलालेखों में पल्लवों और चालुक्यों के मध्य हुए युद्धों का उल्लेख है। यहाँ विष्णु को बैठे, खड़े और झुके हुए मुद्राओं में चित्रित किया गया है।

वेणुगोपाल एक सरल-हँसमुख गाइड थे, जो मन्दिरों से जुड़े मिथकों के विषय में एकाधिक बार बताते जा रहे थे। यहाँ तक कि दीवारों पर उकेरे छोटे—किन्तु महत्त्वपूर्ण चित्रों के पीछे छुपे मिथकों को भी बताने से पीछे नहीं रहते थे। विष्णु मन्दिर से बाहर निकलते ही चप्पलें बेचनेवाले पर्यटकों को घेर लेते हैं। मूल्य में भाव-ताव शुरू हो जाता है। एक गुजराती परिवार हमारे आगे बैठा था। पति रास्ते भर सोता रहा था। इस समय वही बड़े उत्साह में चप्पलों की सौदेबाजी कर रहा था। पत्नी भी मुग्ध दिख रही थी। कुछ ही देर में जब गुजराती भाई दो जोड़ी लेडीज चप्पलें हाथ में लटकाए बस में चढ़ा तो पत्नी के धैर्य की सीमा टूटने लगी और तब वह बिल्कुल ही टूट गई जब गुजराती भाई ने हुलसते हुए

बताया कि उसने वह चप्पले तीस रुपए जोडा मे खरीदी है।

"आप भी क्यों नही जेन्ट्स चप्पले देख लेते?" पत्नी ने झकझोरा।

"क्या-क्या लादेंगे लौटने में.. अभी यहा बहुत कुछ देखना शेष है।"

"फिर भी एक याददाश्त...।"

और याददाश्त के लिए मैंने भी दो जोडी चप्पले अपने और बेटे के लिए ले ली। कीमत मात्र अस्सी रुपए। मन प्रफुल्लित था कि अपने लिए कुछ तो ले सका। लेकिन यह प्रफुल्लता मात्र दस दिन की थी। दिल्ली पहुँचने के दस दिन के अन्दर ही चप्पलों के अन्दर के चमड़े के छोटे टुकडे एक-एक करके बाहर निकलने लगे थे और चप्पलों ने साथ छोड दिया था। मन को यह कहकर सन्तोष दिया कि चार रुपए प्रति दिन का औसत पडा चप्पलों का.. ।

बस चली तो हमने अनुमान लगाया कि अब सीधे महाबलीपुरम ही जाएँगे। रास्ते मे वेणुगोपाल ने शंकराचार्य पीठ दिखाया जिसे आदि शकराचार्य ने स्थापित किया था। और उसे "काम कोटि पीटम" के नाम से जाना जाता है।

"यहाँ तो अन्य महत्त्वपूर्ण मन्दिर भी हैं ..लेकिन समयाभाववश हम उन्हें नही दिखा पा रहे है। फिर भी उनके विषय में सक्षेप मे आपको बता देना चाहता हूँ।" वेणुगोपाल ने बताना प्रारम्भ किया। सर्वतीर्थ के किनारे विश्वेश्वर मन्दिर है। कहते है कि आदि शकराचार्य उसमे पूजा करते थे। वहॉ पर तीन मुक्ति मण्डप थे, जो सप्त मोक्षपुरियो की महिमाओं से समन्वित थे। आज भी उस घटना की याद मे व्यास पूजा के दिन कामाक्षी मन्दिर मे स्थित शंकराचार्य की मूर्ति का मण्डप तक जुलूस निकाला जाता है।"

वेणुगोपाल रुकते है कुछ देर के लिए। फिर बोलते है, "एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मन्दिर है "वरदराज स्वामी का"। उसके आवरण में सुन्दर मण्डप है और सौ स्तम्भो वाला एक मनोरम हाल है। उसमे अनुपम शिल्प खुदा हुआ है। चट्टान को काटकर जजीर का रूप दिया गया है जो देखते ही बनता है। विजयनगर-कालीन शिल्प का यह अद्‌भुत नमूना है। इस मन्दिर का गोपुर सात मजिलो वाला है और इसकी ऊँचाई सौ फुट की है। यह मन्दिर बारहवी शताब्दी से प्रसिद्ध है और यहॉ प्रभूत मात्रा में आभूषणो का भण्डार है।"

वेणुगोपाल हमें यह बता ही रहे थे कि बस साडियों के शोरूम के सामने जा खडी होती है।

"आप श्रीनिवास हाउस के सामने खडे हैं। यह कॉंचीपुरम का प्रसिद्ध साडी शोरूम है और तमिलनाडु सरकार से मान्यता प्राप्त है। यहॉ "रटस" मे फर्क नहीं पाएँगे किसी प्रकार की चाटिंग नहीं है वेणुगोपाल कॉंचीपुरम की साडियों

की विशिष्टता बताने लगे थे। "आप देखेंगे कि जो साडी आपको यहाँ पाँच सौ में मिलेगी वही बाहर जाकर आठ-नौ सौ मे पाएँगे। हम यहाँ चालीस मिनट ठहरेंगे।"

अर्थात् ठीक बारह बजे बस चल देगी। मिनटों में बस खाली हो गई। श्रीनिवास के आमने-सामने दो शोरूम हैं। एक मे महँगी और दूसरे मे अपेक्षाकृत कम मूल्य की साडियॉ है। पर्यटक दोनो ही शोरूम का जायजा लेते है और अपनी हैसियत के अनुसार जेबे खाली करते है। पत्नी को उसी क्षण की प्रतीक्षा थी। कॉचीपुरम पहुँचकर भी साडियॉ न खरीदी जाएं तो सब व्यर्थ था। परिणामत वह पॉच साड़ियॉ खरीद लेती है। दो वह कन्याकुमारी से ले ही आई थी। बोझ का भय न होता तो शायद वह और भी खरीद लेती।

बारह बजकर दस मिनट पर हमने कॉचीपुरम को डॉक्टर शिवप्रसाद सिंह के शब्दों मे "विदा पुनर्मिलनाय" कहा और महाबलीपुरम अर्थात् मम्मालपुरम के लिए चल पड़े।

मुझे यह विश्वास नही हो रहा था कि कॉचीपुरम से महाबलीपुरम तक का मार्ग अपनी हरीतिमा के कारण मन को मुग्ध कर देगा। दूर-दूर तक फैले बाग और सड़क के दोनों ओर झूमकर स्वागत करते वृक्ष यकीनन शान्तिदायक थे। यही नही शायद ही कोई गॉव होगा जहॉ हमे एक जैसे मन्दिर न दिखे हो। धर्म की प्रधानता उस क्षेत्र की विशेषता प्रतीत हुई मुझे और शायद इसी कारण वहॉ की सस्कृति आधुनिकता के तमाम अतिक्रमणो के बावजूद अक्षुण्ण है।

कला का जादू नगर

वैसे तो दक्षिण भारत का हर वह स्थान, जो पर्यटको के लिए विशेष महत्त्व रखता है, चाहे रामेश्वरम—कन्याकुमारी हो या काँचीपुरम—मामल्लपुरम (महाबलीपुरम) प्राचीन ऐतिहासिक विशेषताओ की गँध आज भी वहाँ प्रवेश करते ही हमें प्राप्त हो जाती है। महाबलीपुरम मे जैसे ही टूरिस्ट बस प्रविष्ट हुई शिल्पकारो की दुकानो पर छेनी-हथौडी से खेलते उनके हाथ मुझे आज के किसी शिल्पकार के नही, प्रत्युत सातवी-आठवी शताब्दी के पल्लवकालीन उन शिल्पकारो के लगे, जिन्होने उस नगर को अद्भुत सौन्दर्य प्रदान किया था। विश्व मे यह नगर एक ऐसा उदाहरण है, जहाँ न केवल विशाल पत्थरों को छील-तराशकर मन्दिरों का निर्माण किया गया है, बल्कि गुफाकार दीर्घ पत्थरों मे कला का चरमोत्कृष्ट अंकित कर भारतीय संस्कृति को उकेरा गया है।

महाबलीपुरम का प्राचीन नाम मामल्लपुरम था। गाइड वेणुगोपाल मामल्लपुरम का अर्थ समझाते हैं। वे बताते है, मा+मल्ल+पुरम=महान+योद्धा+क्षेत्र अर्थात् महान योद्धाओ का क्षेत्र, जो काँचीपुरम के नरेशों के शौर्य को अभिहित करता है। इतिहास इस बात का साक्षी है। समुद्र तट पर स्थित यह पल्लव राजाओं की व्यापारिक राजधानी था और यहाँ के बन्दरगाह से दूरस्थ देशों से व्यापार होता था। कहते है उस युग का वह श्रेष्ठ बन्दरगाह था।

पल्लव राजाओं के विषय में विद्वानो मे मतभेद हैं। उनके दानपत्र और शिलालेख सस्कृत और प्राकृत में प्राप्त हुए है। अत- कुछ विद्वानो का अनुमान है कि वे उत्तर भारत से आए थे। कुछ अन्य विद्वानो का मानना है कि पल्लव वाकार शाखा के थे।

दूसरी शताब्दी में तमिलनाडु के कुछ क्षेत्रों में शातवाहनों का शासन था

शातवाहनों के अधीन ही कॉचीपुरम और मामल्लपुरम आते थे
शातवाहनों के अधीन थे और शातवाहनों के प्रतिनिधि के रूप में
शासन-व्यवस्था सँभालते थे। इसलिए यह सम्भव है कि वे उत्तर
आन्ध्रवंशी शातवाहनों के अधीन कॉचीपुरम के प्रतिनिधि शासक
थे। चौथी शताब्दी तक वे शातवाहनों के अधीन कॉचीपुरम में



महाबलीपुरम के पत्थर मंदिर

किन्तु चौथी शताब्दी मे जब शातवाहनो पर समुद्रगुप्त ने भीषण
और वह राज्य कमजोर हो गया, पल्लवों ने अपने को स्वतन्त्र घो
अब वे कॉचीपुरम के स्वतन्त्र शासक हो गए थे। इस प्रकार
स्वतन्त्र पल्लव राज्य का अभ्युदय हुआ जो चौथी से नवीं शताब्दी
रूप से चलता रहा। इस राज्य का संस्थापक राजा था सिंह विष्
मे महेन्द्र वर्मन अत्यन्त प्रतापी राजा था। इसने पश्चिम मे चालुव
कर वातापि नगर पर अधिकार कर लिया था, जिसके फलस्वरूप
की उपाधि से विभूषित किया गया था।

महेन्द्र वर्मन ने तिरुचिरापल्ली, पल्लावरम, बेजवाडा, डडवर
पर गुहालयों का निर्माण करवाया था। कहते है उसने नौसेना क
द्वीप (श्रीलंका) को अपने प्रभुत्व मे ले लिया था। महेन्द्र वर्मन न
था, प्रत्युत वह कला प्रेमी और विद्वान भी था। उसने दूसरे नगर
बनाए ही थे लेकिन महाबलीपुरम को वह अपनी कला से सजा

त रहने के बावजूद उसने वहाँ अनेक गुहालय बनवाए और मन्दिर और रथों का निर्माण भी उसी ने करवाया था। महेन्द्र, सगीत, नृत्य, साहित्य आदि को प्रर्याप्त प्रोत्साहन दिया। उस ा ने अपनी पृथक पहचान बनाई, जिसकी मौलिकता आज भी उत्कृष्टता के कारण इसे "मामल्ल शैली" के नाम से जाना

ह्यू-एन सॉग, फाहियान और इत्सिग आदि कॉचीपुरम आए। से ज्ञात होता है कि कॉचीपुरम और मामल्लपुरम कालाओ केन्द्र थे। अन्य जिन महान पल्लव नरेशो ने कॉचीपुरम और पन किया था वे थे परमेश्वर वर्मन, नरसिह वर्मन, नदि वर्मन, वर्मन, अपराजिता आदि।

ी शताब्दी के मध्य मामल्लपुरम बन्दरगाह द्वारा कॉचीपुरम का। चीनी यात्रियो के अनुसार विदेशो के साथ कॉचीपुरम के कृतिक सम्बन्ध थे। व्यापार के लिए लोग जावा, सुमात्रा, बाली, ाते थे। व्यापारियो के साथ विद्वान और धार्मिक लोग भी इन वहाँ सस्कृत और वैदिक धर्म का प्रचार करते। इन द्वीपो मे हन्दू मन्दिरो के निर्माण में उन लोगो की ही प्रमुख भूमिका



मामल्लपुरम का एक पाण्डव मदिर

पल्लव नरेशो के समय मे काँचीपुरम के साथ मामल्लपुरम मे भी सस्कृत के अनेक विद्यालय थे, जहाँ निरन्तर शास्त्रार्थ होते रहते थे। नगर का वातावरण स्वच्छ था और लोग नैतिक और पराक्रमी थे। कलाकारो को राज्याश्रय प्राप्त होता था या वे स्वतन्त्र रूप से अपनी कला को विकसित करते रहते थे। शिल्पियो का विशिष्ट सम्मान होता था। उत्तर भारत में जहाँ खर्जुर्वाह (वर्तमान खजुराहो) कला और संस्कृति के क्षेत्र मे अपनी विशिष्ट पहचान बनाने के लिए प्रयत्नशील था, वहीं दक्षिण में 'मामल्लपुरम'' का कलात्मक, सांस्कृतिक और धार्मिक वैभव चरमोत्कर्ष पर था। यदि यह कहा जाए कि खर्जुर्वाह की अपेक्षा मामल्लपुरम वहुआयामी दिशा में विकास कर चुका था, तो अत्युक्ति न होगी। इसके लिए एक तर्क यह भले ही दिया जा सके कि उत्तर भारत विदेशी आक्रमणकारियो और आक्रान्ताओ से जूझता रहा, लेकिन वेणुगोपाल ने बार-बार वताया कि पल्लव नरेशों को भी निरन्तर अपने समकालीन पडोसी राजाओं से युद्ध करना पडा था। ओर यही कारण है कि यहॉ के रथ मन्दिरो का निर्माण प्रायः आधा-अधूरा ही रहा।

वस घूमकर कुछ ऊँचाई पर चढती है। सामने ही अवस्थित है रथ मन्दिर। शख, जानवरो की सीगो से बने सामान, मालाऍ, लकडी की कलाकृतियां की अनेक दुकानें रथ मन्दिरो के बाहर सजी हुई है। बस दुकानो के सामने रुकती है।

"सामने आपको रथ मन्दिर दिखाई दे रहे हैं। ये मन्दिर विशाल पत्थरो को काटकर बनाए गए है। द्रविड और नागर शैली के मिश्रित उदाहरण है ये मन्दिर। लेकिन इनमें से एक मन्दिर अवश्य ऐसा है, जिसमें हमें शुद्ध द्रविड शैली दिखाई देती है।"...वेणुगोपाल बस से उतरते हुए बताते हैं, "मन्दिरो में जाने के लिए जूतो को नही उतारने। जूते-चप्पले पहने हुए आप जा सकते है।"

मैं पहली बार देखता हूँ साथ की विदेशी पर्यटक महिला के चेहरे पर प्रसन्नता है। कॉचीपुरम के मन्दिरो में उसे अन्दर जाने से रोका गया था।

मामल्लपुरम मे छ. रथ मन्दिर हैं, जिनमें से पॉच मन्दिर पाँचों पाण्डवो को तथा छठा द्रौपदी को समर्पित है। सभी को बडे पत्थरों पर तगशकर बनाया गया है। इन्हे "पंच पाण्डव" मन्दिर भी कहते हैं। इनमे कई देवी-देवताओं की मूर्तियॉ है और पाण्डवों के संकेत ही मिलते हैं। एक मन्दिर में शेष-नाग पर विष्णु का शयन और दूसरे में सिह पर आरोहित दुर्गा को जिस भॉति प्रतीकात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया है वह अपूर्व है।

"आप सब देख रहे होंगे कि लगभग सभी मन्दिरो का कार्य अपूर्ण है। इसका कारण यह है कि युद्धों से जव भी पल्लव नरेश को समय मिलता मन्दिरों

हो जाता। कुछ दिन ही कार्य होता कि राजा को युद्ध भूमि
ग्रना होता। परिणामत ये मन्दिर अधबने ही रह गए।" वेणुगोप
नमे से अधिकांश का निर्माण महेन्द्र वर्मन के समय मे किया गया
सभी को चित्र खीचने की उतावली है। सबसे बडा संकट स
तो मामल्लपुरम में शुरुआत थी। बहुत कुछ देखना है।



मम्मालपुरम का शोर टेम्पल

न्दिरों की खोज एक अंग्रेज पुरातत्व-वेत्ता ने की थी।" वेणुगोप
ए बताते है।

"मतलब .. ।" मै पूछता हूँ।

"मतलब यह कि सभी मन्दिर रेत के विशाल भण्डार मे दबे हुए थे।" वेणुगोपाल पीली रेत की ओर इशारा करते है, जिस पर हम चल रहे थे। वास्तव मे मन्दिरों के चारों ओर रेत-ही-रेत थी।

"उस अग्रेज के आने से पूर्व यहाँ रेत-ही-रेत थी। पूरा क्षेत्र रेतमय था। उसे एक स्थान पर शिलाखण्ड झॉकता दिखा तो कुछ सन्देह हुआ। उसने खुदाई करवाई तो भारतीय सस्कृति की यह अमूल्य धरोहर रेत के गर्भ से निकल आई है।"

हम भावुक हो उठे थे। मै सोच रहा था कि अंग्रेजो ने इस देश को जो क्षति पहुँचाई है वह हम सभी जानते है, लेकिन जिन अंग्रेजों ने अपने श्रम ओर शोध से हमें लाभान्वित किया है, हमें उनके प्रति कृतज्ञता अवश्य ज्ञापित करना चाहिए। यदि उस पुरातत्ववेत्ता अंग्रेज नेमामल्लपुरम के "पच-पाण्डव" मन्दिरो की खोज न की होती तो पता नहीं कब तक हम अपनी इस सास्कृतिक विरासत के विषय मे अनजान बने रहते।

हम चित्र लेते हैं और लौटते हुए मन्दिरों के मध्य हाथी की प्रस्तर मूर्ति के साथ खडे हो चित्र खिचवाने का मोह बिल्कुल नहीं छोड पाते। रेत पर खडा भूरे पत्थर का हाथी मोहक है। लौटकर बाहर की दुकानों मे समा जाते है। सींग का बना मादा पक्षी द्वारा अपने बच्चों को भोजन करवाता एक शो-पीस खरीदते है। लेकिन इसी प्रक्रिया में बेटी कॉचीपुरम की साडियों का एक थैला एक दुकान मे भूल जाती है। बस में लौटने पर एक ही थैला पाकर हमारे चेहरो पर हवाइयॉ उडने लगती हैं। दोनो बच्चे मन्दिरो की ओर दौडते हैं। अनुमान है कि थैला वही कही छूट गया है। रेत मे दौड़ लगाकर वे लौट आते हैं। फिर हम दुकानो मे पता करते है।

"क्या छूट गया?" एक लडका मुस्कराता हुआ आधी हिन्दी और आधी तमिल में पूछता है।

"साडियो का एक थैला. .।" पत्नी की घबड़ाई आवाज।

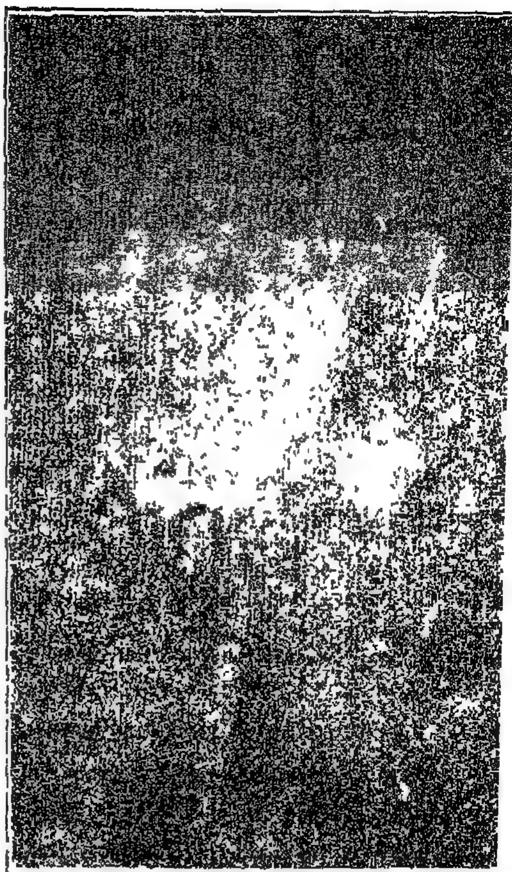
"लड़का मुस्कराता रहता है। दुकान का मालिक, जिससे हम लकडी के हाथी-जोड़ का मोलभाव कर वापस लौट आए थे, लड़के से तमिल में पूछता हे, "क्या बात है?

"इनका बैग. ।" मुस्कराता हुआ लडका दुकान के अन्दर जाता है और बेग लटकाए लौटकर पूछता है, यह तो नही?"

पत्नी उत्तर बाद में देती है, बैग पहले लपक लेती है। हम लडके और दुकानदार

को धन्यवाद देकर लौट आते है।

बस आगे खिसकती है। कुछ दूरी पर कृष्ण मण्डप है। यह एक गुफाकार विशाल पत्थर पर बनाया गया है, जिसमें कृष्ण द्वारा गोवर्धन पर्वत उठा कर इन्द्र की अतिवृष्टि से जनता की रक्षा करते दिखाया गया है। साथ में बलराम का चित्र भी उकेरा गया है। अनेक गोप-गोपियाँ, गाये आदि को अद्भुत ढँग से शिल्पकार ने आकार दिया है और आश्चर्यजनक रूप से कृष्ण और बलराम को छोड़ सभी के चेहरो से भय टपकता दिखाया गया है। यह काफी लम्बी गुफा है। पास ही तपस्यारत



कृष्ण मंदिर का दृश्य

अर्जुन की गुफा है, जिसकी लम्बाई-चौडाई 27×9 मीटर है। यह विश्व की सबसे बड़ी ह्वेल मछली की आकार की चट्टान है। इसे काट-तराशकर वह रूप दिय गया है। इस गुफा के सामने पतली, किन्तु गहरी नहर-सी बनी है। सम्भव है किसी प्रत्याशित क्षति की आशंका को ध्यान मे रखते हुए ऐसा किया गया हो जैसा कि पुराने किलो की सुरक्षा देने के लिए नहर बना दी जाया करती थी लेकिन इसमे पानी नहीं था। इसमे अन्य देवी-देवताओं, मनुष्यो, पक्षियों, जानवरो .बल्कि एक प्रकार से सम्पूर्ण सृष्टि को उकेरने का प्रयास किया गया है। कहीं संकट की आशका से भयातुर चेहरे है तो भय समाप्ति के पश्चात् प्रकट होती उत्फुल्लता है। हिरणो का ऐसा ही एक जोड़ा नीचे उत्फुल्ल दिखाया गया है वेणु गोपाल हमारी ओर देखकर पूछते है, "किसी के पास दस का पुराना नो

है।''

एक पर्यटक के पास नोट निकल आता है। वेणु गोपाल नोट को हवा मे पकडकर दिखाते हैं, ''आप लोग देखे, गौर से देखे इसमें कोई चित्र देख रहे है।''

''हॉ दो हिरण बैठे दिख रहे है।'' हम सभी गौर से देखकर बोलते है।

वेणु गोपाल का चेहरा खिल उठता है। ''दस के इस नोट मे जो दो हिरण आप देख रहे है वे सामने गुफा मे उकेरे गए हिरण है .उनका चित्र यहॉ से ही लिया गया है।''

हम आश्चर्यचकित है।

वेणु गोपाल घड़ी देखते है। डेढ से ऊपर का समय हो रहा है।

''अब हम भोजन के लिए चलेंगे. फिर तटीय मन्दिर यानी 'शोर टेम्पल' देखेगे।''

टी. टी. डी. सी. की ओर से एक होटल मे लच की व्यवस्था है। पहली बार हमे उत्तर भारतीय भोजन मिला। चपाती चावल, दाल, सब्जी, साम्बर ओर खीर। होटल के बाहर एक खुली 'हट' बनाई गई है.. कृत्रिम लेकिन साफ-सुथरी। ग्रामीण पहचान प्रदर्शित करती। व्यवस्था थ्री-स्टार होटल जैसी। भोजन स्वादिष्ट था। हम तृप्त होते है।

ढाई बजे के लगभग हम बाहर आते है। बाहर चट्टानें पड़ी है। बैटकर विश्राम करते है और वही से बनरनवाल परिवार को अग्रेज युवती के साथ भोजन करते देखते है। बरनवाल ने युवती से अपने टेबुल पर आ जाने का अनुरोध किया था। मै उसमे विदेशियो से सम्पर्क बढाने की ललक या कमजोरी का अनुभव करता हूँ।

जब हम ''शोर टेम्पल'' (तटीय मन्दिर) पहुँचते है तीन बजने वाले थे। विष्णु का यह मन्दिर समुद्र तट पर है। मन्दिर के तीन ओर पानी है। कभी भयानक समुद्री तूफान मे इसका अधिकॉश भाग जलमग्न हो गया था।

''कुछ वर्ष पहले ही मन्दिर के ये कुछ अवशेष समुद्र से गोताखोरो को मिले थे।'' वेणु गोपाल मन्दिर के लिए जाते हुए रेत पर पड़े विशाल शिलाखण्डो, (जो निश्चित ही मन्दिर के ही अवशेष थे और जिन पर चित्र उकेरे हुए थे) की ओर सकेत करते हुए कहते है। मन्दिर के प्रागण मे उतरने के लिए दोनो ओर पतली सीढियॉ हैं। एक आदमी ही आ-जा सकता है। मन्दिर मे जूते नही उतारने थे।

यह दक्षिण भारत के प्राचीन मन्दिरो में से एक है। पल्लव नरेशो की पूर्ण द्रविड शैली के मन्दिरो के निर्माण का यह प्रथम उदाहरण है। कहा जाता है कि

इसी मन्दिर की भाँति सात और मन्दिर थे जो कभी आए भयानक समुद्री तूफान मे समुद्र की गोद में समा गए होंगे। यह मन्दिर भी आठवी शताब्दी मे ही बनवाया गया था। शिव और विष्णु की मूर्तियो को पत्थरों पर खोदा गया था। शिव की मूर्ति जिस कक्ष में स्थापित है वहाँ गन्दगी का साम्राज्य था। कबूतरों के वीट की गन्ध से देखना कठिन था।

यहाँ खड़े होकर समुद्र को निहारना अच्छा लग रहा था। बस के पास लौटने पर हमारा सामना माला बेचने वाली एक नन्ही बालिका से होता है। एक युवक भी, लगभग तीस वर्ष का, मालाएँ बेच रहा था। पास एक युवती और एक पुरुष तरबूज बेच रहे थे। नन्हीं बालिका सभी पर्यटकों से माला खरीदने का आग्रह कर रही थी। लेकिन कोई भी लेने को तैयार नही हुआ। बस चलने से पूर्व लड़की खीज उठी और चीखकर उसने एक यात्री को भद्दी-सी गाली दी और पैर पटकती चली गई।

नन्हे मन का बड़ा गुस्सा आश्चर्यकारी था। हम उसे जाता देखते रहे।

मगरमच्छों के गाँव में

हमारा अगला पडाव था "क्रोकोडायल बैक" या "पार्क"। हम चेन्नै लौट रहे थे। चेन्नै से चेंगलपद होते हुए मामल्लपुरम 83 किलोमीटर है। लेकिन समुद्र के किनारे एक सड़क बनाकर चेन्नै से मामल्लपुरम तक का मार्ग छोटा कर दिया गया है और अब यह मात्र 65 किलोमीटर ही रह गया है।

"क्रोक्रोडायल बैंक" मे विभिन्न प्रजातियो के 5000 से भी अधिक मगरमच्छो को अलग-अलग तालाबो मे रखा गया है। एक साथ अनेक मगरमच्छो को पानी में लेटे या चढकर ऊपर धरती पर विश्राम करते देखना अच्छा लग रहा था। जब हम बैंक के अन्तिम छोर पर लेटे इकलौते विशालकाय मगर को देखकर लौट रहे थे, एक तालाब में लगभग तीस-पैंतीस मगरमच्छो को देखकर रुके। ये मध्यमवर्गीय मगर थे। लेकिन देखने योग्य जो बात थी वह यह कि पानी से बाहर विश्राम कर रहे मगर पानी में धीरे-धीरे उतर रहे थे और पानी के अन्दर लेटे मगर उनके लिए पानी मे स्थान के अभाव को अनुभव करते स्थान खाली कर धीरे-धीरे पानी से बाहर निकल धरती पर जा रहे थे।

लगभग चालीस मिनट तक हम मगरमच्छो के उस गॉव मे घूमते रहे। अब हमें आगे बढना था। हमारी यात्रा का अन्तिम पड़ाव था। "गोल्डेन बीच" जो उसी समुद्री मार्ग पर है और चेन्नै से बीस कि. मी. दूर है। यह एक कृत्रिम "बीच" है, जिसे बड़े भू-भाग में बनाया गया है। वहॉ आज भी निर्माण कार्य चल रहा है। सीमेण्ट की आदमकद मूर्तियो से उसे सजाया जा रहा है। ये मूर्तियॉ प्राचीन मन्दिरों का अनुकरण है, किन्तु सीमेण्ट की बनी होने के कारण कई जगह-जगह से क्षत-विक्षत हो रही थी।

मूर्ति बने वे लोग

वेणु गोपाल ने वताया, "यह 'वीच' एक ऐसे व्यक्ति ने बनवाया है, जो एक समय मद्रास मे इलेक्ट्रानिक का सामान घर-घर घूमकर बेचता था, लेकिन भाग्य उसके साथ था। अपने श्रम और विवेक के बल पर उसने अपरिमित धन अर्जित किया। अनेक धार्मिक कार्यो के साथ उन्होंने समुद्रतट का यह वडा भू-भाग लेकर यहॉ कृत्रिम 'बीच' का निर्माण करवाया।"

आधुनिक ताम-झाम के दर्शन हमे प्रवेश द्वार पर ही हो गए। एक व्यक्ति की प्रवेश टिकट थी पच्चीस रुपए। पहली बार वेणु गोपाल ने पर्यटको को टिकट खरीदने की सलाह दी। इससे पूर्व सभी स्थानो की प्रवेश टिकटों का खर्च टी टी. डी. सी ने हमसे ले लिया था। वेणु गोपाल ने बताया कि लौटने से पूर्व हम चाय या कॉफी भी पी सकते हैं और उसका चार्ज टिकट मे शामिल है।

प्रवेश द्वार से 'बीच' तक का लम्बा रास्ता है। बॉई ओर खूबसूरत पार्क है, जिसके विषय मे वेणु गोपाल ने बताया कि प्रायः वहॉ फिल्मो की शूटिंग होती रहती है। गेट में घुसने के बाद कुछ दूर चलते ही वेणु गोपाल ने हमे रोका। सामने स्टैचू बना एक व्यक्ति खड़ा था कमर मे बायॉ हाथ रखे और दाहिना ऊपर उठाए। लगभग पॉच फीट सात इच लम्बा, रग काला और तनी घनी मूँछें। परिधान उसका मध्यकालीन सामन्तों जैसा था। ऑखें भूरी और तनी हुई। चेहरे पर सामान्यता।

"आप मे से यदि कोई इसे हॅसा दे तो भाजपा की ओर से पॉच हजार रुपए इनाम मिलेगे।" वेणु गोपाल कहते है।

अव मुझे यकीन हुआ कि वह प्रस्तर मूर्ति नहीं जीवित इसान है। लेकिन आश्चर्य कि उसकी पुतलियॉ किञ्चित् भी नहीं हिल रही थीं—स्थिर और चेहरा

भावहीन।

पर्यटको ने हँसाने की भरपूर कोशिश की लेकिन वह व्यक्ति टस-से-मस नहीं हुआ यह। अद्भुत था। कोई भी अनजान व्यक्ति उसे मूर्ति मानने के लिए विवश हो जाता । लेकिन जब हम चलने लगे एक बच्चे को डराते वह व्यक्ति उछला, पैर पटके और निमिष मात्र मे फिर उसी मुद्रा में खडा हो गया।

रेस्तरा के सामने से गुजरते हम "बीच" के लिए चढ़ने लगे। दॉई और एक मच पर बाहर से पन्द्रह आयुवर्ग के लडके-लडकियॉ लोकगीत गाते हुए लोकनृत्य कर रहे थे। हम कुछ देर रुके। अच्छा लग रहा था उनका वह नृत्य। भीड इकट्ठा थी वहॉ। लेकिन पॉच बज रहे थे। हम बीच की ओर बढ गए।

यहॉ समुद्र तट को विशेष रूप से बनाया गया है। दूर तक सफाई है और पीली रेत पर बैठकर समुद्र की लहरों का आनन्द लिया जा सकता है। हम किनारे रेत पर बैठ गए। रेत गीली थी। बच्चे पानी छूना चाहते थे। पता नहीं कब समुद्र के दर्शन होगे। गोल्डेन बीच का समुद्र उछृंखल नही था। लहरे शान्त भाव से आ रही थी और भिगाते हुए लौट रही थी। साथ के कई पर्यटक पानी में उतर चुके थे। हम समय का ख्याल रखते हुए तट का आनन्द लेते रहे। फिर रेस्तरॉ की ओर लौट पड़े।

रेस्तरॉ के सामने पत्थर की बेंच और मेजे हैं। उस दिन के अधिकॉश साथी वहॉ पहले से ही मौजूद थे। एक-दो परिवार अभी भी पीछे थे। मुझे वेणु गोपाल की हिदायत याद नही थी। वास्तव मे मैने कान ही नहीं दिया था। इसलिए पेमेण्ट देकर कॉफी ले आया। लाने के बाद पत्नी ने पूछा, "टिकट दिखाकर लिया है?"

"क्यों, टिकट क्यो दिखाना था?"

"गाइड ने बताया नही था कि कॉफी के चार्जेज टिकट मे शामिल है।"

मुझे अपनी मूर्खता और जल्दी मे बहुत कुछ छोडते जाने की पुरानी आदत पर कोफ्त हुई। सवाल बीस रुपए खर्च आने का न था, सवाल था ध्यान न देने की आदत का।

"अभी आया।" कहकर मै रेस्तरॉ की ओर भागा। टिकट दिखाई तो क्लर्क ने पूछा "काफी, टी या लड्डू।"

"लड्डू।"

पॉच रुपए का एक लड्डू, लेकिन आकार मे बड़ा। एक खाने के बाद और कुछ खाने की आवश्यकता नही।

छः बीस पर बस मे पहुँचना था। लौटते हुए मूर्ति बने एक दूसरे व्यक्ति को देखा। रंग रूप उसका पहले वाले की भॉति था किन्तु कद छोटा। वह भी

पहले वाले की भाँति निश्चल अडिग खड़ा था। लेकिन मुझे यह देखकर दुख हुआ कि दो युवक उसके पास जाकर उसके गालों पर तमाचे मार रहे थे, जिससे वह कोई प्रतिक्रिया करे। वहाँ न कोई सुरक्षाकर्मी था, न ही कोई व्यस्थापक। वह व्यक्ति पिटता रहा, लेकिन उसने उफ नहीं की और न ही वह डिगा। मैंने उसके धैर्य और सहिष्णुता को प्रणाम किया और सुरक्षा की व्यवस्था पर टिप्पणी करता बाहर आ गया।

ठीक साढ़े छ. बजे बस ने "गोल्डन बीच" से प्रस्थान किया और सात बजे हम "यूथ होस्टल" टी. टी. डी. सी. कार्यालय मे थे। लेकिन बरनवाल ने हमें समझाया कि बस लौटकर अन्ना सलाई जाएगी। हमें वहाँ उतरना चाहिए। वहाँ से टी. नगर निकट होगा, सोचकर हम बैठे रहे।

हम अन्ना सलाई उतरे और ऑटो लेकर 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा" गेस्ट हाउस पहुँचे। अगले दिन अर्थात् दस अप्रैल को हमें तमिलनाडु एक्सप्रैस से दिल्ली लौटना था।

हम रात देर तक दक्षिण भारत की उस सुखद यात्रा की समीक्षा करते रहे थे।

●●●